कला पुस्तक माला का चतुर्थ-पुष्प

शरीर विज्ञान

लेखक

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

भारती साहित्य मन्दिर, देहली

(मूल्य तीन रुपया)

सोल एजेंट्स—
एस चांद ऐण्ड कम्पनी,
चांदनी चौक, देहली ।

प्रथम वार

ता० ३१ दिसम्बर सन १९३७ ई०

मुद्रक—
नेशनल प्रिंटिंग ऐंड पब्लिशिंग हाउस,
गली कासिमजान, बल्लीमारान,
देहली ।

उपहार

श्रीयुत ____________________________

____

____

नव भारत

के

विद्यार्थियों

को

समर्पित

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, M. O. Ph. H. M. D.,
काव्य-साहित्य-तीर्थ-आचार्य प्राच्यविद्यावारिधि, आयुर्वेदाचार्य,
भूतपूर्व प्रोफेसर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

मुकद्दमा चलता है , उसी प्रकार शरीर का दुरुपयोग करने अथवा आत्मघात का प्रयत्न करने वाले मनुष्य पर मुकद्दमा चला कर उसको दण्ड दिया जाता है। हमारे शरीर वास्तव में राष्ट्र और मनुष्य जाति की सम्पत्ति हैं, हमारी नहीं। यह शरीर हमको राष्ट्र और मनुष्य जाति के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये दिये गए हैं। 'कला पुस्तक माला' के द्वितीय ग्रन्थ 'आत्मनिर्माण अथवा विश्वबंधुत्व और बुद्धिवाद' तथा तृतीय ग्रन्थ 'चरित्रनिर्माण अथवा भावी विश्व राज्य और उसकी नागरिकता' में मनुष्य के राष्ट्र और मनुष्यजाति के प्रति उसी कर्तव्य का वर्णन किया गया है। आपका कर्तव्य है कि आप अपने शरीर को स्वस्थ रखते हुए राष्ट्र और मनुष्यजाति के एक अंग के नाते अपने २ कर्तव्य को पूरा करें।

किन्तु यह निश्चय है कि शरीर की रक्षा केवल चिकित्सकों के भरोसे पर ही नहीं की जा सकती। चिकित्सकों का कार्य तो योग्य परिमाण में बिगड़े हुए शरीर को औषधि देना ही है। शरीर की वास्तविक रक्षा तभी हो सकती है, जब रोग को शरीर मे उत्पन्न ही न होने दिया जाव। यदि आप अपने शरीरकी रचना के मुख्य तत्त्वों को जान कर योग्य आहार विहार से रहेंगे तो आपके शरीर में रोग कदापि उत्पन्न न होंगे। अतः यह आवश्यक समझा गया कि 'राष्ट्र और मनुष्य जाति के प्रति कर्तव्य' की शिक्षा देकर 'कला पुस्तक माला' के पाठकों को उस कर्तव्य को पूर्ण करने में सहायता देने के लिये एक ग्रन्थ 'शरीर विज्ञान' पर भी दिया जावे।

यद्यपि हिन्दी मे 'शरीर विज्ञान' के ऊपर स्वर्गीय डाक्टर 'त्रिलोकी नाथ वर्मा' की 'हमारे शरीर की रचना' जैसी उत्तम पुस्तक मौजूद है, किन्तु किसी विषय पर केवल एक पुस्तक ही पर्याप्त नहीं हुआ करती। इसके अतिरिक्त उक्त पुस्तक में 'शरीर विज्ञान' की अपेक्षा 'अस्थि विज्ञान' का वर्णन अधिक किया गया है। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया गया है।

इस पुस्तक में मनुष्य शरीर का वर्णन करने के अतिरिक्त मनुष्य शरीर के विकास का इतिहास भी दिया हुआ है। इस विषय का वर्णन विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार करते हुए यह दिखलाया गया है कि पृथ्वी पर आरंभिक सृष्टि रचना किस प्रकार हुई। वृक्षों तथा जलचरों का वर्णन करके जीवो के जल से स्थल पर आने का वर्णन और जीवो द्वारा शरीर-रचना की जाने का वर्णन किया गया है। इस के पश्चात शरीर के आवश्यक तत्त्वों का संक्षिप्त वर्णन करके शरीर के भिन्न २ अंगों की रचना का वर्णन किया गया है। अन्त में शरीर के साथ उसके अभिन्न अंग अन्तःकरण और उसकी वृत्तियों का वर्णन करके इस ग्रन्थ को समाप्त किया गया है।

संभव है कि ग्रन्थ की परिभाषाओं के विषय में हमसे कुछ डाक्टरों और वैद्यों का मतभेद हो। किन्तु हमने शारीरिक

परिभाषाओं को एतद्विषयक अन्य डाक्टरी (हिन्दी) तथा वैद्यक के ग्रन्थों को देख कर ही तय किया है।

पाठकों को इस ग्रन्थ मे कुछ ऐसी परिभाषाएं भी मिलेगी, जो दूसरे ग्रन्थों के विरुद्ध है। उदाहरणार्थ—

त्रसजीव (Animals), सूक्ष्मजीव (Microbes), नोकर्म-पुद्गल (Protoplasm) और त्रसरेणु (Molecules)।

इन मे से आरंभिक तीन शब्द जैन दर्शन के और अंतिम शब्द न्याय दर्शन का है।

प्राच्यविद्याओं के विद्वान् इस बात को जानते हैं कि प्राचीन काल में विज्ञानसम्बन्धी उन्नति मे जैनी सब से अधिक बढ़े चढ़े थे। प्राणि विज्ञान के विषय मे तो जैनियों ने इतनी अधिक उन्नति की थी कि उनके तत्कालीन अनेक सिद्धान्तों की पुष्टि अब विज्ञान के द्वारा होती जाती है।

उदाहरण के लिये यहां जैनियों के जीव-विभाग का वर्णन किया जाता है। पाठक देखेंगे कि वह अन्य भारतीय दर्शनों के जीव-विभाग की अपेक्षा कितना अधिक परिष्कृत और वर्तमान विज्ञान के कितना समीप है।

जैन दर्शन में संसारी जीव दो प्रकार के माने गए हैं—
त्रस और स्थावर।

जो जीव पैदा होते हों, मरते हों, बढ़ते हों और चल फिर सकते हों उन्हें त्रस जीव कहते हैं; और जो पैदा होते हों, मरते

हों, बढ़ते हों, किन्तु चल फिर न सकते हों उन्हें स्थावर जीव कहते हैं।

जैन दर्शन ने पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति को स्थावर तथा इनके अतिरिक्त शेष प्राणियो को त्रस जीव माना है। इस विषय में जैन दर्शन का विज्ञान से इतना ही भेद है कि विज्ञान पृथ्वी, जल, वायु, और अग्नि मे जीव नहीं मानता, वनस्पति में अवश्य ही अभी २ मानने लगा है। विज्ञान में जीवों के भेद ऐनीमल (Animals) और पौदे (Plants) माने गए हैं। अर्थात वनस्पति के अतिरिक्त शेष सब जीवों को विज्ञान 'ऐनीमल' (Animal) मानता है। अतएव जैनदर्शन का 'त्रसजीव' शब्द इसका ठीक २ पर्यायवाची बन जाता है। इसी लिये हमने इस ग्रन्थ मे 'ऐनीमल' शब्द को त्रस जीव और उनकी विद्या (Zoology) को प्राणि विज्ञान न कह कर 'त्रसजीव विज्ञान' कहा है।

विज्ञान मे कुछ जीव इतने सूक्ष्म भी माने गए हैं, जिनको केवल सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) से ही देखा जा सकता है। इनको विज्ञान में 'माइक्रोब' (Microbes) कहते हैं। यह बात बडी विचित्र है कि जैन दर्शन में भी उन जीवों के सिद्धान्त विज्ञान से बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। जैन दर्शन में उन जीवों को सूक्ष्मजीव कहा गया है। वहां इन सूक्ष्मजीवों को वनस्पति-कायिक जीवों का ही एक भेद माना गया है। सूक्ष्मजीवों का यह सिद्धान्त जैन दर्शन की विशेषता है। यह अन्य किसी दर्शन में

नहीं पाया जाता। अतएव विज्ञान के 'माइक्रोब' (Microbe) शब्द के लिये हमने भी 'कीटाणु' आदि शब्दों को ग्रहण न कर 'सूक्ष्मजीव' शब्द का ही व्यवहार किया है।

जैन दर्शन के दो और शब्दों का भी हमने अपने वैज्ञानिक ग्रन्थों में स्थान २ पर प्रयोग किया है। विज्ञान के 'मैटर' (Matter) शब्द के लिये वैदिक दर्शनों में कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। 'प्रकृति' शब्द तो मैटर से बहुत दूर जा पड़ता है। किन्तु जैन दर्शन के शब्द 'पुद्गल' और अङ्गरेजी शब्द 'मैटर' (Matter) की परिभाषा एक दम मिलती है। अतः हमने 'मैटर' के लिये अपने ग्रन्थों में स्थान २ पर 'पुद्गल' शब्द का प्रयोग किया है।

जैन दर्शन मे संसार भर के पदार्थों के दो भेद कर दिये गए हैं—

जीव और पुद्गल।

पुद्गल के फिर और भी अनेक भेद किये गए हैं। उनमें से कुछ पुद्गल ऐसे होते हैं, जिनसे हमारा शरीर बनता है। उनको जैनदर्शन मे 'नोकर्म पुद्गल' और विज्ञान में 'प्रोटोप्लाज्म' (Protoplasm) कहा जाता है। हमने अपने ग्रन्थ में 'प्रोटोप्लाज्म' शब्द के लिये 'नोकर्मपुद्गल' शब्द का प्रयोग जान बूझ कर किया है।

इन चार जैन पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त एक पारिभाषिक शब्द हमने न्याय दर्शन से लिया है—

वास्तव म परमाणु के सिद्धान्त का जितना सुन्दर वर्णन न्याय-दर्शन मे है, उतना और किसी दर्शन में नहीं है। न्यायदर्शन में दो परमाणु के स्कंध को द्व्यणुक और तीन परमाणुओं के स्कंध को त्रसरेणु कहा गया है। वहां विज्ञान के 'मालीक्यूल' (Molecule) शब्द का प्रयोग बिल्कुल इसी अर्थ में किया गया है। अत: हमने भी अपने ग्रन्थ में 'मालीक्यूल' शब्द के लिये 'त्रसरेणु' शब्द का ही उपयोग किया है।

हमारी सम्मति मे नवीन पारिभाषिक शब्द तभी बनाने चाहिये, जब इंगलिश शब्द का पर्यायवाची हमारे प्राचीन संस्कृत भंडार मे न मिले। प्राचीन संस्कृत शब्दों को छोड कर नवीन शब्दों की रचना करना न केवल निन्दनीय है, वरन् इससे अपनी अज्ञता भी प्रगट होती है।

अस्तु वर्तमान ग्रन्थ 'शरीर विज्ञान' की रचना इसी सिद्धान्त पर की गई है। इस ग्रन्थ मे शरीर सम्बन्धी केवल पाश्चात्य सिद्धान्तों को ही दिया गया है। ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने के भय से आयुर्वेदिक मतभेद की ओर निर्देश भी नहीं किया गया है।

हिंदी मे पारिभाषिक शब्दों के प्रश्न की जटिलता बराबर बढ़ती ही जा रही है। यद्यपि उचित तो यह होता कि इस प्रकार के पारिभाषिक शब्द वैद्य और डाक्टरों की एक सम्मिलित समिति द्वारा तय किये जाते, किन्तु यह निश्चय है कि लेखकों का इस प्रकार का परिश्रम भी इसके लिये सहायक ही सिद्ध होगा। इस प्रकार का उद्योग करने वालों तथा तुलनात्मक अध्ययन के

प्रेमियों के लिये इस ग्रन्थ के अंत में इसके पारिभाषिक शब्दों को अकारादि क्रम से देकर उनके सामने उनके पर्यायवाची इंगलिश शब्दों को भी दे दिया गया है। यह निश्चय है कि उनके विषय मे अनेक विद्वानों का मतभेद होगा। किन्तु हमारी विद्वानों से प्रार्थना है कि वह इस विषय मे व्यक्तिगत विरोध को न बढ़ाकर वैद्य और डाक्टरों की एक सभा बुलवा कर उससे इस विषय के पारिभाषिक शब्दों को निश्चय करावें।

आशा है कि पाठक इस ग्रन्थ को अपना कर हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे।

नं० ८११ धर्मपुरा, देहली।
ता० ३१ दिसम्बर १९३७ ई०

चन्द्रशेखर शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ

अध्याय	विषय	पृष्ठ

शरीर विज्ञान

प्रथम अध्याय

जीवन की परिभाषा

पृथ्वी तल का प्रत्येक भाग प्राणियों से भरा हुआ है। पृथ्वी के स्थल भाग—खेत, जंगल, पर्वत और मरुभूमि आदि में सब कहीं जीव है। उसके जल भाग—नदी, समुद्र, झील, महासागर, बरफ के मैदान और बरफ के पर्वत सभी स्थान प्राणियों से भरे हुए हैं। पृथ्वी का सब से पतला और हल्का भाग—वायुमण्डल भी जीवों से खाली नहीं है। जन्म, मरण और जीवन की क्रियायें प्रत्येक स्थान मे प्रति क्षण होती ही रहती हैं।

पृथ्वी के इस महान् आश्चर्य के विषय मे विचार करते हुए स्वयं ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जीव और अजीव में क्या अन्तर है? इसके पश्चात् फिर भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि

जीवों में मक्खी, गुलाब के फूल अथवा एक बच्चे में क्या अंतर है ? और अजीवों में भी छड़ी पत्थर अथवा मिट्टी में क्या अन्तर है ? जीवों के भिन्न २ भेद कौनसे हैं ? वह एक दूसरे से इतने भिन्न २ क्यों हैं ? मिवार के पेड से हाथी इतना अधिक भिन्न क्यों है ? फिर भी वह हाथी एक चकमक पत्थर की अपेक्षा मिवार के पेड से क्यों अधिक मिलता जुलता है ? इन सब बातों का क्या कारण है ?

हम जानते हैं कि जीवित प्राणि मरते रहते हैं; और तब भी जीव समाप्त नहीं होते। इस समय लेबैनन (Lebanon) के कुछ बड़े २ देवदार के वृक्षों के अतिरिक्त दो सहस्र वर्ष का प्राचीन कोई प्राणि नहीं है। प्राचीन काल की मछलियां, मक्खियां, पत्ति और फूल सभी मर चुके। तो भी पृथ्वी पर आजकल के जितने प्राणि कभी नहीं थे।

ऐसा क्यों है ? इसका कारण यह अद्भुत घटना है कि सभी जीवित वस्तुओं के सन्तान होती है। यह संतान भी अपने माता पिता के समान ही होती हैं। जब माता पिता मर जाते हैं तो उनके जीवन का कार्य उनकी संतान करती है और सृष्टिक्रम उसी प्रकार चलता रहता है।

प्राचीन यूनान में कुछ दौड़ने वालों की एक कहानी कही जाती थी। वह यह है कि कुछ मनुष्य किसी निश्चित स्थान को भागे जारहे थे। उनके पास एक मशाल थी। थोड़ी दूर जाने पर एक दौड़ने वाला गिर गया और मशाल को दूसरे ने ले लिया।

कुछ दूर और जाने पर दूसरा भी गिर गया और मशाल को तीसरे ने ले लिया। इसी प्रकार मशाल वाले व्यक्ति गिरते गये और मशाल को दूसरे २ व्यक्ति लेते गये। यद्यपि वह निश्चित स्थान पर नहीं पहुंच सके, किन्तु मशाल बराबर जलती ही रही यह मशाल जीवन के पतिंगे के समान है और प्रत्येक प्राणि दौड़ने वाले के समान है, जो अपना जीवन बच्चे को देता रहता है। यह बच्चे अपने माता पिता—दौडने वाले के जीवन से गिरजाने पर उस जीवन की मशाल को लेकर चलते हैं।

वेदों मे भी इसी बात की

'आत्मा वै जायते पुत्रः'

'अर्थात् अपना आत्मा ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है' सिद्धान्त रूप मे पुष्टि की है।

यह इतने सारे प्राणि कहा से आते हैं ? कहा जाता है कि सभी प्राणि–जोवित और मृत परमात्मा के पास से आते हैं। किंतु उनको अनादि काल से अनन्तकाल तक कौन चलाता है ? और पृथ्वी पर इतने प्रकार के यह सब प्राणि किस प्रकार प्रगट होते हैं ? उनका क्या इतिहास है ? उनके माता पिता कौन थे ? इन प्रश्नों का उत्तर हम एक सामान्य दृष्टि से अपने एक पिछले ग्रन्थ 'पृथ्वी और आकाश' में दे आये हैं और आगे भी इसी माला के ग्यारहवें ग्रन्थ 'भूगर्भ विज्ञान' में दिया जावेगा।

इस समय हमको यह परीक्षा करनी है कि किसी वस्तु

के जीवित होने अथवा न होने की क्या पहचान है ? कहा जा सकता है कि यह प्रश्न व्यर्थ है। क्योंकि बच्चों के खेलने, मक्खी के उड़ने अथवा खिड़की और काच की जड़ता से हम यह जान सकते हैं कि वह सजीव है अथवा अजीव। जो वस्तु चलती, फिरती, कूदती, बोलती, तरती और उड़ती है वह सब सजीव है। किंतु क्या यह सत्य है ?

वास्तव मे ठीक यह भी नहीं है। तनिक विचार करने पर पता लगता है कि बच्चा सोते समय भी जीवित है। अतएव यह कहा जा सकता है कि यह कारण ठीक नहीं है। क्योंकि सोते समय भी सांस लेने के कारण उसके शरीर मे गति रहती है।

जीवों के दो मुख्य भेद

यह ठीक है कि बालक सोगया है, किंतु उसका हृदय नहीं सोया है। वह अब भी चल रहा है और इसी कारण चल रहा है कि वह जीवित है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्राणियों मे गति का होना आवश्यक है। किंतु यह बात भी अधूरी है, क्योंकि बिना गति वाले वृक्ष भी तो प्राणि है। साराश यह है कि पृथ्वी के प्राणियों को मुख्य रूप से दो वैज्ञानिक भेदों मे बांटा जा सकता है। एक त्रस जीव अथवा प्राणि (Animals) और दूसरे स्थावर जीव अथवा वृक्ष। त्रस जीव पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, मरते है और चल फिर सकते है; जब कि स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं, बढ़ते है, मरते हैं, परन्तु

चल फिर नहीं सकते। पाश्चात्य वैज्ञानिक बहुत समय तक वृक्षों को अजीव ही मानते रहे। बाद में उन्होंने सोचा कि पत्थर एक बार जैसा पड़ा रहता है, वर्षों तक बिना हटाये हुए वैसा ही रहता है। किन्तु एक गुलाब का फूल कली के रूप में उगता है, विकसित होता है और फिर मुरझा कर गिर जाता है। उन्होंने सोचा कि वृक्षों का यह जीवन तो प्राणियों के समान है। अतः वह समझने लगे कि वृक्ष एक दम अजीव तो नहीं हैं, वरन् यह आधे सजीव और आधे अजीव अवश्य हैं। किन्तु वैज्ञानिक उन्नति के साथ २ वनस्पतियों के विषय में अनुसन्धान कार्य भी अधिकाधिक ही होता गया।

अन्त में भारत माता के विद्वान रत्न, संसार के प्रमुख वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बोस ने अपने नवीन आविष्कारों से यह सिद्ध करके वैज्ञानिक संसार को चमत्कृत कर दिया कि वृक्षों में भी जीव है। यहां तक ही नहीं, उन्होंने वृक्षों में हर्ष विषाद राग और द्वेष के मनोविकारों तक को भी सिद्ध कर दिया। इस महान् आविष्कार से पाश्चात्य वैज्ञानिकों को वृक्षों में जीव स्वीकार करना पड़ा।

वनस्पति संसार के कार्य करने का शान्त ढंग

सारांश यह है कि वृक्षों और प्राणियों में एकसा ही जीव है। वृक्षों में तो यहां तक कहा जा सकता है कि प्राणियों से भी कुछ अधिक विशेषता है। हम कहते हैं कि घोड़ा जीता है, क्योंकि वह जीवित दिखलाई देता है। किन्तु हम जानते हैं कि

वृक्ष जीवत है, क्योंकि वह पशु और मनुष्यों को भी जीवित रहने में सहायता देता है।

यद्यपि पौदे बिल्कुल शान्त और चुपचाप रहते हैं, किन्तु उनका जीवन बड़ा महत्वपूर्ण होता है; क्योंकि प्राणियों का जीवन इन्हीं से संभव है। प्राणि पौदों से ही जीते हैं। यदि पौदे न होते तो सब प्राणि मर जाते।

प्राणि बहुत शोर करते हैं, किन्तु वनस्पति अपना सब कार्य शान्त रूप से कर लेते हैं। हमको यह प्रमाणित करने के लिये कि हम जीवित हैं, सदा ही चिल्लाने, कूदने, भौंकने, अथवा बाजा बजाते रहने की ही आवश्यकता नहीं है। पौदे भी इनमें से कोई कार्य नहीं करते, तौ भी उनके जीवन से सबकी जीवन यात्रा होती है।

इसका अभिप्राय यह है कि गति करना ही जीवित रहने का प्रमाण नहीं है। यदि वृक्ष की पत्ती को एक आतिशी शीशे से देखा जावे तो पता चलेगा कि वास्तव में वह भी चलती है। जीवन के विषय में अध्ययन केवल उसके भेदों को अध्ययन करने से ही किया जा सकता है। संसार के प्राणियों में पौदे सबसे प्राचीन हैं। वास्तव में तो आरंभिक प्राणि भी पौदों ही की सन्तान थे।

द्वितीय अध्याय

पृथ्वी के आरंभिक प्राणी

पृथ्वी में प्राणी के सबसे प्रथम उत्पन्न होते समय उसके ऊपर उनके आहार के लिये वायु, नमक और जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इस प्रकार के आहार से जीवन पालन कर सकने योग्य केवल एक ही प्राणी हो सकते थे और वह वृक्ष थे।

आज अरबों और खरबों वर्ष बीत जाने पर भी वृक्षों का वही आहार चला आता है, जो उनका सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होने के समय था। उसमें तिल मात्र भी न तो घटा ही और न बढ़ा ही।

अब हमको वनस्पति जीवन के इतिहास पर एक दृष्टि

डालती है कि वह किस प्रकार बढ़ते २ पृथ्वी भरमें फैल गये।

यदि हम पृथ्वी के अंदर को खोदना आरम्भ करें तो पृथ्वी की एक तह मिलेगी। आगे खोदने पर दूसरी तह मिलेगी और इसी प्रकार दूसरी तीसरी चौथी आदि अनेक तहें मिलती जावेंगी। अपने पिछले ग्रन्थ 'पृथ्वी और आकाश' मे हम दिखला चुके हैं कि एक समय यह सब तहें पृथ्वी के ऊपर थीं। क्रमशः ढकते २ इनके ऊपर दूसरी तहें जम गईं। नीचे खोदते जाने पर हमको भिन्न २ प्रकार के प्राणियों और पौदो के अवशेष मिलते हैं। उन अवशेषों से इस बात का पता लग सकता है कि पृथ्वी के तत्कालीन प्राणि किस प्रकार के होंगे।

आरंभ मे न तो बड़े २ वृक्ष थे और न फूल ही थे। उस समय समुद्री सिरवाल(Seaweed)के समान पौदे थे। कुछ बहुत हल्का प्रकार के ऐसे पौदे भी थे जो आजकल के पौदो के निकट संबंधी थे। उन मे से सांप की छतरी या कुकरमुत्ता (Mushroom) और एक प्रकार की घास टोडस्टूल(Toadstool)का उदाहरण दिया जा सकता है। अनुभवी लोगों का कहना है कि उस समय ऐसे २ पौदे भी थे, जिनको अब हम सूक्ष्म जीव अथवा कीटाणु (Microbes) कहते हैं और जो हमारे शरीर मे प्रवेश करके हमको बीमार कर डालते हैं।

उसके पश्चात् इतिहास मे हमको वनस्पति जीवन के कुछ अधिक उन्नति करने के चिन्ह मिलते हैं। यह समय फर्न (Fern) वृक्षों का जान पड़ता है। संभवतः उस समय प्रत्येक

बात फर्न वृक्षों के जीवन के ही अनुकूल थी। यह फर्न वृक्ष बहुत समय तक बहुत अधिक उत्पन्न होते रहे। बाद में यह बहुत बड़े २ होगये—इतने बड़े बड़े कि वैसे आजकल देखने को भी नहीं मिलते। आज उन्हीं के अवशेषों का कोयला बन गया है, जो मनुष्य जाति के लिये इतना अधिक उपयोगी है।

किन्तु इस पूरे समय भर उच्च कोटि के वनस्पतियों के कोई चिन्ह नहीं मिलते। फूलों के पौदों का तो उस समय नाम भी नहीं था। किन्तु समय पाकर फूलों के पौदे भी उत्पन्न हुए और उन्होंने शीघ्र ही अपने लिये स्थान बना लिया।

बहुत प्रकार के पौदे जिनकी बहुत अच्छी उन्नति हुई थी या तो बिलकुल नष्ट होगये या बहुत कम रह गये। फूलों के पौदे प्राचीन पौदों की अपेक्षा अधिक होशियार थे। वह पृथ्वी पर रहने के लिये अधिक उपयुक्त थे। अत वह उन्नति करते गये। जिस प्रकार मेरुदण्ड वाले प्राणि त्रस जीवों (Animals) के अधिपति हैं, उसी प्रकार फूलों वाले पौदे पौदों के ,अधिपति हैं यद्यपि फूलों वाले पौदों ने सब पुराने पौदों को नष्ट नहीं किया।

अब भी बहुत प्रकार के छोटे २ पौदों के भेद मिलते हैं। वह पृथ्वी के नीचे दबे हुए पौदों से बहुत अधिक भिन्न प्रकार के नहीं हैं। यह अवश्य है कि पौदों की कहानी बहुत छोटे पौदों से आरम्भ होकर बड़े भारी २ वृक्षों में से होती हुई फूलों के पौदों तक आती है।

प्रत्येक जीव की अनिवार्य आवश्यकता—ओषजन

अब हमको यह देखना है कि पौदों के श्वास लेने का क्या अभिप्राय है। यदि हम पौदों के श्वास लेने को समझ जावें तो हम सब प्राणियों—मनुष्य तक के श्वास लेने को समझ जावेंगे। श्वास लेने के विषय में सोचते समय हम समझते हैं कि श्वास क्रिया में सीने में हवा भरने और निकलते रहने से सीना ऊपर और नीचे होता रहता है।

किन्तु पौदों के न तो सीना होता है और न फेफड़े ही होते हैं। बहुत से अन्य प्राणियों के भी न तो सीना होता है और न फेफड़े ही होते हैं; किन्तु श्वास सभी लेते हैं। श्वास अनेक भिन्न२ तरीकों से लिया जाता है, किन्तु मूल सबका एक है। फिर चाहे पौदे, मछली अथवा मनुष्य किसी का भी श्वास लेना क्यों न हो।

जल या स्थल मे जहां कहीं भी जीव हैं, वहा ओषजन (Oxygen) नाम के पदार्थ का होना अनिवार्य है। यह ऐसी वस्तु है जो न तो देखी जा सकती है, न इसके विषय में सुना ही जासकता है; किंतु जब भी हम किसी वस्तु को देखते हैं तो ओषजन के बीच मे से ही देखते हैं, क्योंकि यह वायु का एक बड़ा भारी आवश्यक अङ्ग है। ओषजन वायु और जल दोनों मे मिलता है। यदि कोई प्राणि वायु मे रहता है तो वह वायु में से ओषजन ले लेता है। यदि वह जल में रहता है तो वह जल में से ओषजन ले लेता है।

श्वास क्रिया की व्याख्या

आरम्भिक पौदों ने पानी मे से ही ओषजन लिया था, क्योंकि वह आजकल के अनेक पौदो, केकड़ों, मछलियों तथा अन्य अनेक प्राणियो के समान जल मे ही रहते थे। किन्तु बाद के पौदे फूलो के पौदों और प्राणियों के समान जल मे से स्थल पर निकल आये। अतएव वह बिल्लियों, घोड़ों और पक्षियों के समान हवा मे से ओषजन लेने लगे।

श्वास क्रिया के दो भाग होते है, जिनमें से पहला भाग ओषजन को लेना है। प्रत्येक प्राणि को यही करना पड़ता है। यदि वह ऐसा न करे तो उसकी तत्क्षण मृत्यु होजावे। किन्तु श्वास लेने की क्रिया का दूसरा भाग क्या है? दूसरा भाग उस लिये हुए ओषजन को वापिस हवा मे छोड़ना है।

यदि श्वास क्रिया केवल इतनी ही होती तो उसका कुछ भाव न होता; बल्कि वह करने योग्य ही न होती। किंतु बात यह है कि जब ओषजन अन्दर अकेला आता है तो यह सदा बाहर किसी दूसरी वस्तु के साथ निकल जाता है। यही क्रिया सारे परिवर्तनों का मूल कारण है। ओषजन के साथ निकल जाने वाली यह दूसरी वस्तु वही रचना-सामग्री है, जिससे कोयला, हीरे या लिखने की पेंसिलें बनती हैं। उसका नाम कर्बन (Carbon) है।

श्वास के बिना कोई शरीरधारी जिन्दा नहीं रह सकता

प्राणि अथवा पौदों के शरीर में मिलने वाला कर्बन जब ओषजन से मिलता है, तो उसको एक और प्रकार का ही

वस्तु बन जाती है। उस समय इसका नाम कारबन डायोक्साइड गैस अथवा कर्बन द्विओषित (Carbon Dioxide Gas) होजाता है।

पौदे भी यह क्रिया अवश्य करते है, क्योंकि वह भी सजीव है। श्वास लिए बिना कोई प्राणि जीवित नहीं रह सकता। पौदे का श्वास लेना भी हमारे श्वास के समान ही अत्यन्त आवश्यक है। पौदा भी वास्तव मे जीवित रहने के लिये ही श्वास लेता है। पौदे का श्वास लेना बड़ी सुगमता से सिद्ध हो सकता है, क्योंकि जिस प्रकार श्वास के बिना दम घुट जाने से प्राणियों की मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार वृक्षों का भी वायु के बिना दम घुट जाने से मृत्यु हो जाती है। यदि किसी प्राणि के पास ओषजन बिल्कुल न पहुंचने दिया जावे तो वह मर जायेगा। इसी प्रकार पौदो का भी हिसाब है।

पौदों का हवा में से कर्बन निकालना

यह निश्चय है कि यदि किसी जीव को रात और दिन भर मे लगातार पर्याप्त ओषजन न मिले तो वह मर जावेगा। किन्तु पौदों को प्राणियों की अपेक्षा कम ओषजन की आवश्यकता होती है; क्यों वह प्राणियों की अपेक्षा धीरे २ श्वास लेते हैं। अधिकांश पौदे तो कुछ ऐसा कार्य करते है जो श्वास लेने के ठीक प्रतिकूल है। इस कार्य को कोई प्राणि नहीं कर सकता। इस कार्य के लिये प्रत्येक प्राणि को पौदों पर ही निर्भर

रहना पड़ता है। यह आश्चर्यजनक कार्य करने वाले पौदे सब हरे होते हैं। यदि वह घास के समान नहीं भी होते तो समुद्री सिरवाल के समान बादामी होते हैं। रंग के अन्दर थोड़ा बहुत अंतर होना कोई बात नहीं है, क्योंकि समुद्री सिरवाल को बादामी बनाने वाली भी वही रचना-सामग्री है जो घास को हरा बनाती है। यह रचना-सामग्री इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसको संसार के सब पौदों के दो बड़े विभाग करने पड़ते हैं। एक तो वह जिन में यह हरी अथवा बादामी रचना-सामग्री होती है और दूसरे वह जिन में यह रचना-सामग्री नहीं होती। पहली रचना-सामग्री वाले पौदों को हरे पौदे कहा जाता है।

लगभग सभी पौदे हरे होते हैं। किन्तु साप की छतरी जैसे एक दो ऐसे पौदे भी होते हैं जो हरे नहीं होते।

बाकी सभी पौदों की हरी रचना-सामग्री सब कहीं एक ही होती है। समुद्री सिरवाल में बादामी होने पर भी रचना-सामग्री वही होती है। उसका नाम क्लोरोफील (Clorophyll) भी है। किन्तु हम इसको हरी रचना-सामग्री ही कहेंगे।

यह हरी रचना-सामग्री अपने उस काम के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जो यह पौदों से करा लेती है। उसी हरी रचना-सामग्री के विषय में अब थोड़ा वर्णन किया जावेगा। यदि वृक्षों के कार्य का आरंभ से वर्णन किया जावे तो वह वर्णन हरी रचना-सामग्री से आरंभ न होगा। कार्य का आरंभ वृक्ष से होता है। हरी रचना-सामग्री अपने आप कुछ कार्य नहीं कर

सकती। यह अकेली पौदे के किसी काम नहीं आती, वरन उसके लिये एक बोझा बन जाती है। वास्तव मे यदि पौदों को पूरी तौर से धूप से प्रथक् रखा जावे तो वह तुरन्त मर जावेंगे अथवा उनकी सभी हरी रचना-सामग्री उन में से दूर हो जावेगी। पौदो मे इस हरी रचना-सामग्री को सूर्य बनाता है। हरी रचना-सामग्री का उपयोग भी वृक्ष को सूर्य से लाभ उठाने मे सहायता देना है।

इस हरी रचना-सामग्री के कार्य को जानने से पूर्व इसके सम्बन्ध मे सूर्य के कार्य को जानना आवश्यक है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर कोई जीव नहीं रह सकता था, क्योंकि न प्रकाश होता, न जीव रहते।

यद्यपि हरी रचना-सामग्री का अस्तित्व वृक्षो के जीवन के लिये आवश्यक है, किन्तु यह प्रकाश के जीवों को बनाने मे ही एक प्रकार का साधन है। यदि सूर्य न रहे तो ससार भर की हरी रचना-सामग्री भी हमारी सहायता नही कर सकती। उस समय सब पोदे और प्राणि तुरत मर जावें।

इस प्रकार यद्यपि हम देख चुके है कि सूर्य कितना महत्वपूर्ण है तो भी हरे पौदों की हरी रचना-सामग्री विशेष कौतुक की वस्तु है; क्योकि प्रकाश इसी के द्वारा जीवन की रचना करता है।

यह हरी रचना-सामग्री पत्तियों के अतिरिक्त पौदों के अन्य भागों मे भी होती है। हम जानते हैं कि गुलाब का डंठल हरा

होता है, किन्तु पौदों की हरी रचना-सामग्री का अधिकांश पत्तियों मे ही होता है। पत्तियों का अस्तित्व है भी केवल हरी रचना-सामग्री के वास्ते ही। पौदे की पत्तियां हरी रचना-सामग्री से काम लेने का औजार होता है। पत्तियों की रचना एक विशेष प्रकार की होती है। पत्ती चपटी और पतली होती है। पत्तियों अथवा पत्रों का चपटा और पतलापन इतना अधिक प्रसिद्ध हो गया है कि हम अन्य चपटी और पतली वस्तुओं को भी 'पत्र, ही कहते है। इंगलिश मे भी वृक्ष की पत्ती और पतली तथा चपटी वस्तु दोनों ही को 'लीफ' (Leaf or Leaves) कहते है, चाहे उसका वृक्ष से बिल्कुल ही संबंध न हो। पुस्तक के पृष्ठों को भी उसी प्रकार संस्कृत मे 'पत्र' और इंगलिश मे 'लीफ' अथवा 'लीव्ज' कहते है, क्योंकि आरंभ मे संसार भर की प्राचीन पुस्तकें पत्तों पर ही लिखी गई थीं। अब भी भारत वर्ष के प्राचीन पुस्तकालयों मे सामान्य रूप से और जैन पुस्तकालयों मे विशेष रूप से प्राचीन काल के ताड़पत्र और भोजपत्र पर लिखे हुये ग्रन्थ देखने को मिल सकते हैं। इन पत्तियो की पुस्तकों के कारण ही प्राचीनकाल में पुस्तकों का नाम 'ग्रन्थ' पड़ा था; क्यों कि संस्कृत में 'ग्रन्थ' गूथने को कहते हैं। ताड़पत्र अथवा भोजपत्र पर ग्रन्थों को लिखकर उनको एक ओर से बींध कर गूंथ दिया जाता था। कालान्तर मे गुंथी हुई पुस्तकें ही ग्रंथ कही जाने लगीं।

पत्तियों के चपटी और पतली होने का एक बड़ा अच्छा

कारण है। पत्तियों का कार्य यथासंभव अधिक से अधिक हरी रचना-सामग्री को धूप में रखना है। यदि पत्तों का आकार गेंद के जैसा होता तो उसकी केवल वही हरी-रचना-सामग्री धूप के सामने रह सकती थी जो ऊपर होती और जिसका मुख सूर्य की ओर को होता। इसके अतिरिक्त अन्दर और पीछे की सारी रचना-सामग्री अंधकार में रहती। इस प्रकार वह सारी की सारी रचना-सामग्री व्यर्थ जाती।

हरी रचना-सामग्री का धूप में क्या होता है ?

संभवत: आप के मन में यह प्रश्न कभी उपस्थित नहीं हुआ होगा कि पत्ती का आकार चपटा और पतला ही क्यों होता है ? इसका उत्तर स्पष्ट है कि पत्तियों के लिये इससे अधिक उपयोगी कोई आकार हो ही नहीं सकता था।

यह कहा जा चुका है कि धूप के द्वारा हरी रचना सामग्री कुछ कार्य करती है, अथवा यह भी कहा जा सकता है कि धूप हरी रचना सामग्री के द्वारा कुछ कार्य करती है। वह कार्य क्या है ?

पौदे के श्वास लेने का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, पौदा चारों ओर हवा से घिरा होता है। यह देखा जा चुका है कि इस हवा में ओषजन (Oxygen) तथा अन्य कई गैस भी होते हैं। अर्थात् जिस हवा में हम श्वास लेते हैं, वह कतिपय गैसों के मिश्रण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पौदे और प्राणि सभी हवा में श्वास लेते हैं, किन्तु सभी हरे पौदे एक

ऐसा कार्य भी करते हैं, जिसको कोई प्राणि नहीं कर सकता। वह वायु को खाते भी हैं। हवा के जिस गैस को पौदे खाते हैं, वह उसमे पर्याप्त मात्रा मे है। यह वही गैस है जिसको श्वास लेने मे पौदे और हम बाहिर निकलते हैं। वह कर्बन द्विओषित (कारबन डायोक्साइड—Carbon Dioxide) है।

पौदों और प्राणियों में सबसे बड़ा अन्तर

कर्बन द्विओषित में से पौदों का भोजन निकालने का ढग यह है कि वह उसका फिर उन्हीं वस्तुओं—कर्बन और ओषजन—मे विश्लेषण कर देते हैं, जिनसे वह बना होता है। इसमे से अच्छा भोजन होने के कारण वह कर्बन को रख लेते हैं और ओषजन को फिर वापिस हवा मे छोड देते हैं। आगे चलकर यह हवा मे से उससे भी बहुत अधिक कर्बन लेने लगते हैं, जितना यह उसको देते हैं। इस कर्बन से वह अपना शरीर बनाते हैं।

पौदो और प्राणियों मे सबसे बडा अंतर इस बडी शक्ति मे है कि पौदे हवा मे से कर्बन द्विओषित (कारबन डायोक्साइड) को ले लेते हैं, उसके फिर कर्बन और ओषजन दो प्रथक् २ भाग कर देते है, जिसमे से ओषजन को वह वापिस हवा में दे देते है और कर्बन से अपना शरीर बना लेते हैं। कर्बन से अपना शरीर बनाने के कारण यह कर्बन को दूसरे प्रकार की रचना-सामग्रियो मे इस प्रकार से मिलाते हैं कि उनसे प्राणियों और हमारे खाने योग्य वस्तुए बन सकें।

सभी पौदों के समान प्राणियों को भी कर्बन की आवश्यकता होती है। किन्तु यदि हमको हवा के कर्बन द्विओषित (कारबन डायोक्साइड) पर ही छोड़ दिया जाता कि हम भी उसमे से कर्बन निकाल लें तो कोयलों की खान मे अपने चारो ओर लाखों टन कर्बन मे, कई टन शीशे की पेंसिलो और कई टन हीरों मे भी हम भूख से एक या दो दिन मे ही मर जाते।

कर्बन हरे पौदो के द्वारा भोजन पदार्थ बनकर ही हमारे काम आता है। यदि इस प्रकार प्राणियो के लिये कर्बन का भोजन पौदो के द्वारा न बनाया जाता तो समस्त प्राणि भूख से तड़प २ कर मर जाते।

मनुष्यो के लिये जो काम इतना कठिन है वही काम धूप मे हरी पत्तियों के लिये अत्यंत सरल है।

हरी पत्ती मनुष्य को पराजित कर देती है

हरी पत्ती की हरी रचना-सामग्री मे अपनी निजी कोई शक्ति नहीं होती। शक्ति की उन वस्तुओ को प्रथक् २ करने के काम मे आवश्यकता होती है जो उतनी मजबूती से परस्पर बंधी हुई है। कील दीवार मे जितनी ही मजबूती से गड़ी होगी उसको निकालने में उतनी ही अधिक शक्ति लगेगी।

धूप के समान बलवाली संसार की कोई शक्ति नही है। हरी पत्तियों पर पड़ने वाली धूप भी शक्ति ही है। चतुर मनुष्य पत्तियों से भी अधिक धूप को एकत्रित कर सकते हैं। किन्तु वह उससे वह कार्य नहीं ले सकते जो हरी पत्तिया ले लेती है।

अपनी हरी रचना-सामग्री के कारण हरी पत्ती मनुष्य को पराजित कर देती है। उसमें हरी रचना-सामग्री धूप से इस प्रकार काम ले लेती है कि कर्बन द्विओषित (कारबन डायोक्साइड) के टुकड़े २ होकर उसके कर्बन और ओषजन पृथक् २ हो जाते हैं। उसमें से वह कर्बन को पौदों के लिये रख लेते हैं। यह सारा कार्य बिना किसी भी प्रकार का शोर मचाये या खड़का किये, बिना किसी मशीन, बिना अधिक उष्णता के, बिना कुछ बर्बाद किये अथवा बिना किसी वस्तु को तोड़े फोड़े ही हो जाता है।

संसार की प्रत्येक हरी पत्ती में यही चमत्कार हो रहा है।

तृतय अध्याय

जीव जल मे स्थल पर कैसे आये

यह पहले दिखलाया जा चुका है कि आरम्भ मे पृथ्वी केवल एक आग का गोला मात्र थी। धीरे २ यह ठंडी हुई और उसके ऊपर वायु, जल और नमक उत्पन्न हुए। उस आहार के योग्य केवल वृक्ष ही हो सकते थे, अतः आरम्भ मे जल मे ही छोटे २ पौदे हुए।

समय बीतने पर आरंभिक प्राणि—पौदो ने अन्य प्राणियों को उत्पन्न किया। इनमे बहुत से अपने उत्पन्न करने वालों से अनेक बातों मे भिन्न थे। अब समुद्र में केवल बहुत से प्राणि ही नहीं होगए वरन अनेक प्रकार के प्राणि भी हो गये। इन्हीं मे आरंभिक त्रस जीव (Animals) भी थे।

इसी समय समुद्र में उत्पन्न हुए जीवों ने धीरे धीरे पानी को छोड़ा।

सम्भव है कि जीवों को जल से स्थल पर आने में चन्द्रमा ने सहायता दी हो, क्योंकि चन्द्रमा लहरें उठाता है। सम्भव है कि लहरों मे बहकर कुछ प्राणि किनारे पर आगये हो। यह भी संभव है कि प्राणियों वाले स्थान को जल ने ही छोड़ दिया हो और इस प्रकार प्राणियों को स्वय ही स्थल पर छूट कर वहा रहने का अभ्यासी बनना पड़ा हो।

आज भी समुद्र मे बहुत से ऐसे प्राणि है जो उथले जल मे किसी चट्टान आदि पर रहते हैं। जिस समय चट्टान के ऊपर से ज्वार भाटे के कारण जल हट जाता है तो उनको उतना देर के लिये बिना जल के रहना पड़ता है। इस प्रकार धीरे २ वह बिना जल के रहना सीख जाते हैं। इसी प्रकार अधिक समय तक अभ्यासी होने पर वह स्वयं ही स्थल पर आ जाते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह बिलकुल ही बिना जल के रहते थे, क्योंकि जल के बिना तो कोई प्राणि जीवित ही नहीं रह सकता। हमारे शरीर मे भी तीन चौथाई भाग केवल जल ही है। इसका अभिप्राय केवल यह है कि यह प्राणि जल से बिना ढके हुए रहने के अभ्यासी होगए।

जीवों का जल में उत्पन्न होकर जल में से स्थल पर

आना वास्तव में बड़ा महत्वपूर्ण है।

जीवों के जल की अपेक्षा स्थल पर अधिक उन्नति करने का क्या कारण है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व हमको यह स्मरण करा देना चाहिये कि जीवों ने समुद्र मे बहुत कम उन्नति की है। समुद्र मे सबसे उच्चकोटि के जीव मछलियां है। मछलियों में सबसे चतुर और सबसे बड़ी मछलियां भी अत्यन्त मूर्ख और नम्र होती हैं। वह बिल्कुल ही अपने चारों ओर के जल के समान ठंडी होती है। बुद्धि तो उनमें होती ही नहीं। जब तक वह समुद्र में हैं, वह कोई उन्नति नहीं कर सकतीं।

यह सत्य है कि समुद्र मे ह्वेल और सील (Seal) मछली जैसे उष्णरक्त वाले प्राणि भी होते है। किंतु यद्यपि वह मछलियां जैसे दिखलाई देते हैं, तौभी वह मछली न होकर उनसे कहीं अधिक उच्चकोटि के प्राणि है। इतिहास उनका भी छोटा सा ही है। यद्यपि यह प्राणि समुद्र में रहते हैं, किंतु यह हवा मे श्वास लेते हैं। चालाक से चालाक ह्वेल को भी ताजी हवा लेने के लिये पानी के ऊपर आना ही पड़ता है।

समुद्र की तली में ओषजन किस प्रकार पहुंचता है।

यह बतलाया जा चुका है कि बिना श्वास के कोई प्राणि जीवित नहीं रह सकता। अर्थात उसको प्रत्येक बार ताजे ओषजन (Oxygen) की आवश्यकता पड़ती है। जिस दर से

कोई प्राणि ओषजन को प्राप्त करता और उससे काम लेता है उसी दर से वह जीवित रहता है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि उसके ओषजन प्राप्त करने की दर वहां के ओषजन के परिमाण पर निर्भर है।

यद्यपि जीव जल मे उत्पन्न हुए और उसी मे अनेक युगों तक रहे, किंतु पानी मे ओषजन के थोड़े परिमाण मे होने के कारण वह वहां अधिक उन्नति नहीं कर सकते थे, क्योंकि जिसके पास थोड़े से ही दाम हों वह खर्च भी अधिक नहीं कर सकता। जीव अनेक युगो तक जल मे रहते हुए अधिक से अधिक ओषजन का बनाना सीखते रहे। जब वह अधिक से अधिक का बनाना सीख गये तो वह अधिक न बना सके।

पानी को थोडे से थोडा ओषजन भी वायु से ही मिलता है। इस प्रकार जल के ऊपर के भाग में बहुत सा ओषजन हुआ करता है। जल के नीचे ओषजन क्रमशः कम होता जाता है। किंतु ओषजन का अस्तित्व समुद्र की नीची से नीची तली तक मे है। समुद्र की इतनी गहराई मे ओषजन को ठंडे पानी की वह धाराएं पहुंचाती है जो ठंडे देशों में पृथ्वी के तल पर थीं और जो बाद मे क्रमश उष्ण प्रदेश में आती-आती अपने साथ में ओषजन लिये हुए जल के नीचे होती गई।

आरम्भिक जीव किस प्रकार धीरे२ स्थल पर आये होंगे

यह निश्चय है कि समुद्र के पास के उथले जल के स्थान में ही— जहां लहरें पानी को बराबर पतली २ तहों में फैलाती

रहती है--अधिक से अधिक ओषजन हो सकता है। इसी कारण समुद्र के ऐसे स्थानों मे चट्टानों आदि पर इतने अधिक प्रकार के जीव होते हैं। इस प्रकार अधिक से अधिक ओषजन मे रहने वाले यह जीव ही वायु के समुद्र मे डूबना सीखते है।

जल मे जहा ओषजन इतना कम है वहा वायु में समस्त वायु का पाचवा भाग मात्र केवल ओषजन ही है। इन दोनों स्थानों के ओषजन की तुलना करते हुए हिन्दी की बड़ी पुरानी कहावत स्मरण हो आती है, 'कहा राजा भोज और कहा गगुआ तेली'।

इस प्रकार जीवों के जल से स्थल पर आने से उनको बहुत लाभ हुआ। निःसंदेह उनके आरंभिक दिन बड़े कष्ट के थे, क्योंकि जिन साधनों से जल में श्वास लिया जाता है उन साधनों का उपयोग वायु मे श्वास लेने के काम मे नहीं किया जा सकता। यह बात बड़ी विचित्र है, किन्तु इसके तथ्य को हम सब जानते हैं, क्या कि जल से निकाले जाने पर मछली मर जाती है। यद्यपि वह जल की अपेक्षा वायु मे अधिक ओषजन से घिरी होती है, किन्तु वायु मे वह बिना ओषजन के ही मर जाती है। अर्थात उसका दम घुट जाता है। मछलियों के फेफड़े नहीं होते। केवल गलफड़े (Gills) होते हैं। इन मे पानी के अंदर ओषजन के छन जाने का प्रबन्ध रहता है।

जीवों का उन्नति के पथ पर अग्रसर होना

इस प्रकार जीवों को किनारे पर आने के पश्चात् हवा

से ओषजन लेने वाले फेफड़ों का आविष्कार करने का ढंग सोचना पड़ा होगा, क्योंकि बिना फेफड़ों के वह सब के सब जीव मछली के समान मर जाते।

किसी न किसी तरह इस कठिनाई पर भी विजय प्राप्त करली गई। यह बतलाया जा चुका है कि लहरें उनके ऊपर से हटकर उनको बाहर हवा में साम लेने का अवसर दे दिया करती थीं, और थोड़ी देर में ही वह जल को लिये हुए उनकी रक्षा के लिये फिर आजाती थी। इसी प्रकार बहुत समय और अनेक असफलताओं के पश्चात बड़ा भारी कार्य हुआ, क्योंकि अधिकाश जीव तब भी जल में ही थे और आज भी जल में ही हैं। इसके पीछे ही इतिहास के सब ऊंचे और आश्चर्यजनक दर्जे आये।

जीवों ने जल से स्थल पर अधिक ओषजन में आकर क्या लाभ उठाया ? समुद्र में इतना कम ओष-जन है कि मछली श्वास के अतिरिक्त अपने को उष्ण करने के लिये भी उसका उपयोग नहीं कर पाती। यदि आपके कमरे में अनेक प्रकार की वस्तुएं हैं और आप उनको कमरे में थोड़ी देर के लिये छोड़ देंगे तो आपको पता लगेगा कि उनमें से प्रत्येक उतनी ही उष्ण होगई जितनी दूसरी वस्तुएं हैं। अब यदि आप एक उष्ण जल के बर्तन को कमरे में लाओगे तो जल धीरे २ ठंडा हो जावेगा और कमरे की दूसरी वस्तुएं कुछ अधिक उष्ण हो जावेंगी; यद्यपि यह बात

आपके ध्यान में नहीं आवेगा। इस विषय में नियम यह है कि किसी स्थान की उष्णता अपने को प्रत्येक वस्तु के ऊपर फैला देती है, जिससे सब वस्तुओं की उष्णता एकसी होजावे। मछली जैसे ठंडे रक्त के प्राणियों के विषय में भी यही बात है। वह भी अपने चारों ओर की वस्तु जैसी भी हो उष्ण बनी रहती है। बहुत ठंडे जल में वह ठंडी होती है और उष्ण जल में वह उष्ण भी होती है।

अब हमको उष्ण रक्त वाले प्राणियों की मछलियों से तुलना करनी है। आपके हाथ की मछली ठंडी है, किंतु आपका हाथ उष्ण है। यही नहीं, वरन् आपका सारे का सारा शरीर ही उष्ण है। इसी कारण आपके हाथ को दूसरी वस्तुएं ठंडी लगती है। तथ्य यह है कि वायु में श्वास लेने वाले प्राणि चाहे जितना ओषजन ले सकते हैं। अपनी आवश्यकता के अनुसार ले लेने पर वह अपने आमोद प्रमोद के लिये ओषजन को लेते हैं। वह अपने अंदर केवल अग्नि जला कर ही अपने को उष्ण कर लेते हैं। उष्ण रक्त वाले प्राणि अपने चारों ओर की वस्तुओं की अपेक्षा अधिक उष्ण होते हैं, क्योंकि वह वायु से बहुत सा ओषजन ले लेकर अपने लिये अपने अन्दर बहुत सी उष्णता बनाते रहते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह अपने को ओषजन से ही चाहे जितना उष्ण—एक दिन बहुत उष्ण और दूसरे दिन कम उष्ण—बना सकते हैं। उष्ण रक्त वाले प्राणि सब दिन एक से ही उष्ण बने रहते हैं; और सभी उष्ण रक्त वाले प्राणियों में

एक सी ही उष्णता होती है। हम प्रायः सोचा करते हैं कि पक्षि, हाथी, घोड़ा और मनुष्य का भिन्न २ तापमान होता होगा, किन्तु ऐसा नहीं है। तापमान वास्तव में सब के शरीर में एक सा ही है।

सब प्राणियों के अन्दर आग जलती रहती है

दूसरे प्राणियों की अपेक्षा पक्षि थोड़े अधिक उष्ण होते हैं। किन्तु दूसरे प्राणियों से पक्षियों की इस उष्णता का अंतर बहुत ही थोड़ा होता है। यह कहना ठीक होगा कि सभी उष्ण रक्त वाले प्राणि एक ही परिमाण की उष्णता में जीते हैं। इसका यह अभिप्राय है कि एक विशेष तापमान पर ही जीवन सुगमता से बना रह सकता है। शरीर में उस निश्चित तापमान के होने पर ही जीवित शरीर के अन्दर होने वाले परिवर्तन सुगमता से हो सकते हैं। जीवों के जल में रहते हुए शरीर उस तापमान पर कभी नहीं पहुंच सकते थे। तो भी एक या दो मछली ऐसी मिली हैं जो अपने चारों ओर के जल से अधिक उष्ण होती हैं।

जब तक जीव जल से स्थल पर आकर वायु में श्वास लेकर पर्याप्त ओषजन लेना नहीं सीखे तब तक उनको सदा उष्ण बने रहने योग्य तापमान नहीं मिला। इस प्रकार ओषजन की अधिकता से स्थल के प्राणियों को बड़ी २ सुविधाएं मिल गईं। यह बात बड़ी कौतुक पूर्ण है कि यद्यपि वनस्पति सम्बन्धी जीव जल और स्थल दोनों में ही हैं, किन्तु उन्होंने वायु में अधिक ओषजन होने का कोई लाभ नहीं उठाया। पौदे बहुत धीरे २ श्वास लेते हैं। यद्यपि कुछ पौदों का तापमान

दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक होता है किन्तु उनका तापमान इतना कभी नहीं हुआ कि उष्ण रक्त वाले प्राणियों के समान उष्ण हो जाता।

जीवों का वायु में उड़ना अधिक महत्व पूर्ण नहीं है

यह विचार किया जा सकता है जीवों ने एक उन्नति जल से स्थल पर आकर की, तो दूसरी उन्नति स्थल से आकाश मे पक्षियों के समान जाकर की। किन्तु यह उन्नति कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं थी, क्यों कि वायु स्थल और उस के ऊपर दोनों ही जगह बराबर है। यह ठीक है कि पक्षि अपने समय का अधिक भाग आकाश में ही व्यतीत करते हैं और वह वायु के इस बड़े समुद्र में तैर सकते हैं, जब कि हम पृथ्वी पर ही चलते रहते है। किंतु वास्तव में पक्षि भी हमारे समान स्थल पर ही रहते है। वह न तो वायु मे सोते हैं और न वायु मे अपने घोसले बनाते है। उनकी विशेषता तो केवल यही है कि यद्यपि उनका घर स्थल पर है किन्तु वह चाहे जब आकाश की सैर भी कर सकते हैं।

अतएव जीवन की कहानी मे उन्नति का एक ही चरण है और वह है जीवों का जल में से स्थल पर आना। पक्षि भी वास्तव में स्थल का ही प्राणि है। यह अवश्य है कि वह आकाश में उड़ता है और अपना घर बनाने की चिन्ता में स्थल पर कभी चक्कर नहीं काटता।

यहां यह बात स्मरण रखने की है कि यद्यपि जीव जल

से स्थल पर आ गए किन्तु वह बिना जल के कभी जीवित नहीं रह सकते।

स्थल प्राणि भी मछलियों के ही समान हैं

जल की आवश्यकता पौदों, स्थल प्राणियों और पक्षियों सब को ही होती है। आकाश में उड़ने वाला लवा पक्षि और समुद्र गर्भ में रहने वाली मछली दोनों को ही जल की समान रूप से आवश्यकता है। आकाश में जाते समय लवा अपने शरीर में तरल जल लिये रहती है। उसके अन्दर का यह तरल जल ही उसको आकाश मे भी जीवित रखता है। यदि उस पानी को निकाल लिया जावे तो लवा तुरन्त मर जाय। लवा के समान ही प्रत्येक प्राणि के विषय मे भी यही बात ठीक है।

एक विद्वान् फ्रांसीसी ने एक बार प्राणियों के शरीर के जल की परीक्षा की तो उसको पता चला कि उस मे अनेक क्षार मिले हुए है। सब से अधिक परिमाण उस मे साभर क्षार का था, जिसको हम नित्य खाते हैं। यह सब वही क्षार हैं जो समुद्र के जल मे मिलते है और समुद्र के जल के परिमाण के अनुसार ही यह हमारे शरीर के जल में मिले हुए हैं।

इस से इस बड़ी भारी महत्त्वपूर्ण बात का पता लगा कि स्थल प्राणि स्थल पर चाहे जो करते रहें किन्तु उनको भी जल जन्तुओं के समान ही जल की आवश्यकता रहती है। जब पृथ्वी के अधिकांश समुद्र सूख जावेंगे और पृथ्वी हमारे मंगल ग्रह के समान सूखी हो जावेगी तो उस समय निःसंदेह प्राणि जल बिना जीवित नहीं रह सकेंगे।

चतुर्थ अध्याय

जीवों द्वारा शरीर की रचना

इस अध्याय मे जीवों की शरीर रचना के विषय मे बतलाया जावेगा। आरंभिक प्राणि दो कारणों से संसार मे कुछ उन्नति न कर सके। समुद्र में रहने के कारण न तो उनको पर्याप्त ओषजन ही मिल सकता था और न उनके मेरुदंड ही था और बिना मेरुदंड के कोई प्राणि संसार मे महत्त्वपूर्ण उन्नति नही कर सकता।

यदि हम संसार के समस्त प्राणियों को अपने सामने बुला सकें और उनको सावधानी से देखें तो उनमें अनेक विभिन्नताएं होते हुए भी वह मुख्य रूप से दो विभागों में इस प्रकार विभक्त दिखलाई देंगे कि एक विभाग के प्राणि दूसरे विभाग के प्राणियों की अपेक्षा बहुत कुछ एक दूसरे के समान दिखलाई

देंगे। एक विभाग में हमको मेरुदंड वाले प्राणियों को रखना होगा और दूसरे विभाग मे बिना मेरुदंड वालों को।

यह सत्य है कि कुछ ऐसे प्राणि भी हैं, जिनका विभाग निश्चित करना कठिन है। कुछ ऐसे प्राणि हैं जिनके मेरुदंड केवल आधा ही होता है अथवा जो कुछ २ मेरुदंड जैसा दिखलाई देता है। यह प्राणि बडे शिक्षाप्रद होते हैं, क्योंकि मेरुदंड (रीढ़ की हड्डी) की उन्नति करने की शिक्षा हमको इनसे ही मिलती है।

आरंभ मे सबसे कम महत्त्वपूर्ण प्राणियों को लेना चाहिये, अर्थात् उनको, जिनके मेरुदंड बिल्कुल ही नहीं होता। उनका वर्णन पहिले इसलिये किया जाता है कि वह स्वभाविक रूप से आरंभ मे ही आते है। अनेक युगों से समुद्र मे अनेक प्रकार के प्राणि रहते थे। स्थल पर भी उस समय बिना मेरुदंड वाले अनेक प्राणि रहते थे। उस समय स्थल और जल में कहीं भी मेरुदंड अथवा मस्तिष्क ढूंढ़े से नहीं मिल सकते थे।

इन बिना मेरुदंड वाले प्राणियों को किसी क्रम मे रखना बड़ा कठिन है। इनमें से कुछ अधिक आश्चर्य जनक होते हैं। वह बहुत दिनों तक चलते भी नहीं। किन्तु एक दूसरे से उनमें इतनी अधिक विभिन्नता होती है कि उनको एक साधारण क्रम मे रखना वास्तव मे असंभव है। वास्तव मे यह कीड़े मकौड़े, सीप के कीड़े (Oysters) और कीड़े बहुत हल्के प्राणि और महत्त्वशून्य होते हैं।

मस्तिष्क इनमें से किसी के नहीं होता। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उनको स्पर्श का पता नहीं चलता। न इसका यह अभिप्राय है कि वह अनेक प्रकार से आश्चर्यजनक नहीं है। किन्तु मस्तिष्क की रचना न होने तक प्राणि सृष्टि में कोई अधिक उन्नति न की जा सकी। अतएव यहां बिना मेरुदंड वाले प्राणियों के विषय में इससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

न यहां उन विचित्र प्राणियों के ही विषय में कहने की आवश्यकता है जिनमें मेरुदंड के आरंभ होने के चिन्ह मिलते हैं। हमें समय केवल उन प्राणियों का वर्णन करना है, जिनमें मेरुदंड पूरा मिलता है, ऐसे प्राणि मछलियां है।

मेरुदंड वाले सभी प्राणियों का अध्ययन किया जावे तो पता चलेगा कि उनको एक साधारण क्रम में श्रेणी बद्ध किया जा सकता है। यहां तक कहा जा सकता है कि उनमे कौनसा विभाग पहिले आया और कौनसा बाद में आया, इत्यादि।

इस प्रकार मेरुदंड वाले सभी प्राणियों के पांच विभाग किये जा सकते हैं—मछलियां, मण्डूक श्रेणि अथवा जल स्थलचर (Amphila), सरीसृप (Reptibs), पक्षि और स्तन-पोषित। इनमें से किसी की भी व्याख्या कठिन नहीं है। (Mammals) मेंढक और कछुवे को जल तथा स्थल दोनों में रहने वाला कह सकते हैं। पेट के बल फिसल कर चलने वाले प्राणियों को सरीसृप कहते हैं। आकाश में उड़ने वाले प्राणियों को पक्षि और अपने बच्चों को दूध पिलाने वाले प्राणियों को स्तनपोषित

प्राणि कहते हैं ।

मेरुदण्ड वाले प्राणियों का इतिहास

यद्यपि मछली, मेंढक, सर्प, बाज और गौ में बड़ा भारी अन्तर है, किन्तु शरीर की मुख्य २ बातों में यह प्राणि परस्पर बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, क्योंकि इन सब के ही मेरुदण्ड होता है। यह आगे बतलाया जावेगा कि वह इनके अतिरिक्त अन्य अनेक बातों में भी मिलते जुलते हैं। यह सत्य है कि मछली का रक्त ठंडा होता है और वह पानी अथवा पानी में मिली हवा में सांस लेती है, जब कि गौ अथवा बाज उष्ण रक्त वाले होते हैं और वह हवा में सांस लेते हैं। किंतु अपने शरीर के इतिहास के विषय में यह सब प्राणि एक दूसरे से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

यह तो निश्चय है कि आरंभ में मछलियां उत्पन्न हुईं। मछलियों के शरीर के ढांचे का मुख्य भाग उनकी रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) ही है। मछली के शरीर के अन्दर यह हड्डी मांस के कोमल २ पट्ठों और खाल से ढकी होती है। मेरुदण्ड वाले अन्य प्राणियों के शरीर में भी हड्डियों का सारा ढांचा इस हड्डी के ही चारों ओर लगा रहता है।

किन्तु ह्वेल जैसे प्राणियों को मछलियों में नहीं गिनना चाहिये, क्यों कि मछली की तुलना में ह्वेलें बहुत बाद में उत्पन्न हुईं। यहां यह बात भी न भूलनी चाहिये कि समुद्र में केवल मछलियां ही नहीं होतीं, वरन् अन्य अनेक प्राणि भी होते हैं। उन में से

कुछ प्राणियों का अस्तित्व समुद्र में मछलियों से भी अनेक युग पूर्व था। उन प्राणियों के न तो मेरुदण्ड ही है और न उन में मस्तिष्क का ही कोई चिन्ह है। यह प्राणि मछली से उतने ही नीचे हैं, जितनी गाय से मछली नीची है। केकड़े को केवल पानी में रहने के कारण हमको मछली कहने का अधिकार नहीं है, उसी प्रकार हवा में सांस लेने से मक्खी को भी हमको पक्षि नहीं कहना चाहिये।

मेरुदण्ड वाले प्राणियों के प्रायः अङ्गोपाङ्ग भी होते हैं। उनके या तो पशुओं के समान अगले और पिछले पैर होते हैं अथवा मनुष्यों के समान हाथ और पैर होते हैं अथवा पक्षियों के समान पंख और पैर होते हैं। शरीर की रचना के इतिहास में इन अङ्गों का निर्माण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है।

शरीरों का निर्माण—मछली का स्थल का पशु बन जाना

मछली के शरीर में अङ्गों जैसा भाग उनके पर होते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि कुछ मछलियों ने—जिनके सिर से पूंछ तक दोनों ओर बड़े २ लम्बे पर फैले हुए थे—अधिक उच्च और बाद के प्राणियों के शरीरों के निर्माण में बड़ा महत्त्व-पूर्ण कार्य किया था; क्यों कि अनेक युग बीतने पर इन्हीं लम्बे परों के शरीर के दोनों ओर अगले और पिछले भाग में दो २ अङ्ग बन गए। इस समय के पश्चात यह अङ्ग मेरुदण्ड वाले सभी प्राणियों में मिलते हैं।

यह पीछे दिखलाया जा चुका है कि पहिली उन्नति

प्राणियों ने जल से किनारे पर आकर की। हम जानते हैं कि इस समय कुछ ऐसी मछलियां भी हैं जो कुछ समय तक वायु में रह सकती हैं। इन में से कुछ मछलियां बड़ी चतुर होती हैं और वह कीचड़ पर फुदकती रहती है। यह मछलियां प्राणियों के जल में से स्थल पर आने का अच्छा अनुमान करा सकती हैं। यदि हम मेरुदंड वाले प्राणियों के दूसरे विभाग—मण्डूक श्रेणि (जल-स्थल--चर प्राणियों) का अध्ययन करें तो इस घटना से उनके विषय में भी बहुत कुछ अध्ययन कर सकते हैं। यह प्राणि जल और स्थल दोनों ही में रहते हैं।

मेंढकों के पूर्वज ही मेरुदंड वाले प्राणियों के मार्गप्रदर्शक थे

मेंढक के बच्चे को टाडपोल (Tadpole) कहते हैं। यह पानी में रहता है और पानी में ही श्वास लेता है। यदि यह और उन्नति न करे तो इसको भी ठीक २ मछली ही कहा जावे। जब तक यह टाडपोल रहता है तब तक तो यह मछली ही है। यदि यह मछली के अतिरिक्त,अन्य कुछ न होता तो यह सदा जल में ही रहता। किन्तु टाडपोल एकसा ही नहीं रहता। कुछ समय के पश्चात उस में बड़े २ परिवर्तन होने लगते हैं। उस में अङ्ग उत्पन्न होने के लक्षण दिखाई देने हैं। फिर फेफड़ों (फुफ्फुसों) का चिन्ह उत्पन्न होता है। अन्त में छोटा सा टाडपोल बढ़ कर हाथ और पैरों वाला मेंढक होजाता है। तब यह फेफड़ों से हवा में श्वास लेता है। मेंढक की केवल इतनी ही उन्नति नहीं होती। मेंढक के हमारे समान ही हाथ होते हैं।

प्रत्येक हाथ में चार अंगुलियां और एक अगूठा होता है। उसके पैरों में भी पांच अंगुलियां होती हैं। अनेक युगों पूर्व आरंभिक मेंढकों ने अङ्गों के निर्माण की वह प्रणाली चलाई कि बाद में सभी मेरुदंड वाले प्राणियों को उसीका अनुसरण करना पड़ा। किन्तु पक्षियों के इस प्रकार के हाथ नहीं होते।

जब टाडपोल बढ़ कर चार हाथ पैर वाला और फेफड़ों से हवा में श्वास लेने वाला मेरुदंड युक्त प्राणि बन जाता है, तब वह बहुत कुछ सरीसृप (Reptile) के आकार का हो जाता है। वह सर्प के जैसा न होकर बहुत कुछ छिपकली जैसे आकार का—यदि छिपकली के पूंछ न हो तो—बन जाता है। सारांश यह है कि मण्डूक श्रेणि वाले (जल—स्थल—चर प्राणि) अपनी छोटी दशा में मछली तथा बड़ी दशा में सरीसृपों के आकार के हो जाते हैं। छोटा सा टाडपोल तो पूरी तरह से मछली ही होता है, क्यों कि उस की रचना मछली जैसी होता है और वह आचरण भी मछली के जैसा ही करता है। बड़ा मेंढक भी प्राय. सरीसृप ही होता है, क्यों कि उस की रचना सरीसृपों के समान होती है और वह ठीक उसी प्रकार आचरण करता है।

जिस समय सरीसृप ही पृथ्वी के अधिपति थे

अब मंडूक श्रेणि वाले अथवा जल--स्थल-चर प्राणियों के विषय को छोड़ कर तीसरे वर्ग—सरीसृपों—का वर्णन किया जाता है। इन के विषय में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि बहुत से

सरीसृपों के अङ्ग धीरे-धीरे झड़ गये और क्रमश वह बहुत लम्बे और गोल होकर रेंग कर चलने लगे। यहा तक कि उनका आकार सर्पों के जैसा बन गया। सापों के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि उनके पूर्वजों के भी अंग थे। इस समय सर्प के अग नहीं होते। उसके अग झड़ गये और उसने इस विषय मे कोई उन्नति नहीं की।

अब हम अधिक ऊंचे चलकर अपने समय के आसपास आते है। प्राणियों के इतिहास मे एक ऐसा समय था, जिस समय सरीसृप ही पृथ्वी के अधिपति थे। तब उनके काटने के लिये कोई प्राणि नहीं था। वह आकार मे भी बड़े २ लम्बे हो गये थे। अजायबघरों मे उनके अवशेष अब भी बीस-बीस गज लम्बे रक्खे हुए है। उनमे से कुछ छोटों छोटों के दोनों ओर फैले हुए पजों मे एक प्रकार का ऐसा जाला लगा हुआ था जैसा तैरने वाले प्राणियों के पजों मे लगा होता है। उनसे वह थोड़ा बहुत उड़ भी सकते थे। उनमे से कुछ तो संभवत: अत्यत भयानक और शक्तिशाली थे। उन के दात बड़े भयकर थे। सरीसृपों के युग की पृथ्वी बड़ी विचित्र रही होगी।

इसके पश्चात् एक बड़ी आश्चर्य जनक बात हुई। इस बात का अनुमान बहुत समय पूर्व ही किया गया था। किन्तु उसका प्रमाण गत शताब्दी मे उन प्राणियों के अवशेष मिलने से ही मिला है, उक्त प्राणियों का पृथ्वी पर अब अस्तित्व नहीं है।

पृथ्वी पर आरम्भ में पक्षियों का प्रगट होना

यदि आप सर्प को देखकर लवा को देखोगे तो आपको इस बात का कभी विश्वास न आवेगा कि पक्षियो ने सर्पों से ही उन्नति की है। किन्तु यदि हम छिपकली जैसे अंगों वाले प्राणि को देखकर फिर कुछ भूतकाल के प्राणियो के अवशेषो को देखे तो हमको इस बात का विश्वास हो जावेगा कि पक्षि सरीसृपों मे से ही प्रगट हुए हैं।

सरीसृपों और पक्षियो में बड़ा भारी अन्तर है। उनके आकार और जीवन के ढंग सभी भिन्न २ है। उदाहरणार्थ इस समय किसी पक्षि के दात नही होते। पक्षियो के बालो के पंख (Feather) होते है। इत्यादि, तो भी ऐसे २ पक्षियो के अवशेष मिले है, जिनके कभी दात थे। अतएव यह निश्चय है कि पक्षि सरीसृपो मे से ही उन्नति करके उत्पन्न हुए है।

पक्षियों के प्रेमी उनको प्राय: स्तनपोषित प्राणियो (Mammals) के समकक्ष रखते है। यह सत्य है कि कुछ बातो मे पक्षि स्तनपोषित प्राणियों से मिलते भी है। यहा तक कि कुछ बातों मे तो वह स्तनपोषित प्राणियो से भी अधिक उच्च होते है। किन्तु इस विषय मे कोई सदेह नही है कि प्राणियो मे सब से उच्च कोटि के स्तनपोषित प्राणि ही है।

यह बहुत सम्भव जान पड़ता है कि पक्षियों के समान स्तनपोषित प्राणि सरीसृपो मे से नही निकले। यह भी बिल्कुल ही निश्चित है कि न तो पक्षि ही स्तनपोषित प्राणियों में से

प्राणियों का आश्चर्यजनक क्रमिक विकास

(पृ० ३८, ३९)

निकले हैं और न स्तनपोषित प्राणि ही पक्षियों में से निकले हैं। स्तनपोषित प्राणियों के निकास को जानने के लिये हमको सीधे मडूक श्रेणि अथवा जल-स्थल-चर प्राणियों में जाना होगा।

प्राणि संसार की बड़ी भारी उन्नति

यह बतलाया जा चुका है कि मछलियों से जल-स्थल-चर प्रगट हुए और किस प्रकार कुछ जल-स्थल-चरों से सरीसृप और पक्षि प्रगट हुए। इन्हीं दूसरे जल-स्थल-चरों में से स्तनपोषित प्राणि निकले हैं। कुछ आरंभिक स्तनपोषित प्राणियों को पृथ्वी पर बड़े कष्टकर दिन बिताने पड़े होंगे। सरीसृपों के युग में तो उनको बड़ी भारी कठिनता का सामना करना पड़ा होगा।

उन में सरीसृपों के जैसी शक्ति नहीं थी, तो भी वह जीवित रहे और फैलते रहे। वह सरीसृपों से प्रायः बचते रहते थे और ऐसे कोनों में चले जाते थे जहां सरीसृप रहना नहीं चाहते। वह अपने बच्चों की रक्षा के लिए विशेष रूप से एकान्त पसन्द करते थे। संसार में बच्चों के लिये इतनी अधिक चिन्ता और कोई प्राणि नहीं करते, जितनी स्तनपोषित प्राणि करते हैं। इस प्रकार वह उत्तरोत्तर बलवान होते चले गए। यहां तक कि उन में से आज मनुष्य पृथ्वी भर का अधिपति है।

अनेक युगों के इस पूरे समय भर इतने परिवर्तन होते हुए भी और इतने विभिन्न प्रकार के प्राणियों के रहते

हुए भी ऐसा कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ कि मेरुदंड वाले प्राणियों का अस्तित्व न रहे।

हमारे शरीर की रचना में मुख्य वस्तु

बल्कि इसके विरुद्ध वह अधिकाधिक पूर्ण होते गए। मछली का मेरुदंड उसके लिये बड़ा उपयोगी होता है। उसके बिना वह बढ़ नहीं सकती। किन्तु मछली का मेरुदंड बड़ा सादा होता है। यह केवल साधारण जीवन व्यतीत करने वाले प्राणि के ही योग्य होता है। मछली अपने जन्म से मृत्युपर्यन्त एक प्रकार की ही गति करती है।

मछली से ऊपर को जाते हुए हम मेंढक में देखते हैं कि रीढ़ की हड्डी अधिकाधिक दृढ़ और कम सादी होती जाती है। ऊपर के प्राणियों में स्तनपोषित प्राणियों तक जाते हुए हम रीढ़ की हड्डी को अधिकाधिक दृढ़ और चक्करदार होती हुई पाते हैं। उस समय रीढ़ की हड्डी इतनी चक्करदार होजाती है कि उसका अध्ययन करने में ही आयु समाप्त हो जावे।

मछली के समान हमारे शरीरों में भी शरीर की रचना में मुख्य स्थान इसी का है। यह हमारे शरीर में जहाज की पेंदे की नाव के समान है, जिसके ऊपर दूसरी प्रत्येक वस्तु बनाई जाती है।

शरीर के मेरुदंड की रचना

हम जानते हैं कि मेरुदंड वास्तव में एक हड्डी नहीं होता। यह

पंक्ति रूप मे स्थापित अनेक छोटी २ हड्डियो से बनता है। यह हड्डिया ठीक उसी प्रकार एक दूसरी पर बनाई अथवा रक्खी जाती हैं, जिस प्रकार हम मकान की ईटो को एक दूसरी के ऊपर रखते है। अतएव मेरुदंड(रीढ़ की हड्डी)को डाक्टरी वाले स्पाइनल कालम (Spinal Column) कहते है। जिन छोटी २ हड्डियो से यह बनी होती है उनको वरटेब्रा (Vertebrae or Vertebra)कहते हैं। इसी कारण रीढ की हड्डी वाले प्राणियो का वैज्ञानिक नाम वरटेब्रेटस (Vertebrates) है। उसी प्रकार बिना रीढ़ की हड्डी वाले प्राणियो को इनवरटेब्रेटस (Invertebrates)कहते है।

मछलियो से ऊपर के मेरुदंड वाले सभी प्राणियो के या तो जन्म भर दो अंग बने रहते है, अथवा उनके सर्प के समान आरंभ मे तो वह अंग होते हैं और बाद में झड़ जाते है; अथवा आरंभ मे उनके अंग नही होते और बढ़ने पर निकल आते है। किसी मेरुदंड वाले प्राणि के दो जोड़ से अधिक अंग नहीं होते।

अजगर (Serpent) के अंग गिर पड़ते है। व्हेल के आगे के अंगो के उसके पर (Flippers) बन जाते है। इन्हीं की सहायता से वह पानी मे दौड़ती है। व्हेल के पिछले पैर काम न आने के कारण बहुत छोटे होते २ उसकी चर्बी के अन्दर शरीर मे जा धसे हैं। किन्तु चर्बी के अन्दर वह अंगुलियों सहित पूरे आकार के होते हैं। पक्षियों के आगे के अंग (पंख) उसके पूर्वजों के समान होजाते है। पक्षि का बच्चा जब बहुत छोटा होता है तो उसके प्रत्येक हाथ मे पांच अंगुलिया होती

हैं। किन्तु बाद में पता चलता है कि इनके ऊपर ही उसके पंख बनते हैं। बड़े होने पर पंख केवल साढ़े तीन अंगुलियों पर ही बनते हैं। बाकी डेढ़ अनावश्यक होने के कारण झड़ जाती है।

अङ्गों से केवल हिलने चलने का ही काम लिया जाता है। किन्तु यदि हम मेढ़कों अथवा सब से प्राचीन स्तनपोषित प्राणियों के समय से अंगों का अध्ययन करें तो हमको पता लगता है कि अगले अंगों से केवल हिलने चलने ही का काम नहीं लिया जाता, वरन और काम भी लिये जाते हैं, क्यों कि हम जानते हैं कि चीता अपने पंजों से कितना भयंकर काम लेता है।

मनुष्य की भुजाओं की स्वतन्त्रता कितनी महत्वपूर्ण है

यदि चीते से भी अधिक ऊँचे स्तनपोषित प्राणि—उदाहरणार्थ बन्दर—को देखें तो हमको पता चलता है कि वह अपने अगले हाथों से और भी अधिक काम कर लेता है। चतुर से चतुर सिंह अथवा चीता भी यद्यपि अपने शिकार को पंजों से ही फाड़ता है, किन्तु उसको उठा कर हमारे समान अपने मुंह में नहीं रख सकता। किन्तु बन्दर ऐसा ही करता है। उसने ग्रहण करने की कला सीखली है।

मनुष्य के अन्दर रीढ़ की हड्डी वास्तव में सीधी होती है, क्योंकि वह सीधा खड़ा होता है। अगले हाथों से चलने का काम केवल बच्चे ही लेते हैं। घुटनों के बल चलने के पश्चात हमारे हाथ चलने के काम से सदा के लिये छूट जाते हैं। वरन्

उसके स्थान में वह मनुष्य के मस्तिष्क के बड़े भारी सेवक का काम देते हैं। मनुष्य हाथों के बिना ससार मे कुछ भी नहीं कर सकता। बिना हाथों के मनुष्य भूखा मर जाता और उसको कभी का जानवरो ने शिकार करके पृथ्वी पर से मिटा दिया होता।

यह बतलाना लगभग असंभव है कि मनुष्य के उसके परो के उद्देश्य की अपेक्षा, अथवा उस कार्य की अपेक्षा—जिसको प्राणि अनेक युगों से अपने अगों से करते आये है—हाथो की स्वतन्त्रता कितनी अधिक महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के हाथ उसके मस्तिष्क और उसकी नाडियो के सेवक होते हैं।

पांचवां अध्याय

सूक्ष्म जीव

अब हमको सबसे साधारण जीवों और उनके कार्यों के विषय में बयान करना है। उनका वर्णन उनके केवल कौतुक पूर्ण होने के कारण ही नहीं किया जाता, वरन इसलिये किया जाता है कि उनके जीवन का पृथ्वी की कहानी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यह शारीरिक जीवन को अनेक प्रकार से बदलने का उद्योग बराबर करते रहते हैं।

यह जीव अत्यन्त छोटे होते हैं। उनके अनेक नाम होते हैं। डाक्टरों में उनको जर्म—किसी रोग के जर्म (Germs) या कीटाणु अथवा जीवाणु कहते हैं। एक फ्रांसीसी विद्वान ने इनका नाम माइक्रोब (Microbes) रखा है। हम इनका स्थान

२ पर सूक्ष्मजीव अथवा कीटाणु कहेंगे, क्योंकि सूक्ष्मजीव शब्द का व्यवहार एक भारतीय दर्शन (जैन दर्शन) में ठीक इसी अर्थ में किया गया है।

उनके द्वारा प्रायः बीमार होने के कारण अधिकांश लोग समझते हैं कि सभी कीटाणु बुरे होते हैं। यह ठीक है कि अधिकांश कीटाणु हमारी हानि ही करते हैं। किन्तु उनमें से अनेक ऐसे उपयोगी होते हैं कि उनके बिना हम जीवित भी नहीं रह सकते।

कीटाणुओं के विषय में पहिली बात यह है कि वह बहुत छोटे होते हैं। वह इतने छोटे होते हैं कि अपने नेत्रों को बिना किसी यंत्र से सहायता पहुंचाए हम उनको नहीं देख सकते।

अतएव सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) के आविष्कार होने तक तो इन जीवाणुओं अथवा सूक्ष्मजीवों के अस्तित्व का पता ही नहीं चला। तो भी इन कीटाणुओं के भेदों को बतलाने में सूक्ष्म दर्शक यंत्र भी सहायता न दे सका; न वह यही बतला सका कि यह सारे संसार में भरे हुए हैं। वास्तव में वह साधारण वायु में भरे हुए हैं। वह हमारे छूने योग्य प्रत्येक वस्तु में हैं। वह घर में और घर के बाहिर भी हैं। वह उत्तरी ध्रुवप्रदेश के बरफ तक में हैं। वह जल में भी सब जगह मिलते हैं। इस प्रकार यह छोटे २ सूक्ष्मजीव सब कहीं भरे हुए अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और सदा कुछ न कुछ कार्य करते रहते हैं।

भारतीय दर्शनों मे सिवाय जैन दर्शन के इन सूक्ष्मजीवों का अस्तित्व और किसी दर्शन ने निश्चय पूर्वक नहीं बतलाया। जैन धर्म भी इन जीवों को समस्त लोक में व्याप्त मानता है।

इन जीवाणुओं (Microbes) को बोना भी बहुत सुगम है। जिस वस्तु मे ऐसे सूक्ष्मजीव हों उसमे एक सुई की नोक लगाने से ही बहुत से जीव निकल आते हैं। सुई की नोक से निकाल कर उनको दूध मे डाल देना चाहिये। जीवाणुओं को बोने या सुई की नोक से निकालने के लिये आलू सबसे अच्छी वस्तु है। इसी कारण जैनी लोग विशेष रूप से आलुओं को नहीं खाते। पृथ्वी के अंदर से निकलने वाले सभी कंदों मे यह जीवाणु होते है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार से भी जीवाणुओं को बढ़ते हुए देखा जा सकता है। इन सूक्ष्मजीवों को नंगी आंखों से प्रथक् २ नहीं देखा जा सकता। उनके बसने के उपनिवेश को अवश्य देखा जा सकता है। भिन्न २ जीवाणु भिन्न २ प्रकार से बढ़ते हैं। इस बात को जानने वाला उस नली को उठा सकता है, जिसमे उनको बढ़ाया जाता है। उस नली से वह बतला सकता है कि उसमें किस प्रकार के जीवाणु है।

यह जीवाणु इतने छोटे होते हैं कि इनका रूप देखने मे नहीं आ सकता। किन्तु यह जान पड़ता है कि वह सब एक जैसे ही बने होते है। प्रत्येक सूक्ष्म जीव के जीवित पुद्गलों (Living matter) का एक ही भाग होता है, उसी को सेल ('Cell) कहते हैं। यही उसका पूरा शरीर होता है—और वह

उसके लिये जीवित प्राणि का सारा कार्य करता है। कुछ सूक्ष्म जीव गोल होते है और कुछ छोटे डंडे के समान लम्बे २ होते हैं। कुछ बड़े मोटे होते हैं। कुछ अत्यन्त सूक्ष्म जीव इंफ्लुएंजा (Influenza) और राजयक्ष्मा (तपेदिक) कर देते है। किन्तु यह जीवाणु कैसे भी हानि कारक या निर्दोष क्यों न हों और यह चाहे जैसे और चाहे कहीं भी रहें इन सबके एक ही सेल (Cell) होता है।

एक पैसे के ऊपर दस करोड़ सूक्ष्म जीव आ सकते हैं

इस बात को समझ लेना बड़ा महत्वपूर्ण है कि चलने और बढ़ने वाला एक पूरा जीव बिना मुंह, फेफड़ों अथवा पट्ठों के इतने काम कर सकता है। बहुत से कार्यों को जिनको हम उक्त कार्य को करने के लिये निश्चय किये हुए अंगो से ही करते हैं— यह जीव केवल अपने उस एक जीवित सेल से ही कर लेते हैं, जो इनका सारा शरीर है और जिसमे कोई भिन्न २ भाग देखने मे नहीं आते।

जब वह एक स्थान मे बढ़ते रहते है तो वह गोल अथवा बहुत छोटे होते है। किन्तु जब वह दूसरे क्षेत्रों में बढ़ते हैं तो वह लम्बे अथवा पतले हो सकते है। यह प्रश्न बहुत कुछ उनके आहार के प्रकार पर निर्भर है। इससे इस बात का स्मरण हो आता है कि नीचे स्थानों मे पाले हुए मनुष्य प्राय. ठिगने होते हैं और जिनको अच्छा भोजन तथा ताजी हवा मिलती है वह प्राय: कई२ इंच अधिक ऊंचे होते हैं।

उनके किये हुए बड़े २ कार्यों को ध्यान में रखने से उनके इतने छोटे आकार पर आश्चर्य होता है। एक जीवाणु का औसत आकार एक इंच का बीस सहस्रवां भाग होता है। यदि आप कुछ डंडे जैसे लम्बे सूक्ष्म जीवों को लेकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक लगा सको तो एक गज में लगभग एक करोड़ सूक्ष्म जीव आवेंगे, जब कि एक रुपये को ढकने के लिये दस करोड़ जीव आवश्यक होंगे। एक इंच लम्बी, चौड़ी और गहरी जगह में ६ खरब और ४० अरब ऐसे सूक्ष्म जीव आवेंगे।

सूक्ष्म वस्तु को दस सहस्र गुनी बड़ी बना कर देखना

इन अंकों से उन सूक्ष्म जीवों के आकार का कुछ आभास हो जाता है। यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि बहुत से जीव इनसे भी सूक्ष्म होते होंगे। वह इतने सूक्ष्म होते होंगे कि उनको सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से भी नहीं देखा जा सकता। सूक्ष्मदर्शक यंत्र में प्रत्येक वस्तु दस सहस्र गुनी बड़ी दिखलाई देती है। यह सूक्ष्म जीव जब अपने पूरे आकार के हो जाते हैं—यद्यपि वह आकार भी नेत्रों से नहीं देखा जा सकता—तो वह आहार करना और बढ़ना बन्द नहीं करते, वरन् उस एक के ही चटख कर अथवा अन्य प्रकार से दो होजाते हैं। इस बात का कोई विशेष कारण होगा कि क्यों एक जीवित सेल—जो बिल्कुल मजबूत और छोटा होता है तथा पर्याप्त भोजन पाता है—कभी बिना सीमा के बढ़ता हुआ नहीं रह सकता, वरन एक निश्चित परिमाण के

पश्चात् या तो बिल्कुल ही बढ़ना बन्द कर देता है या फट कर दो सेल रूप बन जाता है।

यह सूक्ष्म जीव जिस शीघ्र गति से बढ़ते और प्रगुणित (Multiply) होते हैं वह कठिनता से विश्वास करने योग्य है। यदि हम एक सूक्ष्म जीव को उसका पर्याप्त आहार देना आरम्भ करें तो बारह घंटों में उस एक के ही एक करोड़ अस्सी लाख जीव हो जावेंगे। इसके छै घंटे के पश्चात् वह अस्सी अरब हो जावेंगे। यह सब उनके भोजन करने, बढ़ने, विभक्त होने और इसी प्रक्रिया को अत्यन्त शीघ्र २ करने का परिणाम होगा। यदि उनको ठीक प्रकार का पर्याप्त भोजन न मिले तो वह नहीं बढ़ सकते। ऐसे भोजन का सदा मिलते रहना प्रायः असम्भव है।

जब हम इन सूक्ष्म जीवों को किसी उद्देश्यवश बोते हैं और उनको उनकी पसन्द का पर्याप्त भोजन देते हैं तो वह शीघ्रता से बढ़ते हैं। जब वह किसी व्यक्ति पर आक्रमण कर के उसको बीमार करते हैं तोभी वह कभी २ इसी प्रकार बढ़ते हैं। विशेष कर जिन व्यक्तियों के शरीर इन सूक्ष्म जीवों के बढ़ने के लिए अत्यन्त उपयुक्त होते हैं उन मे तो यह बहुत अधिक बढ़ते हैं।

पशुओं के समान रहने वाले वनस्पति कायिक सूक्ष्मजीव

किन्तु यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि हमारे शरीर मे बहुत थोड़े प्रकार के सूक्ष्म जीव ही बढ़ सकते हैं। उन मे

से अधिकांश तो हमारे शरीरों में प्रवेश करते ही मर जाते हैं। यह बात भी स्मरण रखने की है कि यदि हम अपने स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखें और बुद्धिमानी से रहें तो अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीवों को तो हमारा शरीर ही मार डालेगा। किन्तु यदि हम मूर्खतावश अपने शरीर की रक्षा करने की शक्ति को सुरक्षित नहीं रख सकेंगे तो यह सूक्ष्मजीव हमको मार डालेंगे।

इन सूक्ष्मजीवों के भिन्न २ आकार कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं होते। महत्त्वपूर्ण इन के भोजन करने के दो भिन्न २ ढंग हैं। इस बात को बड़ी सावधानी से समझ लेना चाहिये कि यह सूक्ष्मजीव त्रस जीवों (Animals) की अपेक्षा वनस्पति काय से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु अत्यन्त छोटे पौदे होने के कारण उन मे वह रचना-सामग्री नहीं होती, जिस से पौदे हवा मे से आहार लेते और हवा में श्वास लेते हैं। अतएव आहार लेने के सम्बन्ध में सूक्ष्मजीवों का स्थान त्रस जीवों के जैसा ही है। दूसरे प्राणियों के समान उनको भी विवश हो कर वही भोजन करना पड़ता है जो दूसरे प्राणियों के शरीरों से मिलता है,

इन सूक्ष्मजीवों की यह विशेषता होती है कि यह दूसरे प्राणियों के जीवित या मृतक शरीरों के आश्रय से भोजन करते हैं, फिर चाहे इन का भोजन बनने वाले यह प्राणि त्रस जीव(Anima-ls) हो अथवा वनस्पति हो। सूक्ष्मजीवों में बड़ा भारी भेद यह है

कि इन में से कुछ तो मृतक प्राणियों के मृत कलेवर पर ही बसर करते है, जब कि दूसरे जीवित त्रस जीवों अथवा वनस्पतियों पर आक्रमण करके उन पर बसर करते हैं। यहां पहिले मृत शरीरों पर बसर करने वाले सूक्ष्म जीवों का वर्णन किया जावेगा। संसार मे यह सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं और वास्तव मे हम इनके बिना जीवित नहीं रह सकते।

पृथ्वी, वायु और समुद्र में कितने असंख्यात कोड़ाकोड़ी मनुष्य, पशु और वनस्पति कायिक जीव हैं। असंख्य युगों से ऐसा ही होता चला आता है। साथ ही अनेक युगों से यह प्राणि असंख्य परिमाण मे मरते भी रहते हैं। यदि इन मरने वाले प्राणियों के शरीरों को उठाकर साफ करने का संसार में कोई प्रबन्ध न होता तो पृथ्वी पर इनका ढेर लग गया होता।

तथ्य यह है कि यदि मरने वाले प्राणियों के शव अथवा कलेवरों को उठा कर साफ करने का पृथ्वी पर प्रबन्ध न होता तो हमारा जीवन किसी प्रकार नहीं चल सकता था। यह सूक्ष्म जीव इन मृत शरीरों को उठाकर केवल हमारी आंखों के आगे से ओझल ही नहीं कर देते, वरन् वह इन मृत शरीरों के हानिप्रद अंश को अपने अन्दर लेकर फिर उसको ऐसी सामग्री बना देते हैं, जो दूसरे प्राणियों के लिये भोजन का काम देती है।

वनस्पति जीवन की कहानी से यह पता लगेगा कि किस प्रकार पतझड़ की ऋतु में यह सूक्ष्मजीव मृत पत्तियों को लेकर

उसको वह रचना-सामग्री बना देते हैं, जिससे वसन्त ऋतु मे नई पत्तिया बनती हैं। यह सूक्ष्मजीव जो कार्य मृत पत्तियो के विषय मे करते है वही कार्य वह अन्य मृत प्राणियोंकेशरीरोकेविषय मे भी करते है। वह संसार को नवयुवक, ताजा और हरा बनाये रखते हैं। यह कई बार कहा जा चुका है कि वह सफाई करने वाले हैं। यह उन मेहतरों के समान है जो सड़कों का झाड़ कर उनके कूड़े को लेजाते है। किन्तु यह भी उनका आरम्भिक कार्य ही है। वह इससे भी अधिक आश्चर्यजनक कार्य यह करते है कि पृथ्वी की इन बुराइयो को दूर करते हुए वह स्वय भी जीवन व्यतीत करते है।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ससार मे व्यर्थ कुछ नहीं है। यह सूक्ष्मजीव अत्यंत तुच्छ होते हैं किन्तु इसी कारण इनसे घृणा नहीं करनी चाहिये। यदि अपने कार्य को यह ऐसे सुन्दर ढग से न करते होते तो पृथ्वी पर कोई प्राणि या वनस्पति जीवित नहीं रह सकता था।

यदि हम पृथ्वी की परीक्षा करे तो हमको यह प्रत्येक स्थान मे काम करते हुए मिलेंगे। पृथ्वी के एक दाने मे एक सहस्र सूक्ष्मजीव से लेकर तीन लाख सूक्ष्मजीव तक हो सकते है। पृथ्वी पर इन वनस्पतिकायिक जीवो की गिनती सबसे अधिक है। यदि पृथ्वी के एक दाने मे सहस्रों सूक्ष्मजीवों का ध्यान करके उसकी सूक्ष्मता का अनुमान लगाया जावे तो हम समझ सकते हैं कि पृथ्वी भरके सूक्ष्मजीवों की सख्या को बतलाना या समझना एक दम असम्भव है।

सूक्ष्मजीव—हमारे अदृश्य मित्र और शत्रु

भिन्न २ प्रकार के सूक्ष्म जीवों की भिन्न २ प्रकार की शक्तियां होती हैं। कभी वह बड़े लाभप्रद ढंग से कार्य करते हैं और कभी २ वह हानिप्रद भी सिद्ध होते हैं। कुछ सूक्ष्मजीवों में वायु की सहायता से भोजन सामग्री बनाने की विशेष शक्ति होती है। वायु के अन्दर नत्रजन (Nitrogen) नामका एक बड़ा भाग उपयोगी पदार्थ है। साधारण पौदे इसका सेवन नहीं कर सकते। हम यद्यपि ओषजन (Oxygen) के साथ २ श्वास लेने में इसको अपने रक्त में ले जाते हैं—किन्तु इससे काम नहीं ले सकते। तथापि कुछ सूक्ष्मजीव इस नत्रजन का सेवन करके इसको दूसरे मिश्रणों में मिला सकते हैं, जिससे उत्तम भोजन सामग्रियां बनती हैं।

यह विशेष प्रकार के सूक्ष्मजीव (Microbes) कुछ विशेष प्रकार के ऐसे हरे पौदों के बहुत शौकीन होते हैं, जो स्वयं लाभप्रद नहीं होते। किन्तु किसान इनकी उपयोगिता को खूब समझता है। वह एक वर्ष इनको अपने खेत में बोकर गेहूं की अपनी आगामी फसिल के लिये उस खेत के उपजाऊपन को खूब बढ़ा लेता है। यदि वह प्रतिवर्ष गेहूं ही बोता रहे तो खेत की मुलायम भूमि में से उपजाऊपने की शक्ति नष्ट हो जावे। अतः फसिलों के परिवर्तन का अभ्यास किसानों को बहुत समय तक करना पड़ता है। किसान और देश दोनों के लिये यह बात बड़ी कठिन है कि किसान एक ही भूमि में प्रति-

वर्ष गेहूं उत्पन्न नहीं कर सकता। किन्तु यह आशा की जाती है कि इन विशेष प्रकार के सूक्ष्मजीवों से एक विशेष प्रकार से काम लेते हुए हम उसी भूमि में प्रतिवर्ष गेहूं बो सकेंगे।

किसान की अपेक्षा डिएरी (मक्खन के कारखाने) वालों को भी इन सूक्ष्मजीवों की कम आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह डिएरी के सब कार्य में ही अत्यंत उपयोगी होते हैं। उन्हीं में उसके सबसे अच्छे मित्र और उसके सबसे भयानक शत्रु भी सम्मिलित हैं। यदि हम इस बात को समझ लें कि यह सूक्ष्मजीव सब कहीं होते हैं तो हम इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि दूध के थनों में से निकलते ही यह उसपर आक्रमण करते हैं। सभी प्रकार के सूक्ष्मजीव, चाहे वह उपयोगी हों अथवा भयंकर हवा, धूल, और जल में से दूध पर आक्रमण करते हैं।

सूक्ष्मजीवों को बढ़ाने के लिये संसार में दूध सबसे उत्तम वस्तु है। अतएव दूध के अंदर बढ़ने वाले अच्छे या बुरे सभी सूक्ष्मजीव बड़ी शीघ्रता से बढ़ते हैं। डिएरी वाले मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सब प्रकार के हानिप्रद सूक्ष्मजीवों से दूध की रक्षा करता रहे। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि दूध यदि हमारे लिये सब से अच्छा भोजन है तो यह कुछ हमारे सब से भयंकर शत्रुओं के लिये भी सब से उत्तम भोजन है। क्षय रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीव, जो प्रति ग्रीष्म ऋतु में दस सहस्र छोटे बच्चों को मार डालते हैं, दूध को ही

विशेष पसंद करते हैं।

किन्तु यहां हम सूक्ष्मजीवों के स्वाभाविक और योग्य कार्य के विषय में लिख रहे हैं। बहुत से तो उनमें से दूध मे स्वभाविक रूप से होते हैं। इनको दूध के सूक्ष्म जीव (Milk Microbes) कहते हैं।

वह दूध में अवश्य ही प्रवेश कर जाते हैं। दूध के लिये वह उपयोगी भी होते हैं। गौओं के बांधने के स्थानों में यह सूक्ष्मजीव बहुत अधिक हुआ करते हैं। यह दुहते ही दूध मे मिल जाते हैं।

इन सूक्ष्मजीवों मे यह विशेषता होती है कि यह दूध मे प्रवेश करने पर उन दूसरे सूक्ष्मजीवों को दूध में प्रवेश नहीं करने देते, जो हमारे लिये हानिप्रद होते हैं। कुछ समय के पश्चात वह दूध को खट्टा कर देते हैं। किन्तु जैसा की सर्व साधारण का विश्वास है खट्टा दूध मनुष्य को हानि नहीं पहुंचाता। खट्टे दूध के साथ हमारे शरीर मे प्रवेश करने वाले सूक्ष्मजीव हमारे शरीर मे हानि पहुंचाने वाले अन्य जीवों को प्रवेश नहीं करने देते। अतएव वह हमारे बड़े भारी मित्र हैं। आज कल जब मनुष्यों को विशेष प्रकार के रोग हुआ करते हैं तो उनको स्वास्थ्य लाभ करने के लिये खट्टा दूध दिया जाता है। खट्टे दूध के सूक्ष्मजीव हमको भोजन के पचाने में सहायता देते हैं। साथ ही वह हमारे शरीर में अन्य हानिप्रद सूक्ष्मजीवों (Germs) को भी नहीं बढ़ने देते।

किन्तु अभी हमको इससे भी अधिक लिखना है। दूध से क्रीम (मलाई) निकलती है और क्रीम में से मक्खन निकलता है। किन्तु बिना योग्य दूधिया सूक्ष्मजीवों के मक्खन नहीं बनाया जा सकता। दूधिया सूक्ष्मजीव ही क्रीम को इस प्रकार पकाते हैं कि उस से मक्खन बनाया जाता है।

मक्खन और मट्ठा बनाने में सहायता देने वाले सूक्ष्मजीव

भिन्न २ प्रकार के मक्खन की सुगन्धियां क्रीम को पकाने वाले विशेष प्रकार के सूक्ष्मजीवों पर निर्भर हैं। आज कल जनता को मक्खन के जैसी गंध पसंद है, उसी गंध को उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों को चाहे जिस मात्रा में उत्पन्न किया जा सकता है। मक्खन बनाना वास्तव में यह सूक्ष्मजीव आरंभ करते हैं। अतः उनको 'आरंभक' (Starter) कहा जाता है। पृथ्वी के कुछ विभागों में वैज्ञानिक लोगों ने सब से अच्छे 'आरंभक' किसानों को देने का प्रबन्ध किया हुआ है।

जिस प्रकार हमको बिना सूक्ष्मजीवों के मक्खन नहीं मिल सकता, उसी प्रकार पनीर भी नहीं मिल सकता। यद्यपि सभी पनीर दूध से ही बनता है तो भी पनीर के दर्जनों भेद होते हैं। उन में भेद उन विशेष प्रकार के सूक्ष्मजीवों के कारण होता है, जिनका उसके बनाने में उपयोग किया जाता है।

हमारे जूते भी सूक्ष्मजीवों की सहायता से ही बनते हैं। जूते चमड़े से बनते हैं और सभी चमड़ा पशुओं की खाल

उतार कर एक विशेष विधि से कमा कर तयार किया जाता है। किन्तु सूक्ष्मजीवों की सहायता के बिना चमड़ा नहीं कमाया जा सकता। केवल इतना ही नहीं, आज प्रत्येक बड़े नगर में चमड़े से निकले हुए फालतू कचरे को सड़वाने की समस्या को सुलझाना पड़ता है। इस समस्या को सुलझाने का सब से अच्छा ढङ्ग इन सूक्ष्मजीवों से सहायता लेना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सब से छोटे जीव भी संसार में बड़ा भारी महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। मृतक प्राणियों, पौधों और मनुष्यों तक के शवों को सड़वा देने का उनका ढङ्ग बड़ा भारी आश्चर्य जनक है। यह उनको हटा कर पृथ्वी के जीवित प्राणियों और आगामी सन्तान के लिये मार्ग साफ करते रहते हैं। सब से अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह उसी रचनासामग्री से पृथ्वी के पालन करने योग्य उत्तम खाद्य सामग्री भी बनाते हैं।

सूक्ष्मजीवों ने आक्रमण करना कैसे सीखा

किन्तु सूक्ष्मजीवों के विषय में अभी बहुत कुछ कहना अवशेष है। बहुत से ऐसे सूक्ष्मजीव भी हैं, जो मृतशरीरों को न खा कर जीवित प्राणियों के ही शरीरों को खाते हैं। सम्भवत: आरंभ में सभी सूक्ष्मजीव मृत शरीरों को ही खाते होंगे। किन्तु उन में से कुछ बहुत पुराने अथवा मृतप्राय पौधों अथवा प्राणियों के शरीरों पर आक्रमण करना सीख गये होंगे। और इस प्रकार जीवित शरीरों पर आक्रमण करने वाले सूक्ष्मजीवों

की एक ऐसी पृथक् जाती बन गई, जो मनुष्य जाति की सब से बड़ा शत्रु है।

पौधे, पशुओं और मनुष्यों—सभी पर इन सूक्ष्मजीवों का आक्रमण हो सकता है। किन्तु प्राणि जब अपनी स्वाभाविक दशा में खुली हवा और खुले प्रकाश में रहते हैं तो उन पर इन प्राणियों का प्रभाव बहुत कम हो पाता है।

जंगली जानवर और जंगली पौदों को तो बहुत कम रोग होते हैं। किन्तु जब मनुष्य इन पौदों को लेकर अपने मतलब के लिये उनको प्रकृति विरुद्ध या बाग घरों आदि में लगाता है तो वह प्राय सूक्ष्मजीवों द्वारा आक्रमण किये जाते हैं। पालतू पशुओं के विषय में भी यही बात है।

सूक्ष्मजीव सर्पों और चीतों से भी अधिक विनाशकारी है

इस बात से हम को एक शिक्षा मिलती है। जंगली पशु आकाश की ताजी हवा में रहने के लिये थे। स्त्री पुरुष भी इसी लिये थे। किन्तु यदि हम अपने को उसी प्रकार बन्द रखें, जिस प्रकार हम कभी २ शेरों और चीतों को बन्द रखते हैं तो निश्चय से सूक्ष्मजीव हम पर आक्रमण करेंगे। पृथ्वी के मीठेपन को बनाए रखने वाले, पौदों को उगाने में सहायता देने वाले तथा हमारे जीवन के लिये उपयोगी अन्य पौदे खुली हवा में ही रह सकते हैं। दिन का प्रकाश उनके कार्य में सहायता देता है। किन्तु भयंकर सूक्ष्मजीव, विशेषकर क्षय रोग के कीटाणु-- जो प्रति दिन इतने मनुष्यों का संहार करते हैं कि जिन को

संसार भर के साप और चीते भी पूरे वर्ष भर मे नहीं मार पाते—खुली वायु और सूर्य के प्रकाश में स्वयं ही मर जाते हैं।

बड़े २ नगरों और देहातों तक में ऐसे मकान होते हैं, जिनमें न खुलने योग्य खिड़कियां लगी होती हैं। सहस्रों कमरे तो ऐसे होते है, जिन मे कोई खिड़किया नहीं होतीं, बल्कि उनमे दिन मे भी कृत्रिम प्रकाश से काम लेना पड़ता है। ऐसे कमरो मे किसी प्राणि को नही रहना चाहिये। ऐसे स्थान में अवश्य ही सूक्ष्मजीव (कीटाणु) मनुष्य मे घर कर जाते हैं और क्रमश. उसको मार डालते है। इस प्रकार के कमरे बनवाना तो एक प्रकार का मनुष्य जाति के प्रति अपराध है।

बन्दरो को क्षय रोग से बचाने वाली ताजी वायु

वायु और धूप के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हमको बहुत पिच पिच मे नहीं रहना चाहिये। यदि हम इन नियमों का पालन करें तो सूक्ष्मजीव हमको कभी हानि नहीं पहुंचा सकते। यदि हम ताजी हवा मे रख कर बन्दरों तथा अन्य प्राणियों को क्षय रोग से बचा सकते है (जैसा कि हम करते हैं) तो उसी प्रकार हम दूसरों को भी बचा सकते हैं।

खमीर का पौदा

इन सूक्ष्म जीवों में से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण भेद को प्राय: सूक्ष्मजीव नहीं कहते। किन्तु कह इसको सूक्ष्मजीव भी सकते हैं, क्यों कि यह सूक्ष्मजीवों के ही निकट सम्बन्धी होते और उसी प्रकार रहते भी हैं।

इस पौदे को खमीर या झाग (Yeast Plant) कहते है। यही पौदा शक्कर की स्पिरिट बनाता है। इसी के गैस को कारबन डायोक्साइड (Carbon Dioxide) कहते हैं। खमीरी रोटी खाने वाले इसको प्रति दिन खाते हैं। शराब गैस बन जाती है और कारबन डायोक्साइड मैदा मे मिल कर रोटी को फुलाता है।

किन्तु खमीर से हम स्पिरिट बनाने का काम भी लेते है। स्पिरिट बड़ा उपयोगी पदार्थ है। इसका उपयोग सैकड़ो कलाओं और व्यापारों मे किया जाता है। यह वस्तुओं को साफ करने और उनकी रक्षा करने के लिये बड़ी उपयोगी होती है। यह बड़े सुन्दर ढग से जलती है, अतएव यह उत्तम ईंधन का काम देती है। सम्भवत: कृत्रिम ईंधनो मे यह सब से सस्ते ढङ्ग से बना हुआ ईंधन है। यह पेट्रोल से भी बहुत सस्ती होती है। आशा है कि एक दिन इससे एंजिनों को चलाने का काम लिया जावेगा। यदि हम स्पिरिट के विभिन्न उपयोगो को जानते होते तो खमीर का छोटा सा पौदा (Yeast Plant) मनुष्य जाति का बड़ा भारी मित्र बन जाता।

शराब प्राणिमात्र के लिये विष है

किन्तु बहुत से व्यक्ति इस स्पिरिट (शराब) को पीते हैं। यह बिना किसी भेद के सभी मनुष्यों, पशुओं और पौदो के लिये विष है। यह उस खमीर के पौदे के वास्ते भी विष है, जो इसको बनाता है। जब शक्कर मे—जिसको खमीर का पौदा बनाता और बदलता रहता है—स्पिरिट का परिमाण एक

निश्चित अंश तक पहुंच जाता है, तो खमीर का पौदा मर जाता है ।

स्पिरिट हमारे शरीर के लिये उपयोगी नहीं होती। यह समय पर शरीर के प्रत्येक भाग में—विशेष कर शरीर के सब से महत्त्वपूर्ण भाग मस्तिष्क में—रोग उत्पन्न कर देता है। यह क्षयरोग के कीटाणुओं (सूक्ष्म जीवों) की बड़ी भारी मित्र और साथी है। यह हमारे शरीरों को उसका मुकाबला न करने योग्य बना कर उनको क्षयरोग के लिये तयार करती है।

थोड़ी मात्रा में ली जाने पर भी शराब हमारी इन भयंकर कीटाणुओं से युद्ध करने की शक्ति को कम कर देती है। शरीर के सफाई करने वाले सैनिक रक्त के श्वेत सेल (White blood-Cells) होते हैं। शराब उनकी फुर्ती की तेजी को नष्ट कर देती है। यह पाचनशक्ति को कम करती है, जिससे पेट की झिल्ली में सूजन आजाती है। यह कोमल नसों को भी हानि पहुचाती है।

सर्वसाधारण के घरों में क्षयरोग के कीटाणु प्रायः होते हैं, क्योंकि अनेक क्षयरोगी उन घरों में अपना समय व्यतीत करते हैं। वहां पर यह कीटाणु (सूक्ष्मजीव) उन नये व्यक्तियों पर आक्रमण करते हैं, जो शराब के द्वारा इसके लिये तयार कर दिये जाते हैं। जो क्षयरोग वाले मकानों में रहते, खेलते या उठते बैठते हैं, उन नवयुवक स्त्री पुरुषों पर तो यह नियम विशेष रूप से लागू होता है।

इंगलैण्ड में प्रतिवर्ष मरने वाले ५०,००० क्षयरोगी

क्षयरोग के कीटाणुओं का पता पहिली पहल कोच (Koch) नाम के एक बड़े भारी जर्मन विद्वान को उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लगा था। उनको पहिली पहल पैस्टोर (Pasteur) नाम के एक फ्रांसीसी विद्वान् ने समझा था। कोच ने उसी के बतलाये हुए मार्ग पर अनुसन्धान किया। इंगलैण्ड में प्रतिवर्ष क्षयरोग से पचास से साठ सहस्र व्यक्ति तक मरते हैं। पृथ्वी भर में जहां कहीं भी मनुष्य अधिक पिचपिच में रहते हैं, यह कीटाणु उनको नष्ट करते हैं। किन्तु एक दिन इसके बड़े भारी मित्र शराब को समाप्त करके संभवतः इन कीटाणुओं को भी समाप्त किया जा सकेगा।

संभवतः क्षयरोग के कीटाणु उन सूक्ष्म जीवों में से हैं, जो बिना दूसरे प्राणियों के नहीं रह सकते। अतएव यदि हम उनके आक्रमण को रोक सकें तो निःसंदेह वह पूर्ण रूप से मर जावेंगे। भविष्य में हम उनको उसी प्रकार नष्ट कर सकेंगे, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने भेड़ियों को नष्ट कर दिया।

किन्तु यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये कि यद्यपि कुछ सूक्ष्म जीव हमको हानि पहुंचाते हैं और कुछ हमको जान से भी मार डालते हैं, किन्तु बिना सूक्ष्म जीवों के हम किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकते।

—o—

छटा अध्याय

शरीर में जीवन का प्रधान स्थान—
सेल का केन्द्र

सेल—यह बात सूक्ष्मदर्शक यंत्र से सिद्ध की जा सकती है कि सूक्ष्मजीव, वृक्ष, पौदे, सिवार, पशु, बन्दर, मछली अथवा मनुष्य सभी जीवित सेलों (Living cells) से बने होते हैं।

यद्यपि इस विषय में सब प्राणि एक से हैं, किन्तु विचार करने पर इनमें भी बहुत से विभाग किये जा सकते हैं। इन में एक विभाग में एक सेल से बने हुए प्राणियों को और दूसरे में अनेक सेलों से बने हुए प्राणियों को रखना चाहिये। यह निश्चय है कि पृथ्वी पर आरंभ में एक सेल वाले प्राणि ही प्रगट हुए थे। उनके विषय में वर्णन भी काफी किया जा चुका है। उनको तो सूक्ष्म दर्शक यंत्र से ही देखा जा सकता है।

अधिक सेल वाले सभी प्राणि नेत्रों द्वारा देखे जा सकते हैं। यद्यपि सूक्ष्मजीव एक सेल तथा पीपल का वृक्ष करोड़ों सेलों के बने होते हैं;किन्तु सेलों में सब के ही समानता होती है। सूक्ष्म जीव पीपल के वृक्ष की पत्ती तथा हमारे हाथ—चाहे जहां के भी हों, सेल सबके समान ही होते हैं। यदि हम को सेलों के रहस्य का पता लग जावे तो हम जीवन के रहस्य को भी जान सकते हैं।

यह पहले ही देखा जा चुका है कि सेलों की अपेक्षा सब सूक्ष्मजीव समान होते हैं। प्रत्येक प्राणि की देह सेलों की ही बनी होती है। वनस्पति और प्राणियों के सेलों में भी परस्पर कुछ विभिन्नता नहीं होती।

सब से साधारण प्रकार का प्राणि अमीबा (Amoeba) नाम का कीड़ा होता है। यह प्राय: पोखरों में रहता है। इसमें केवल एक ही सेल होता है। उस सेल की रक्षा करने के लिये उसके शरीर पर मांस की कोई दीवाल भी नहीं होती। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र (Microscope) से इसकी परीक्षा करने पर इसके शरीर पर दीवार न होने का कारण तुरन्त समझ में आ जाता है। अमीबा जीवित पुद्गल का एक छोटा सा कण होता है, किन्तु यह स्वयं ही चल फिर सकता है। इस बात को एक बच्चा भी जानता है कि गति प्राय: जीवन का चिन्ह होता है; और यह अमीबा अन्य प्राणियों के समान इधर उधर चल सकता है। यह रेंग कर चलता है। यह अपने शरीर के एक भाग को बढ़ा कर आगे करता है, फिर उसके पीछे शेष शरीर को खींच लेता है।

यदि अमीबा के शरीर के चारों ओर कोई सख्त दीवार होती तो वह रेंग नहीं सकता था, क्योंकि बिना आकार बदले हुए रेंगा नहीं जा सकता। यद्यपि अमीबा को गोल कहा जाता है, किन्तु जब वह गतिशील होता है और अपना भोजन खोजता है तो वह गोल न होकर बेढंगा सा बन जाता है। भूखा रहने अथवा मर जाने पर वह बिल्कुल गोल होता है। पेट भर जाने पर भोजन के पश्चात आराम करने समय भी वह गोल ही जान पड़ता है।

अमीबा को चलने से रोकने और गोल बना देने की एक बड़ी सुगम विधि है। क्लोरोफार्म (Chloroform) का नाम आज कल सब कोई जानते हैं। यह जल के समान तरल पदार्थ होता है। इसकी गंध बड़ी विचित्र होती है। क्लोरोफार्म को सुंघाने से मनुष्य एक विचित्र प्रकार से ऐसा सो जाता है कि उसको किसी कष्ट का पता नहीं रहता। इसका कारण यह है कि क्लोरोफार्म मस्तिष्क के सेलों को शून्य कर देता है। प्रायः सभी सेल एक ही प्रकार के होते हैं और सभी प्रकार के वास्तविक विष—जैसे शराब, क्लोरोफार्म, एसिड आदि—सब सेलों पर एक सा प्रभाव दिखलाते हैं।

क्लोरोफार्म देने पर प्राणियों की क्या दशा हो जाती है

यदि आप सूक्ष्मदर्शकयन्त्र में अमीबा को चलते हुए देखा और जिस पानी में वह चल रहा है उसमें तनिक सी क्लोरोफार्म डाल दें तो उसका विष उस पर प्रभाव कर लेगा और वह

अपने आपको गोल गेंद के समान लपेट लेगा।

यदि क्लोरोफार्म अधिक मात्रा में दिया जावेगा तो अमीबा मर जावेगा। मनुष्य भी अधिक क्लोरोफार्म देने से मर जाता है।

अमीबा को ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि वह तो केवल एक कण के जैसा होता है, उसके हमारे शरीरों के समान कोई प्रथक् भाग नहीं होते।

सेल की मींगी ही जीव के रहने का स्थान है

किन्तु अनुभव से पता चला है कि अमीबा नाम के छोटे से कण के मध्य भाग में एक उससे भी छोटा कण होता है। यह सभी अमीबाओं में होता है। यह थोड़ा गाढा होता है, क्यों कि इसमें उसके बाकी शरीर से कम जल होता है। इसका नाम भी विशेष और महत्वपूर्ण होता है। यह महत्वपूर्ण इस कारण होता है कि ऐसे ही सेल सब प्राणियों में होते हैं।

इसको मींगी (Nucleus) कहते हैं। सेल का वास्तविक भाग यह मींगी ही होती है और यही जीव के रहने का मुख्य स्थान है।

अमीबा तथा अन्य अनेक सेलों के बीच में मींगी रहती है और उसके चारों ओर कुछ इस प्रकार का भाग होता है, जो मस्तिष्क की तुलना में हमारे शरीर जैसा है। सेल में गति उसके बाहिर के भाग की गति से होती है।

दूसरे प्रकार से यह भी कह सकते हैं कि वह सेल को पैरों का काम देता है। इसी के द्वारा अमीबा ओषजन भी लेता है। वह यही उसके लिये नाक और फेफड़ों का काम भी देता है।

यह बात स्मरण रखने की है कि हमारे शरीर का प्रत्येक सेल भी इसी प्रकार श्वास ले रहा है।

सेल का मस्तिष्क और स्वामी उसकी मींगी होती है

दूसरे प्राणियों के समान अमीबा को भी भोजन करना पड़ता है। किसी भी जीव की जीवनशक्ति और गति निराधार नहीं हो सकती। अमीबा के हाथ, मुंह, चाकू या कांटा कुछ भी नहीं होता, किन्तु तो भी किसी न किसी प्रकार उसको हमारे समान अपने शरीर के अन्दर भोजन पहुंचाना ही पड़ता है। जब उसको किसी वस्तु का छोटा सा कण मिल जाता है, तो वह उसको खा सकता है। वह अपने अन्दर से दो पतले २ भाग निकालता है। यह दोनों भाग भोजन के दोनों ओर हो जाते हैं। यह धीरे २ उस कण के चारों ओर लिपट जाते हैं। यहां तक कि अन्त में वह अमीबा के शरीर-सेल के अन्दर बन्द होजाता है।

इसके पश्चात् अमीबा को हमारे समान ही अपने भोजन को हजम करना पड़ता है। तब बीच की मींगी के अतिरिक्त उसके शरीर का सम्पूर्ण भाग पेट का काम करने लगता है। अमीबा जो कुछ भी खाता है उसको मींगी के बाहिर ही हजम करना पड़ता है। जिस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क में दूध नहीं जाता उसी प्रकार अमीबा के सेल की मींगी में भोजन का कोई भाग नहीं जाता।

पचाने तथा तयार करने का सब कार्य मींगी के बाहिर किया जाता है। शरीर का स्वामी अन्दर की मींगी होती है।

सभी कार्य उसके वास्ते उसके बाहिर किया जाता है ।

जब हम अपने शरीर के रक्त के श्वेत सेलों को देखते हैं तो हमको पता लगता है कि वह हमारे फेफड़ों में श्वास लिये हुए वायु को लेने योग्य हैं और ले जाते हैं। वह हमको हानि पहुचाने वाले सूक्ष्मजीवों तथा अन्य जीवित सेलों को भी मार डालने योग्य हैं । रक्त के श्वेत सेल की मींगी के अन्दर कोयले की धूल के कण अथवा सूक्ष्मजीव तब तक देखने को नहीं मिल सकते जब तक कि वह सेल सूक्ष्मजीवों (Microbes) द्वारा जान से मारे जाकर टुकड़े २ न हो जावे ।

जीवन का आधार—सेल की मींगी

यदि सेल की मींगी के अवशिष्ट अंश की रचना के ढंग पर विचार किया जावे तो उसके विषय में कुछ निश्चय नहीं होता । यद्यपि उसके अन्दर से प्रकाश निकल जाता है, किन्तु वह पारदर्शी (Transparent) नहीं होती। वह अर्द्ध पारदर्शी जमे हुए रस के जैसी दिखलाई देती है ।

मींगी अथवा न्यूक्लयुअस केवल सेल का आवश्यक भाग ही नहीं है, वरन सेल के शरीर का जीव भी उसी के ऊपर निर्भर रहता है। यदि किसी मनुष्य की एक अंगुली काट डाली जावे तो वह मर जावेगी। अंगुली जीवित अवश्य है, किन्तु वह अकेली रहकर जीवित नहीं रह सकती। इसी प्रकार यदि हम सेल में से उसके किसी भी भाग को काट लेवे तो वह मर जावेगा। अथवा इसको दूसरे शब्दों में यह कहना

चाहिये कि यदि सेल को इस प्रकार काटा जावे कि उसकी मींगी या न्यूकलयुअस एक ओर तथा शेष भाग पृथक् बच जावे तो मींगी जीवित बनी रहेगी और वह कटे हुए भाग की क्षति को कुछ समय में पूरा कर लेगी। किन्तु बिना मींगी वाला भाग मर जावेगा। ऐसा सदा ही होता है, इस नियम में अपवाद कहीं भी देखने मे नहीं आया। यह बात अमीबा तथा अन्य प्राणियों के विषय मे भी ठीक है।

अमीबा और हमारे जीवन के नियमों में आश्चर्यजनक समानता

हमारे शरीर की नसो के सेल आरम्भ मे बहुत कुछ अमीबा के जैसे ही होते है। किन्तु जब वह पूर्णतया बन जाते है तो वह अनेक प्रकार के हो जाते है। किन्तु सेल का शरीर लम्बे धागे के आकार मे एक या उससे अधिक दिशाओं की ओर को लम्बा हो जाता है। वह धागा वास्तव में नस की सेल के शरीर का ही भाग है और उसी से वह निकलता है। अतएव यदि नस को काट डाला जावे तो उसका प्रयोग भी उसी प्रकार का होगा जैसा अमीबा को दो भाग मे काटने का किया गया था, अर्थात एक मे मींगी होगी और दूसरे मे न होगी। इन दोनों ही विभिन्न मामलों का परिणाम भी वही होगा।

नस के जिस भाग का सम्बन्ध मींगी से रहेगा, वह जीवित और अपरिवर्तित रहेगी, किन्तु नस का बिना मींगी वाला दूसरा भाग मर जावेगा। यह बात बड़ी आश्चर्यजनक है कि पोखरे

के अमीबा के सेल और मनुष्य के मस्तिष्क के सेल सब एक ही नियम के द्वारा शासित होते हैं ।

किसी भी जीव का नियम सब जीवों का नियम है। यदि किसी दुर्घटनावश किसी अंग की नस कट जाती है और डाक्टर उस में टांके लगा कर कटी हुई नस के दोनों किनारों को जोड़ देता है तो सेल की मींगी की शक्ति दो तीन फुट दूर होने पर भी—जैसे कि पैर की नसों मे—कटे हुए पुराने भाग में जा पहुचती है और उसको फिर जमा देती है । अमीबा के भाग भी कट जाने पर इसी प्रकार फिर स्वयं ही बढ़ जाते हैं ।

जीवों के निवासस्थान रूप आश्चर्यजनक पुद्गल— प्रोटोप्लाज्म अथवा नोकर्म पुद्गल

इस प्रकार सेल के जीवन का केन्द्र मींगी या न्यूक्लयुअस है । गूदे से पृथक् होकर सेल का शरीर जीवित नहीं रह सकता। सेल की क्षतिपूर्ति करने की शक्ति पूर्णतया मींगी पर निर्भर है।

यह भी बतलाया जा चुका है कि सेल का आचरण उसकी मींगी पर निर्भर है । हम जानते हैं कि लड़के और लड़कियों के आचरण परस्पर नहीं मिलते । यद्यपि उनके शरीर बहुत कुछ समान होते हैं, किन्तु उनके मस्तिष्क आपस में नहीं मिलते। सम्भवत: सभी सेलों के शरीर एक ही रचनासामग्री से बने होते हैं। उनका क्रम-पूर्वक संगठन भी बहुत कुछ एक ही ढंग पर होता है, किन्तु सेलों की मींगी या न्यूक्लयुअस एक दूसरे से नहीं मिलते । यह बहुत कुछ भिन्न २ प्रकार के होते

हैं और उसी के अनुसार सेल आचरण करता है।

यद्यपि सेल का शरीर बिना उसकी मींगी के जीवित नहीं रह सकता, किन्तु मींगी से पृथक् रहने पर भी उसका शरीर थोड़ी देर तक अवश्य जीवित रहता है। सेल का शरीर और सेल की मींगी दोनों ही जीवित रचना-सामग्री से बने होते हैं। जिस प्रकार सब जीव एक होते हैं, उसी प्रकार सब जीवित पुद्गलों में भी—चाहे वह फूल, मक्खी, मछली अथवा मनुष्य किसी में भी क्यों न हो—कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जिनके कारण वह सब जीवित निर्जीव पुद्गलों से भिन्न प्रकार के कहे जाते हैं। जीवन के रहने योग्य इस पुद्गल को प्रोटोप्लाज्म(Protoplasm) कहते हैं। प्रोटोप्लाज्म शब्द का अर्थ निर्माण की आरंभिक रचना-सामग्री है। सभी जीव प्रोटोप्लाज्म में रहते हैं। सभी जीवित सेलों के जीवित अंग सेल का शरीर और सेल की मींगी प्रोटोप्लाज्म से बनते हैं। इसी पुद्गल को जैन शास्त्रों में नोकर्म-पुद्गल नाम दिया गया है।

प्रोटोप्लाज्म के उपादान कारण

सभी पुद्गल भिन्न २ प्रकार के तत्वों—जैसे कारबन, चांदी, ओषजन आदि— से बनते हैं। अतएव प्रोटोप्लाज्म के विषय में भी प्रथम प्रश्न यही उत्पन्न होता है कि इसकी रचना किनर तत्वों से होती है? इसका उत्तर निश्चित है। प्रोटोप्लाज्म की रचना उन तत्वों से होती है, जिनका साधारण रूप से हम सभी को परिचय है। वह सब तत्व पृथ्वी पर अत्यंत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

नसों के सेल भी उसी सार्वजनिक रचना-सामग्री के बने हुए हैं।

प्रोटोप्लाज्म में जल तो निश्चय से होता है। यह पहिले बतलाया जा चुका है कि जल ओषजन (Oxygen) और हाइड्रोजेन (Hydrogen) नामक तत्वों से बनता है। संभवतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि प्रोटोप्लाज्म जल मे होता है। जीवित वस्तुएं जल के बिना नहीं रह सकती।

सब जीवों के लिये आवश्यक पंच महा-तत्व

यह बात बतलाई जा चुकी है कि पंच महाभूत अनिवार्य रूप से जीवन के कारण नहीं है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि यदि कोई जीव बरफ मे जम जाता है अथवा वह बिल्कुल सूख जाता है तो वह मर ही जाना चाहिये। ऐसा नहीं है। ऐसी दशा मे जीवित प्राणियों का जीवित रहना रुक जाता है, किन्तु वह आवश्यक रूप से मर नही जाते। उस समय उनका बढना और श्वास लेना बन्द हो जाता है। उनमे जीवन का ऐसा कोई चिन्ह दिखलाई नहीं देता, जो केवल तरल जल मे ही दिखलाई देता है।

यद्यपि उस समय यह नही कहा जा सकता कि वह जीवित हैं, किन्तु यदि उनको जल मिल जावे तो उनमे जीवित रहने की शक्ति फिर भी है ही। उनको उस दशा मे जीवित या मृत कुछ भी नही कहा जा सकता। इस प्रकार हम जानते हैं कि तरल जल के बिना जीवन प्रक्रिया नहीं चल सकती। अतएव संभवत.

यह कहना ठीक है कि प्रोटोप्लाज़्म को बनाने वाली वस्तुओं में से जल भी एक है।

जल के ओषजन और हाइड्रोजेन के अतिरिक्त—जिनमे सभी प्रोटोप्लाज़्म जीवित रहते है—उनमे और भी बहुत सा ओषजन और हाइड्रोजेन होता है। वह दोनों तत्व इस प्रकार परस्पर मिले हुए नही होते कि उनका जल बन जावे, वरन वह दूसरी प्रकार से प्रत्येक दूसरे तत्त्व के साथ मिले होते है। प्रोटोप्लाज़्म में आवश्यक रूप से यह तत्व मिलते है—

कारबन(Carbon),ओषजन, हाइड्रोजेन(उदजन), नाइट्रोजेन (Nitrogen)और फास्फोरस(Phosphorus)। इस बात के विषय मे निश्चय नही किया जा सका है कि प्रोटोप्लाज़्म के लिये गंधक (Sulphur) आवश्यक है अथवा नहीं। किन्तु इन पांच तत्त्वों के बिना प्रोटोप्लाज़्म नहीं रह सकता। यह सब तत्त्व सब कहीं अत्यन्त प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। किसी की कहीं भी कमी नहीं है। अतएव जीवित शरीर अत्यन्त साधारण वस्तुओं से बनता है।

पुरानी वस्तुओं से नई वस्तु बनाने की प्रोटोप्लाज़्म की महान् शक्ति

किन्तु यहां एक बात विशेष रूप से स्मरण रखनी चाहिये। वह यह है कि यद्यपि प्रोटोप्लाज़्म मे इतने सार्वजनिक तत्त्व होते हैं, किन्तु इन सार्वजनिक तत्त्वों के मिश्रण की संसार के किसी भी मिश्रण से तुलना नहीं की जा सकती।

यह बात बतलाई जा चुकी है कि यह तत्त्व अनेक मिश्रण

बनाने के लिये प्राय मिलते रहते हैं। इन मिश्रणों का सब से सरल उदाहरण जल है, जो ओषजन और हाइड्रोजेन के मिश्रण से बनता है। प्रोटोप्लाज्म में यह जल भी होता है। किन्तु प्रोटोप्लाज्म के मिश्रण तो भी सब से अनोखे होते हैं। अतएव प्रोटोप्लाज्म में साधारण और सब कहीं मिलने वाली वस्तुओं को लेकर उनसे बिल्कुल ही भिन्न प्रकार की नयी वस्तु बना डालने की शक्ति है। कवि भी साधारण शब्दों से यही कार्य करते हैं। सगीतज्ञ भी स्वरों से यही कार्य करता है। इसी प्रकार जीवन भी संसार के साधारण तत्त्वों से प्रोटोप्लाज्म को बनाकर उससे भिन्न २ प्रकार के बड़े २ सुन्दर प्राणियों के शरीरों को बनाता है।

सप्तम अध्याय

रक्त के लाल सेल

यह बतलाया जा चुका है कि जिस प्रकार पुद्गल के तत्त्व की सब से छोटी इकाई परमाणु (Atom) होता है, उसी प्रकार जीवित प्राणियों की सब से छोटी इकाई--जीवित सेल (Cell) होते हैं। अमीबा और सूक्ष्म जीव जैसे एक २ सेल के साधारण प्राणियों के विषय में भी बतलाया जा चुका है।

अब हमको संसार के सब से अधिक आश्चर्यजनक तरल पदार्थ का अध्ययन करना है। यह तरल लाल रक्त है, जो सभी प्राणियों के शरीर में मिलता है। यद्यपि हम रक्त को तरल समझते हैं किन्तु उसमें लाल और सफेद जीवित सेल भरे पड़े हैं। इन्हीं सेलों के स्वस्थ रहने पर हमारा स्वास्थ्य निर्भर है।

रक्त का वाष्पीय भाग (Gaseous Part) हमारे लिये जीवन और मरण का पुद्गल है। हम उसकी रचना को ठीक रखने के लिये श्वास लेते हैं। हम इस लिये श्वास लेते हैं कि शरीर के द्वारा उत्पन्न किये हुए और रक्त में मिले हुए विषैले गैसों से हमारा पीछा छूट जावे। हम इस लिये भी श्वास लेते हैं कि जीवनदायक गैस ओपजन हमारे शरीर को ठीक परिमाण मे मिलता रहे। रक्त के यह तीनो भाग—सेल, तरलता और गैसें—जीवन के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इस वर्णन को सेल से आरम्भ करने मे यह कहा जा सकता है कि सेल दो प्रकार के होते है। लाल सेल और श्वेत सेल।

रक्त सेलो की संख्या अत्यन्त अधिक होती है और उनको समझना भी सुगम होता है। आलपिन के सिरे के बराबर के रक्त के परिमाण में ऐसे लाखो रक्त सेल होगे। रक्त की एक अत्यन्त छोटी बूंद को लेकर, काच की तश्तरी मे रखे हुए एक दूसरे गिलास मे रख कर और ढक कर हम उसको सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखकर उस के सेलों को गिन सकते है। हम जानते हैं कि अंदर का गिलास कितना गहरा है। उसके फर्श पर छोटी रेखाएं एक दूसरे से पर्याप्त अन्तर पर फैली होती हैं। यदि हम इनमे से प्रत्येक के सेलों की संख्या को गिन लेवे तो हम सेलों में रक्त की अधिकता का हिसाब लगा सकते हैं।

किन्तु इसके करने में बड़ा समय लगता है और इसका

करना कठिन भी बहुत है। विशेषकर इस लिये कि पहिले रक्त को घोलना पड़ता है; किन्तु लाल और श्वेत दोनों ही प्रकार के सेलों के लिये इसका करना बहुत अच्छा है; क्योंकि स्वास्थ्य की भिन्न २ दशाओं में उनकी संख्या भी बदल जाती है। रक्त में सेलों की संख्या जानने के कारण ही प्रायः डाक्टर यह बतला सकते हैं कि अब रोगी की चिकित्सा किस प्रकार करनी चाहिये।

रक्त का सारा लाल रंग लाल सेलों के कारण होता है। यदि हम एक सेल को ध्यान पूर्वक देखें तो हमको पता लगता है कि वह वास्तव में लाल नहीं, वरन् पीला है। उनको अधिक संख्या के एक साथ देखे जाने से ही रक्त (Blood) लाल दिखलाई देता है।

यदि अंगुली को छेदा जावे तो उसमें से अत्यन्त लालरंग के रक्त की बूंदें निकलेंगी, किन्तु अस्वस्थ मनुष्यों का रक्त अत्यन्त पीला होता है। ऐसे व्यक्तियों को बहुत से रोग हो जाते हैं।

इस पीलेपन के मुख्य कारणों में से एक बुरी वायुमें श्वास लेना भी है; क्योंकि वायु के बुरे गैस लाल सेलों के लिये विष होते हैं। यह उनमें से बहुतों को जान से मार डालते हैं। इस प्रकार लाल सेलों की संख्या बहुत अधिक घट जाती है। सेलों की संख्या ठीक होते हुए भी यह हो सकता है कि उनमे लाल सेलों की संख्या आवश्यकता से कुछ कम हो।

हमारे रक्त को लाल बनाने वाले सेल और उनकी कार्य प्रणाली

लाल सेल गोल और चपटे होते हैं। किनारों की अपेक्षा वह बीच में कुछ अधिक पतले होते हैं। यह सेल दोनों ओर से बीच में छिदे हुए गोल चक्कर के जैसे होते हैं।

रक्त के स्वस्थ होने पर सब लाल सेलों का आकार एकसा होता है। उनमें कोई मींगी या न्यूक्लयुअस दिखलाई नहीं दे सकता। किन्तु अपनी छोटी दशा में प्रत्येक सेल में मींगी होती है। बढ़ जाने पर उनकी मींगी छूट जाती है। अन्य सेलों के समान उनको दो भागों में विभक्त नहीं किया जा सकता। वह रक्त में बहुत थोड़े दिन—संभवत कुछ दिन या सप्ताह ही—जीवित रहते हैं। तब वह टूट कर मिल जाते हैं। पूरे समय भर यही होता रहता और नये सेल रक्त में आते रहते हैं।

हड्डियां और उनके अन्दर होने वाला आश्चर्यजनक कार्य

लाल सेल हमारी हड्डियों के अंदर बनते हैं। यह एक ऐसी आश्चर्यजनक बात है जिसका बहुत कम व्यक्ति विश्वास करेंगे। लोग समझते हैं कि हड्डी कठोर और मृतक होती है, शरीर में उसके अस्तित्व का वही प्रयोजन है जो मकान में खम्भों का होता है।

किन्तु यह जीवित खम्भे हैं। उनके अन्दर मज्जा (Marrow) नामकी रचनासामग्री भरी होती है। मज्जा केवल

जीवित ही नहीं होता, वरन् शरीर के सब से अधिक जीवित और सबसे अधिक फुर्तीले पट्ठों में से एक होता है। इस लाल मज्जा के अन्दर के सेलों में नवीन लाल सेलों को बनाने की आश्चर्यजनक शक्ति होती है। रक्त हड्डियों के अन्दर जाकर तब तक उनको स्वयं ही लाता रहता है जब तक यह लाल मज्जा स्वयं रोगी न हो जावे, जैसा कि कभी कभी हो जाया करता है। लाल मज्जा को सबसे अधिक हानि पहुंचाने वाले वह अशुद्ध गैस हैं, जो हमारे अशुद्ध वायु में श्वास लेने से रक्त में मिलकर मज्जा में आते हैं।

हमारे शरीर में रक्त के साथ २ लाल सेल भी घूमते रहते हैं। किन्तु वह स्वयं नहीं घूमते। वह तो अत्यंत ही स्थिर और श्वेत सेलों से अत्यंत भिन्न हैं। वह अपना आकार नहीं बदलते। यह जान पड़ता है कि उनके ऊपर एक कोमल ढकना रहता है जो उनको आकार नहीं बदलने देता। वह सूक्ष्मजीवों (Microbes) अथवा रक्त में से किसी शत्रु को कभी नहीं खाते। किसी २ समय उनमे सूक्ष्मजीव या जर्म दिखलाई देते हैं। किन्तु यह इसी कारण दिखलाई देते हैं कि सूक्ष्मजीवों ने सेलों को मार डाला है, इसलिये नहीं कि सेलों ने सूक्ष्मजीवों को खा लिया है।

तब हमारे रक्त के अंदर इन करोड़ों लाल सेलों का क्या उपयोग है? उनका उपयोग बिल्कुल गाड़ी के

समान अपने अन्दर के रंग देने वाले पुद्गल को ले चलना है। इस पीले या लाल पुद्गल का बड़ा लम्बा नाम है। किन्तु यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि हमको इसका विशेष अध्यन करना चाहिये।

रक्त को लाल और घास को हरी बनाने वाला लोहा

इसका नाम हेमोग्लोबिन (Haemoglobin) है। हेमोग्लोबिन ससार भर में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रासायनिक मिश्रण है। यह बतलाया जावेगा कि जल के अन्दर त्रसरेणु (Molecules) होते है। प्रत्येक त्रसरेणु तीन परमाणुओं (Atoms) से बना होता है। सभवत हेमोग्लोबिन के प्रत्येक त्रसरेणु में कम से कम एक सहस्र परमाणु होगे। उनमें से अधिकतर कारबन (Carbon), हाइड्रोजेन, नाइट्रोजेन, और ओषजन (Oxygen) के परमाणु होते है। इनमे लोहे के परमाणु भी अनिवार्य रूप से होते है।

अतएव हेमोग्लोबिन इस नियम का अनुसरण करता है कि लोहे के मिश्रण प्राय: रंगीन होते हैं। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जिस प्रकार लोहा प्राणियों के शरीरों के रंगीन मिश्रणो के लिये आवश्यक है उसी प्रकार वह पौदों के शरीरों के रंगीन मिश्रणों के लिये भी आवश्यक है।

साराश यह है कि लोहा ऐसी वस्तुओ में से एक है, जो संसार में रंग बनाने में सहायता देती है। यह केवल हमारे शरीर के रक्त में लाली ही उत्पन्न नहीं करता, वरन् पत्तियों

में भी हरे रंग को उत्पन्न करता है। अत्यन्त हल्के प्राणि भले हो बिना लोहे के जी सकें, किन्तु उच्च कोटि के प्राणि और पौदों के जीवन के लिये लोहा अत्यन्त आवश्यक है। वह हमको हमारे भोजन के विषय में भी कुछ बात बतलाता है। कुछ समय के पश्चात् लाल सेल मर कर टूट जाते हैं और उनका लोहा नष्ट हो जाता है। अतएव लोहा हमारे भोजन का एक आवश्यक भाग है। लोहे के बिना हमारी मृत्यु हो जावे। हमारे शक्तिशाली भोजन के अन्दर भी लोहा पर्याप्त मात्रा में होता है। दूध, अन्डे, रोटी, मांस, आलू, मटर, चावल और जई सब में लोहा होता है। यह समझा जाता था कि शराब मे लोहा होता है, किन्तु उसमें बहुत थोड़ा होता है। जिसके शरीर में लोहा कम हो उसको लोहे का काम दूध अच्छी तरह दे सकता है।

किन्तु अभी यह नहीं बतलाया गया है कि यह हेमोग्लोबिन इतना अधिक महत्वपूर्ण क्यों होता है। यह इस लिये महत्वपूर्ण होता है कि इसको बनाने की सामग्री हमारी हड्डियों मे भरी हुई है। वह इस लिये महत्वपूर्ण है कि इसको लेजाने के लिये हमारा रक्त सेलों से भरा हुआ है। यदि रक्त में उसके ठीक परिमाण में कमी हो जावे तो हम बीमार पड़ जाते हैं।

जब हम श्वास के द्वारा ओषजन (Oxygen) को वायु में से लेते हैं तो यह हेमोग्लोबिन ही उसको शरीर के प्रत्येक

भाग में ले जाता है। हम यह पढ़ चुके हैं कि प्रत्येक जीवित सेल या तो श्वास लेता है अथवा मर जाता है। सेल ओषजन को रक्त में से लेते है और रक्त उनको ओषजन हेमोग्लोबिन के द्वारा पाकर देता है। प्रत्येक लाल सेल प्रत्येक कुछ मिनट तथा कुछ की सम्मति में प्रत्येक चार मिनट के पश्चात् फेफड़ों में से होकर रक्त में से निकलता है। इतना कार्य करने के पश्चात् वह शरीर के भिन्न २ भागों में जाता है। इसी प्रकार वह तब तक बार बार २ करता रहता है, जब तक उसका जीवन समाप्त होता है और उसके स्थान को एक छोटा सेल ले लेता है। उसका फेफड़ो मे जाने का यही आशय होता है कि वहा उसको ओषजन मिलता है।

विशेष बात यह है कि रक्त का तरल भाग और उसके श्वेत सेल फेफड़ों के अन्दर से जाते हुए शरीर की आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त ओषजन नहीं ले सकते। यह कार्य केवल लाल सेल ही कर सकते हैं और वह भी केवल वह अपने अन्दर हेमोग्लोबिन होने के कारण ही कर सकते हैं।

कभी २ लाल सेल तो बहुत से होते हैं, किन्तु उनमें हेमोग्लोबिन पर्याप्त मात्रा मे नही होता। ऐसा होते ही हमको रोग आ घेरते हैं।

हेमोग्लोबिन के प्रत्येक त्रसरेणु (Molecule) में ओषजन के त्रसरेणु से मिलने की शक्ति होती है। हेमोग्लोबिन की

रचना को ठीक २ कोई नहीं जानता। किन्तु उसमें ओषजन और हाइड्रोजेन अवश्य होते हैं।

जब रक्त फफड़ों में जाता है तो लाल सेलों का सभी हेमोग्लोबिन ओषजन के त्रसरेणुओं से फेफड़ों में मिल जाता है। उस समय उसका एक नया मिश्रण बन जाता है। उस मिश्रण का नाम आक्सीहेमोग्लोबिन (Oxyhaemoglobin) कहा जाता है।

श्वास लेते समय फेफड़ों में जाने वाला पदार्थ

उस समय फेफड़ों में सादा हेमोग्लोबिन आता है और उनमें से वह आक्सीहेमोग्लोबिन बन कर जाता है। इसी से रक्त के रंग में अन्तर आता है, क्योंकि इस मिश्रण का रंग चमकीला और भक लाल होता है। इसी रंग को जीवन का रंग कहा गया है। केवल हेमोग्लोबिन का रंग कुछ कालापन लिये हुए होता है। रक्त के रंग में इस परिवर्तन का थोड़ा आभास पहिले ही दिया जा चुका है। जिस व्यक्ति को दम घुटने के दौरे आते हैं, उसमें यह अन्तर तुरन्त देखा जा सकता है; क्योंकि उसकी खाल का रंग काला और बैंजनी सा हो जाता है। उसके समस्त रक्त में आक्सीहेमोग्लोबिन के स्थान में केवल हेमोग्लोबिन ही भरा होता है; क्योंकि उसके फेफड़ों में हवा नहीं आती। जब वह फिर ठीक होजाता है तो उसके चेहरे का रंग फिर स्वस्थ हो जाता है, क्योंकि अब उसके फेफड़ों में हवा आने लगती है और उसके रक्त में पर्याप्त मात्रा में आक्सीहेमोग्लोबिन भर जाता है।

यदि हम अपने हाथ के पीछे या कलाई के ऊपर देखते हैं तो हमको नीली रेखाएं दिखलाई देती हैं। यह नसें हैं। इनमे से रक्त दौड़ २ कर भुजाओं में जाता रहता है। इस बात का प्रमाण यह है कि यदि इन नीली धारियों को दबाया जावे तो रक्त बंद होकर यह धारिया गायब हो जाती हैं। हाथ हटाते ही फिर रक्त दौडने लगता है और नसे फिर नीली दिखलाई देने लगती हैं।

जीवन का चिन्ह—रक्त की गति

नसें इस कारण नीली दिखलाई देती हैं कि रक्त के लाल सैलों का रग देने वाला पुद्गल अंधेरे प्रकार का होता है। यह केवल हेमाग्लोबिन ही होता है, आक्सीहेमोग्लोबिन नहीं होता। यह रक्त ताजे ओषजन को लेने के लिये भुजा में से दौड़ता हुआ फेफडों में जा रहा है। फेफडों में जाकर अन्धेरा रक्त फिर चमकीला बन जाता है। यह चमकीला रक्त हृदय में आता है और वहां से इसकी शरीर के प्रत्येक भाग में पिचकारियां छोड़ी जाती हैं। शरीर में आकर यह रक्त ओषजन को छोड़ कर फिर हेमोग्लोबिन बन जाता है। वह ओषजन लेने के लिये फिर फेफड़ों में आता है और इसी प्रकार बार-बार होता रहता है।

हेमोग्लोबिन की सब से अधिक आश्चर्यजनक शक्ति यही है कि वह अत्यन्त सुगमता से ओषजन को ले लेता है तथा अत्यन्त सुगमता से ही उसको जहां कहीं भी आवश्यक

को छोड़ देता है। शरीर के इन असंख्य लाल सेलों का उद्देश्य और उनकी कार्य प्रणाली का यह सारांश है।

यदि हम को स्वस्थ, बलवान् उपयोगी और प्रसन्न बनना है तो हमको अपने रक्त में लाल सेल पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने चाहिये और उनमे हेमोग्लोबिन होना चाहिये। अतएव उनको अथवा उनको बनाने वाले मज्जा को हानि पहुंचाने वाले प्रत्येक विष से बचना चाहिये। बुरी हवा सब से बुरा विष है। संसार के अधिक भागों में मलेरिया के कीटाणु नाम के सूक्ष्मजीव इसके लिये सब से बड़ा विष होते हैं। कुछ विशेष प्रकार के मच्छर इन कीटाणुओं को लिये फिरते हैं। वह काटते समय उन कीटाणुओं को हमारे रक्त में प्रवेश करा देते हैं। रक्त में मिलकर यह कीटाणु बहुत से लाल सेलों को मार डालते हैं।

मनुष्य विष खा लेने से क्यों मर जाते हैं

अनेक विषों का यह स्वभाव है कि वह हेमोग्लोबिन के कार्य में बाधा डालते हैं। प्रूसिक ऐसिड (Prussic Acid) हेमोग्लोबिन में इस प्रकार मिल जाता है कि वह ओषजन (Oxygen) को लेने योग्य नहीं रहता। अतएव प्रूसिक ऐसिड लेने वाला व्यक्ति दम घुट कर मर जाता है। उसके फेफड़ों में आने वाला रक्त उनमें से ओषजन लेने योग्य नहीं रहता।

स्पिरिट अथवा शराब का भी लाल सेलों पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ता है। यह हेमोग्लोबिन के ओषजन

से सम्बन्ध को साधारण दशा से अधिक दृढ़ कर देती है। परिणाम यह होता है कि शरीर के पट्ठे इसमें से ओषजन को उतनी शीघ्रता से नहीं निकाल सकते, जितनी शीघ्र वह निकाला करते हैं। अतएव वह इतनी अच्छी तरह नहीं जलते। यही कारण है कि अधिक शराब पीने वाले मोटे हो जाते हैं और उनकी मन और पट्ठों की शक्ति और फुर्ती जाती रहती है। शराब से जीवन की अग्नि प्रकाशितरूप में नहीं जल सकती।

अष्टम अध्याय

रक्त के श्वेत सेल

शरीर में लाल सेलों की तुलना में सफेद सेल बहुत ही कम हैं। दो आलपिनों के सिर के परिमाण वाले रक्त में चालीस पचास लाख लाल सेल और आठ सहस्र सफ़ेद सेल होते हैं। अनेक प्रकार के रोगों में सफेद सेलों की संख्या अत्यन्त अधिक बढ़ जाती है। कभी २ तो यह संख्या पाच से लेकर दस गुनी तक हो जाती है। डाक्टर लोग पहिले समझते थे कि रोग के लिये यह बुरी बात है, किन्तु अब इसका अच्छी तरह पता लग गया है। ऐसा इसलिये होता है कि सफेद सेल रोग मे विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। इनके द्वारा प्रकृति स्वयं ही रोग का मुकाबला करती रहती है।

यद्यपि लाल सेल सब एक ही प्रकार के होते हैं, किन्तु सफेद सेल अनेक प्रकार के होते हैं। वह परिमाण और

अनेक प्रकार के रंग वाले पदार्थों के साथ ठहरने आदि में भिन्न २ प्रकार के होते हैं । संभवत. यह सब विभिन्न प्रकार के सेल जीवन के इतिहास के भिन्न २ युगों को प्रगट करते हैं । उन के ऊपर कोई लचीला आवरण नहीं होता, वरन् वह शीघ्रता पूर्वक आकार बदलते और बदल सकते हैं ।

बहुत वर्षों तक इन सफ़ेद सेलों के किसी उपयोग का पता न चला । इसके पश्चात् बहुत विचित्र बाते देखने में आई । सफ़ेद सेलों के अन्दर सूक्ष्मजीव देखने मे आए । यह देखकर पहिले तो यह विचार किया गया कि सूक्ष्मजीवों ने सफ़ेद सेलों पर आक्रमण किया है और वह उनको जान से मार रहे हैं । किन्तु फिर सफ़ेद सेलों में कोयले की धूल के छोटे २ कण देखने में आये । इनको सेलों ने अपने लिये पकड़ा होगा । तब इस बात का पता लगा कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र के नीचे रक्त की बूंद को किस प्रकार उष्ण रखा जावे, जिससे हम सफ़ेद सेलो को एकबार ही घन्टो तक देखते रह सकें। सफ़ेद सेलों को इस प्रकार देखने से पता लगा कि जिन सेलों में सूक्ष्मजीव थे, वह मरे नहीं, बल्कि कुछ समय के पश्चात् सूक्ष्मजीव गायब हो गये ।

तब इस बात का पता लगा कि सफ़ेद सेलों को सूक्ष्म-जीवों को अथवा रक्त में किसी बाह्य पुद्गल के कणों को पकड़ते देखा जा सकता है, । यह भी देखा गया कि वह उनके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं, जिस प्रकार

अमीबा अपने आहार के साथ करता है। एक जीवित पट्ठे के रक्त स्थान का सूक्ष्मदर्शक यंत्र से अध्ययन करने पर पता लगा कि सफेद सेल रक्त स्थान की दीवारों में से एक प्रकार से निकल जाते हैं और शरीर मे खूब इधर उधर चक्कर काटा करते हैं। अब इसको उनका पर्यटन (Emigration) कहा जाता है।

कल्पना करो कि अंगुली में चोट लग गई और उसके घाव में कुछ कचरा और कुछ सूक्ष्मजीव भर गये। हम देखते हैं कि सफेद सेल सहस्रो की संख्या मे घाव के पास मांस की दीवार मे से जाते हैं। उनको इस प्रकार करते हुए देखा जा सकता है। इस प्रकार उस घाव तक पहुंचने में एक सेल को लगभग आध घन्टा लगता है। यहां वह घाव के चारों ओर एकत्रित हो जाते हैं।

इस बीच में, यदि चोट सांघातिक होती है तो यह पता चलता है कि एक आश्चर्यजनक प्रकार से सारे शरीर को इस घटना की सूचना दे दी गई है। इस समय इन सफेद सेलों को बनाने वाले भिन्न २ अङ्ग अत्यन्त शीघ्रता से काम करने लगते हैं। उस समय रक्त की प्रत्येक बूंद में सफेद सेलों की संख्या अत्यधिक बढ़ जाती है। आने वाले सेल चोट के स्थान पर सूक्ष्मजीवों पर आक्रमण करते हैं। वह प्रत्येक आक्रमण में सफल होकर सूक्ष्मजीवों को मारकर खा जाते हैं।

इस प्रकार की चोट से हम इस प्रकार शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। यदि किसी अंगुली में विष उत्पन्न हो जाता है

तो रक्त के सफेद सेल ही इसको शीघ्र अच्छा कर देते हैं। अंगुली पर आक्रमण करने वाले सूक्ष्मजीवों को सफेद सेल ही मार डालते हैं। यह कार्य करते समय वह तीस चालीस सहस्र की संख्या में मर भी जाते हैं। घाव में से निकलने वाला सफेद मवाद उन वीर सैनिकों के मृत शरीरों का ही बना होता है, जो अपने निवास स्थान—शरीर की रक्षा करते हुए युद्धस्थल में काम आये हैं।

हमारे जीवन की एक मनोरंजक कहानी

वह बाहिर के जीवित शत्रुओं और अजीव बाहिरी मैले के विरुद्ध शरीर के अन्दर रक्षक सैनिकों का दल हैं। उनको प्रायः शरीर के झाड़ू देने वाले अथवा शरीर की पुलिस कहा जाता है।

यद्यपि हमको अपने जीवन में उनके कार्य का बहुत कम पता है, किन्तु वह सैनिकों, पुलिस के अफसरों अथवा आग बुझाने के एंजिनों के समान शरीर में सदा ही आवश्यकता के समय कार्य करने के लिये सावधान और सचेष्ट रहते हैं। यह बिल्कुल निश्चित है कि इन सफेद सेलों के ही कारण हमारी छूत के रोगों से रक्षा होती है। जब हम फेफड़ों की सूजन, लाल बुखार, चेचक, खसरा अथवा कूकर खांसी आदि से बीमार पड़ते हैं तो हमको वैद्य या डाक्टर अच्छा नहीं करते; वरन हम स्वयं ही अपने रक्त के सफेद सेलों की सहायता से अच्छे हो जाते हैं। यदि हमारा रक्त स्वस्थ है और उसमें शराब के जैसा कोई विष प्रवेश

नहीं कर पाया है तो हमारे सफ़ेद सेल बहुत से रोगों के कीटाणुओं (Germs) को जान से मार डालेंगे।

हमारे प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में प्रकृति की इस अच्छा करने की शक्ति का अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है। अब वर्तमान युग में प्रकृति की उस शक्ति के चमत्कार को हम प्रत्यक्ष देखते हैं। हमारे जीवन के वास्तव मे अनेक शत्रु है। तापमान का परिवर्तन अनेक प्रकार की दुर्घटनाएं, जीवन पर अनेक प्रकार के आक्रमण तथा जीवन के लिये विष-रूप वस्तुएं आदि हमारे सामान्य शत्रु हैं।

प्रकृति का हमको स्वय रोगमुक्त करने का आश्चर्यजनक ढङ्ग

अतएव प्राणियों को आरम्भ से ही चोट को अच्छी कर लेने का ढंग सीखना चाहिये। यदि प्रत्येक चोट के कारण शरीर मे कुछ न कुछ हानि हो जाया करे तो जीवन चल नहीं सकता। अनेक युगों से प्रकृति की यह स्वय अच्छा करने कि शक्ति बढ़ रही है। मनुष्य मे तो यह शक्ति सब प्राणियों से अधिक है।

हम रोग, मृत्यु और दुर्घटना के अस्तित्व को जानते हैं। हम ऐसी भारी चोट को भी जानते हैं, जिसकी क्षति-पूर्ति नहीं हो सकती। किन्तु तो भी प्रकृति की यह स्वयं रोग-मुक्त करने की शक्ति न जाने कितनी दुर्घटनाओं और कितने विष दिये जाने के ख़तरों को बचा देती है। हम किसी छूत वाले रोगी के रक्त की एक बूंद लेकर उसमे सफेद सेलों द्वारा सूक्ष्मजीवों को खाये जाते हुए देख सकते हैं। शरीर

की रक्षा करने का यह बड़ा आश्चर्यजनक साधन है।

चोट लगने पर होने वाला आश्चर्यजनक कार्य

यह सफ़ेद सेल हमको शरीर की आश्चर्यजनक एकता के विषय में भी बतलाते हैं। हल्के से हनको चोट लगने पर, तनिक सा कीचड़ लग जाने अथवा नाखून दब जाने पर भी उसकी सूचना तत्काल ही सारे शरीर को मिल जाती है। तिल्ली, जो शरीर के अन्दर बहुत दूर होता है और गले तथा बगल की खाल के नीचे की छोटी २ गिलटिया—सभी को शरीर के रासायनिक दूत चोट लगे हुए स्थान से चल कर सूचना दे देते हैं, जिससे वह अग सफेद सेल बनाने के अपने कार्य को दुगनी या तिगुनी फ़ुर्ती से करें।

सदेशों का ले जाना भी रक्त के द्वारा की हुई बड़ी भारी सेवाओं में से ही एक है। रक्त केवल ओषजन और भोजन को ही नहीं ले जाता, वह शरीर का केवल सैनिक अथवा मल्लाह ही नहीं है, वरन वह सदेशों को भी ले जाता है और इसी कारण वह दूत भी है। रासायनिक परिवतन किये बिना शरीर के किसी भी भाग में कुछ नहीं होता। इन परिवर्तनों के परिणाम रूप मिश्रण रक्त में प्रवेश करते हैं। इसके पश्चात् रक्त की धार उनको ले जाकर उनसे काम ले लेती है।

शराब सफेद सेलों को किस प्रकार नष्ट करती है

दुर्घटना, चोट अथवा हानि के अतिरिक्त अन्य अनेक बातों का प्रभाव भी सफ़ेद सेलों पर काफी पड़ता

है। भोजन को पचाते समय उनको एक बड़ी संख्या रक्त में मिल जाती है। बहुत सी औषधियां भी—जिनमें से अनेक को हम उपयोगी समझते हैं—इन सफेद सेलों को शून्य कर देती है, जिससे वह अपना कार्य नहीं कर सकते। इसी कारण आजकल डाक्टर लोग पहिले की अपेक्षा बहुत कम औषधियां देने लगे हैं। उनको अपनी औषधियों की अपेक्षा प्रकृति की रोगमुक्त करने की शक्ति पर अब अधिक विश्वास होने लगा है।

शराब का इस विषय में बड़ा भारी प्रभाव होता है। इस की थोड़ी मात्रा को भी शरीर में पहुच जाने पर सफेद सेल हिलना डुलना बंद कर देते हैं और आने वाले सूक्ष्म कीटाणुओं की कोई चिन्ता नहीं करते। यदि उनके शरीर में शराब न होती तो वह उन रोगाणुओं को स्वयं ही खा जाते। यही कारण है कि शराब पीने वाले मनुष्य और पशुओं को छूत की बीमारियां अच्छी नहीं होती।

रक्त मे लाल और सफेद सेलों के अतिरिक्त दूसरे छोटे २ पदार्थ भी होते हैं। वह बहुत छोटे, गोल तथा पारदर्शी होते हैं। उनको रक्त के पत्तर (Blood plates) कहते हैं। रक्त के पत्तर चक्कर काटने वाले रक्त में नहीं होते। वह रक्त बहने पर मैल के समान नीचे बैठ जाते हैं। यह रक्त जमने के आरम्भ से ही सम्बन्ध रखते हैं।

रक्त के निर्माण में सहायता देने वाले गैस

रक्त के ठोस भाग के विषय मे हमको इतना ही कहना था। इन ठोस भागों के अतिरिक्त रक्त के दो और भाग भी हैं—एक तरल भाग दूसरा वाष्पीय भाग (Gaseus part)। इनमें प्रथम रक्त के वाष्पीय भाग का ही वर्णन किया जावेगा।

रक्त में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण गैस ओषजन (आक्सीजेन) है। यह फुफड़ों को जाने वाली नसों में यद्यपि बहुत कम होता है, किन्तु फुफड़ो से आने वाली नसो मे उसका बहुत सा भाग होता है। जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है यह प्राय हेमोग्लोबिन के साथ मिला होता है।

नत्रजन (नाइट्रोजेन) का एक भाग भी रक्त मे घुला रहता है। यह भी फेफड़ो के द्वारा ही वायु के साथ रक्त मे प्रवेश करता है। यद्यपि यह शरीर मे कोई काम नहीं करता, किन्तु अपने भोजन मे नाइट्रोजेन के मिश्रण के बिना हमारी मृत्यु हो जाना निश्चित है। नत्रजन को कुछ साधारण प्रकार के पौदे ही ग्रहण करके मिलाते हैं। मनुष्य तथा पशु नाइट्रोजेन के लिये उन पौदो पर ही निर्भर करते हैं।

रक्त में एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गैस भी सदा पाया जाता है। यह गैस कारबन डायोक्साइड (Carbon Dioxide) है। इसके त्रसरेणु (Molecule) मे एक परमाणु (Atom) कारबन

का और दो ओषजन के होते हैं। यह हमारे शरीर में निरन्तर बनता रहता है।

नमक के बिना हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते

यदि अग्नि में से उसका कारबन डायोक्साइड प्रथक् न होता रहे तो उस में घोट हो जावे। यही बात हमारे विषय में भी है। अतएव अंगुलियों को जाने वाले और वहां से आने वाले रक्त में दो बड़े अन्तर हैं। अंगुलियों को जाने वाले रक्त में ओषजन (आक्सीजेन) अधिक होता है और कारबन डायोक्साइड बहुत कम होता है। जबकि अंगुलियों से वापिस नसों मे आने वाले रक्त में आक्सीजेन बहुत कम होता है और कारबन डायोक्साइड बहुत अधिक होता है। यह कारबन डायोक्साइड फेफड़ों में छोड़ने के लिये ले जाया जाता है। इस समय पट्ठो से फेफड़ों मे कारबन डायोक्साइड का इतना अधिक परिमाण जाता है कि वह अपने गैस रूप मे रक्त में नहीं समा सकता। अतएव जिस प्रकार आक्सीजन को ठोस पदार्थ हेमोग्लोबिन के साथ मिलकर आक्सी हेमोग्लोबिन बन जाना पड़ता है, उसी प्रकार कारबन डायोक्साइड को भी किसी पदार्थ के साथ मिल जाना पड़ता है।

यह जान पड़ता है कि इस कार्य में रक्त के लाल सेलों, सफेद सेलों अथवा रक्त के पत्तरों किसी को भी कुछ करना नहीं पड़ता। इस कार्य को एक बहूमूल्य क्षार (Salt) करता है, जो सदा ही रक्त के तरल भाग में घुला रहता है। हमार

रक्त में ऐसे अनेक क्षार हैं। इन सबका अस्तित्व हमारे जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसी कारण वह हमारे भोजन के आवश्यक अंग हैं। इनमें से अधिकांश रक्त वाले प्राणियों के रक्त में मिले होते हैं। जिन प्राणियों में रक्त नहीं होता उनके शरीर के यह तरल भाग में होते हैं। पट्ठों से कारबन डायोक्साइड के अधिक भाग को घुला कर लाने वाला क्षार सोडियम कारबोनेट (Sodium carbonate) है। सोडियम कारबोनेट वही सोडा है, जिससे हम कपड़े धोया करते हैं।

सोडियम कारबोनेट स्वयं भी सोडियम और कारबन डायोक्साइड का मिश्रण है। शरीर मे एक और क्षार भी इसी प्रकार का है। किन्तु उसके प्रत्येक त्रसरेणु मे कारबन डायोक्साइड के दो परमाणु होते हैं। इस क्षार का नाम सोडियम बाईकारबोनेट (Sodium Bi carbonate) है। सोडियम बाईकारबोनेट भी पकाने के सोडे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शरीर के बाहिर जब हम इन क्षारों का अध्ययन करते हैं तो हमको पता लगता है कि कुछ दशाओं मे साधारण कारबोनेट (Carbonate) कारबन डायोक्साइड को ग्रहण करके बाईकारबोनेट (Bi carbonate) बन जाता है। दूसरी दशा में बाईकारबोनेट अपने आधे कारबन डायोक्साइड को छोड़ कर साधारण कारबोनेट हो जाता है।

शरीर में कर्बन द्विओषित किस प्रकार निकलता है

हमारे रक्त में यह दोनों प्रक्रियाएं निरंतर होती रहती

है। यह दोनों हमारे जीवनके लिये अत्यंत आवश्यक भी हैं। किन्तु यह जान पड़ता है कि बाहिर की अपेक्षा यह हमारे रक्त में अधिक सुगमता और शीघ्रता से होती है। इसका कारण कुछ तो हमारे शरीर की उष्णता है और कुछ सम्भवतः शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं को करने की शक्ति है।

अब इस बातका वर्णन किया जा सकता है कि जब शरीरके भागों मे उनको पुष्ट करने के लिये शुद्ध रक्त जाता है तो क्या होता है। उसके तरल भाग में सोडियम कारबोनेट घुला रहता है। शरीर के जिस भाग में वह जाता है वह जीवित अथवा यह कहना चाहिये कि जल रहा है। साथ ही उसमें बहुतसा कारबन डायोक्साइड भी है, जिससे उसको अपना पीछा छुड़ाना है। यह रक्त मे जाकर वहां सोडियम कारबोनेट से मिल जाता है और सोडियम बाई-कारबोनेट बन जाता है। फिर नसें उसको बहाती हुई फेफड़ों में लाती हैं। लगभग दो मिनट में वह वहां पैरों में से भी आ पहुंचता है। यहां सोडियम बाई-कारबोनेट को फिर तोड़ा जाता है। उसके अन्दर से शरीर के अन्दर का फालतू कारबन डायाक्साइड प्रथक् होकर श्वास के साथ हमारे शरीर से बाहिर निकल जाता है।

इस प्रकार सोडियम कारबोनेट फिर रक्त मे रह जाता है। यह रक्त के साथ फिर पट्ठों में चला जाता है और वहां से पहिले के समान कारबन डायोक्साइड को ले आता है। इस प्रकार यह हेमोग्लोबिन और आक्सीजन के समान बार बार

चक्कर काटता है। इन दोनों मे अन्तर केवल यह है कि एक क्रिया मे तो पट्ठों में उनकी आवश्यकता की वस्तु पहुंचाई जाती है, किन्तु दूसरी क्रिया मे उनमें से कुछ वस्तु को निकाला जाता है।

श्वास लेने के समय कार्य करने वाले वास्तविक यन्त्र

किन्तु अब हम समझते है कि यह दोनो एक कार्य के ही दो भाग है। इस कार्य का नाम श्वास लेना है। यह सभी प्राणियों की पहिली आवश्यकता है।

हम अपने सीने को हिलाकर उसमें हवा भरने को श्वास लेना कहते है। किन्तु यह श्वास की आधी क्रिया का आरम्भ है। शेष आधी कारबन डायोक्साइड को निकाल देने से पूरी होती है। वास्तविक श्वास कार्य को शरीर के सभी जीवित सेल चलते हुए रक्त की सहायता से कर लेते है। रक्त आक्सीजन को लाता है और कारबन डायोक्साइड को ले जाता है।

किसी २ समय रक्त अत्यन्त धीरे २ चलता है और शरीर के किसी न किसी भाग मे तो बिल्कुल बन्द हो जाता है। इस का अभिप्राय केवल यही है कि वह भाग बीमार हो गया है और श्वास नहीं ले सकता। यदि शरीर के किसी भाग मे रक्त का जाना बिल्कुल बन्द हो जावे तो थोड़े समय के पश्चात् वह भाग मर जावेगा।

रक्त का तरल भाग और उसके चार

रक्त के तरल भाग का अभी तक भी वर्णन नहीं किया गया है। उसके विषय मे हम इतनी बात पढ चुके हैं कि उसमें

भिन्न २ प्रकार के क्षार घुले होते हैं। यद्यपि उन सबका अस्तित्व हमारे लिये आवश्यक है, किन्तु सोडियम कारबोनेट अथवा बाई-कारबोनेट उनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। रक्त में उसका परिणाम बहुत अधिक नहीं होता।

रक्त में सबसे अधिक परिमाण साधारण नमक अथवा सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) का होता है। यह नमक रक्त को नमकीन बनाता है और यही उसके नमकीन स्वाद को तोडता है। इस साधारण नमक के शरीर मे उपयोग को अब भी अच्छी तरह नहीं समझा जा सका है। उसके कुछ उपयोगी कार्यों को हम अवश्य जानते है। किन्तु संभवत: वह ऐसे भी बहुत से कार्य करता है, जिनको हम नही जानते। यह रक्त और शरीर के कुछ भागो को तरल बना देने में सहायता देता है। क्योंकि यदि रक्त और शरीर के लिये आवश्यक कुछ वस्तुओं मे से नमक को निकाल लिया जावे तो वह सख्त होजावें। रक्त के अन्दर का यह साधारण नमक भोजन के पचाने में भी बड़ा उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि जब यह पेट की दीवारों मे को होकर निकलता है तो पेट में अगणित्बद्ध-निहित कुछ सेल इसी साधारण नमक पर कार्य करते है। वह उस नमक मे से हाइड्रोक्लोरिक एसिड(Hydrochloric Acid)उत्पन्न करते हैं। इसको वह हमारे भोजन करते समय पेट में डाल देते हैं। पाचन क्रिया मे यह तेजाब बड़ा भारी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

किन्तु सम्भवत शरीर का सोडियम क्लोराइड इससे भी

अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि रक्त में अन्य अनेक क्षार भी हैं, किन्तु वैज्ञानिक लोग उनकी उपयोगिता के विषय में अभी तक भी कुछ निश्चय नहीं कर पाये हैं।

रक्त हानिप्रद वस्तुओं से शरीर की किस प्रकार रक्षा करता है

रक्त के अवशिष्ट तरल भाग में बड़े २ आश्चर्यजनक मिश्रण भरे पड़े हैं। उसकी विचित्रताओं का पता अभी ? लगा है।

हमारे लिये उपयोगी भोजन के प्रत्येक कण को रक्त ले जाता है। इसका यह अभिप्राय है कि उसमें अनेक प्रकार के मिश्रणों का अस्तित्व होना चाहिये। इसमें अनेक प्रकार की चिकनाइयां (Fats), शक्कर (Sugar) और विशेष प्रकार की कीमती भोजन सामग्री होती है।

सभी पदार्थ—जो तन्तुओं के द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं और जिनको शरीर में से निकालना आवश्यक होता है—रक्त के तरल भाग में जाकर मिल जाते हैं। यह नहीं समझना चाहिये कि पट्ठे केवल कारबन डायोक्साइड को ही बनाते हैं, वरन् वह उसके अतिरिक्त अन्य बीमियों पदार्थों को भी बनाते हैं। शरीर को इन सबसे छुड़ाने का कार्य भिन्न२ अङ्ग सदा करते रहते हैं। इनमें से फेफड़ों के अतिरिक्त गुर्दे (Kidneys) और खाल मुख्य हैं।

केवल इतना ही नहीं, रक्त के अन्दर ऐसे २ तरल पदार्थ भी हैं, जो सूक्ष्मजीवों (Microbes) के लिये विषैले हैं। हमारे सदा स्वस्थ बने रहने का यह भी एक कारण है। यद्यपि हम अपने श्वास के साथ सूक्ष्मजीवों को खैंचते हैं, यद्यपि अपने

भोजन मे भी हम इनमें से लाखों को खा जाते हैं और यद्यपि उनमें से बहुत से हमारे लिये हानिप्रद भी हो सकते हैं, किन्तु हमारा जीवन सदा सुखी बना रहता है। यह रक्षात्मक पदार्थ कुछ तो रक्त के सफेद सेलों द्वारा बनते हैं और कुछ रक्त में पट्ठों के द्वारा बनाये जाकर मिलाये जाते है। यह सबसे छोटे प्राणि से लेकर मनुष्य तक सभी प्राणियों के रक्त में होते हैं।

शरीर की ग्रन्थियां और उनका आश्चर्यजनक कार्य

इस प्रकार रक्त के अन्दर अनेक प्रकार के ऐसे विशेष मिश्रण होते हैं, जिनको शरीर अपने उपयोग के लिये बनाता है। विशेष रासायनिक पदार्थों को बनाने वाले शरीर के भागों को ग्रन्थिया (Glands) कहते हैं। अनेक ग्रन्थियों में नली लगी होती हैं। ग्रन्थियों का उत्पन्न किया हुआ पदार्थ इन नलों के द्वारा ही शरीर में जाता है। इन नलियों द्वारा ही भोजन करने के समय हमारे मुह में राल (Saliva) आ जाती है। किन्तु बहुत सी ग्रन्थियों में कोई नली नहीं होती। वह सारे शरीर के हित के लिये कुछ पदार्थों को बनाती हैं। जब इनमें रक्त जाता है तो वह उस उपयोगी पदार्थ को उनसे ले लेता है और उसको यथास्थान पहुंचा देता है। रक्त में कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो शरीर के भिन्न २ भागों में समाचार पहुंचाने का काम देते हैं।

वास्तव में रक्त की एक बूंद संसार में एक बड़ा भारी आश्चर्यजनक पदार्थ है।

हृदय के कार्य का महत्वपूर्ण आविष्कार

अब हमको हृदय और उसके रक्त को निकालने के ढंग पर विचार करना है। यह आविष्कार विलियम हारवे (William Harvey) नाम के एक अंगरेज ने किया था। इसी आविष्कार से वास्तव में प्रकृति के साम्राज्य का द्वार खुला था। यद्यपि अब उससे भी अधिक अनेक आविष्कार हो चुके हैं, किन्तु इस आविष्कार के बिना इन सब आविष्कारों का होना भी असम्भव था।

नौवां अध्याय

हृदय और उसका कार्य

सभी उच्च कोटि के प्राणियों में हृदय नाम का आश्चर्य-जनक पम्प होता है। यह भिन्न २ प्रकार के प्राणियों में भिन्न २ प्रकार का होता है। किन्तु सभी लाल रक्त वाले प्राणियों में इस की मुख्य २ बातें एक सी ही होती हैं।

हम जानते हैं कि हृदय जन्म भर धड़कता रहता है। यदि हम दौड़ते हैं या डर जाते हैं तो हम उसको ज़ोर ज़ोर से धड़कता हुआ पाते हैं। यदि हम किसी बकरी या पक्षि को पकड़ कर देखते हैं तो हमारी उंगलियों के नीचे उसका हृदय भी धड़-कता हुआ जान पड़ता है। यद्यपि रक्त और हृदय सहस्रों वर्ष से इसी प्रकार कार्य कर रहे थे और आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसका पर्याप्त वर्णन है, किन्तु ऐलोपैथिक ढंगपर प्रयोग किये जाने योग्य

इसके कार्य के असली रूप का पता सत्रहवीं शताब्दी के उक्त आविष्कार से ही लगा है। अब हमको यहां यह देखना है कि विलियम हारवे ने क्या अनुभव किया।

हारवे के समय के सूक्ष्मदर्शक यंत्र इतने शक्तिशाली नहीं थे कि उनके द्वारा उन छोटे २ नलों को देखा जा सकता जिनके द्वारा रक्त उन बड़े अंगों में जाता है, जो उसको हृदय में डालते अथवा उसको हृदय से लेते हैं। सन १६५७ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके चार वर्ष के पश्चात् एक इटली निवासी विद्वान ने—जिसके पास अधिक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र था—मेंढक के छोटे २ रक्तकोषों को देखा। हारवे की मृत्यु इनको बिना देखे ही होगई थी, यद्यपि उसके आविष्कार का प्रमाण अब मिल गया।

यह छोटे रक्तकोष इतने छोटे होते हैं कि वह प्रायः बाल के समान होते हैं, अतएव उनको कैपीलैरी (Capillary) अथवा केशिका कहते हैं। लैटिन भाषा में इस शब्द का अर्थ सिर का बाल होता है। हृदय से आने वाले बड़े रक्तावहकों को आर्टेरीज (Arteries) अथवा धमनियां कहा जाता है। जो उसमें रक्त को वापिस ले जाती हैं उनको शिराएं (Veins) कहा जाता है।

विलियम हारवे का आविष्कार किया हुआ रक्तावर्त (Circulation Of Blood) शरीर क्रिया की केन्द्रीय घटना है।

हृदय वास्तव में एक पम्प है। उसकी दीवारें पट्ठों (मांसपेशियों) की बनी होती हैं। यह शरीर की मांसपेशियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। हृदय रात दिन धड़कता

रहता है और तब तक धडकता रहेगा जब तक हम जियेंगे। यदि यह एक क्षण के लिये भी बन्द हो जावे तो हम तुरंत अशक्त होकर पृथ्वी पर जा पड़ें। अन्य प्राणियों के शरीरों की अपेक्षा इसका कार्य मनुष्य शरीर मे कठिन होता है। क्योंकि शरीर में रक्त की सबसे अधिक आवश्यकता मस्तिष्क को होती है। मनुष्य के सीधे खड़े होने के कारण उसका मस्तिष्क हृदय के सामने होने की अपेक्षा हृदय के ऊपर होता है। अतएव मनुष्य शरीरमें हृदय रक्त को ऊपर को फेंकता है। साथ ही, मनुष्य शरीर मे हृदय को इतनी प्रबलता से धडकना पड़ता है कि रक्त नीचे टांगों मे ऐसे वेग से जावे कि वह उनमें शिराओं के द्वारा फिर वापिस आ जावे। पैरों को उष्ण रक्त ही उष्ण रखता है, क्योंकि पैर अपने लिये बहुत कम उष्णता पैदा करते हैं।

हृदय शरीर के ऊपर के उस आधे भाग में होता है, जिसको हम छाती या सीना कहते है। छाती चारों ओर से पसली (Ribs) नाम की लम्बी २ तथा पतली २ हड्डियों से घिरी होती है। कुछ लोग सीने को शरीर का केवल अगला भाग ही समझते हैं, परन्तु वास्तव मे सीना अथवा छाती का सन्दूक हमारे धड के ऊपर का आधा भाग है। इसमें आगे का भाग और पीछे की पीठ दोनों ही सम्मिलित है। उसको भरने वाली वस्तुओं को स्मरण रखना बड़ा सुगम है। इसमें दोनों ओर एकर फुटफुस(फेफडा) और उन दोनों के बीच में हृदय होताहै।

हम प्रायः यह सोचा करते हैं कि हृदय शरीर के बायें

भाग मे होता है, किन्तु उसका एक तिहाई भाग दाहिनी ओर और दो-तिहाई भाग बाईं ओर होता है। यदि आप अपने हाथ को सीने पर रखना चाहते हो, तो दाहिने हाथ को रखना अच्छा होता है। तब अपनी अंगुलियों के किनारे से आप हृदय को धड़कते हुए मालूम कर सकते हो। दौड़ने, भयभीत होने अथवा क्रोध करने मे तो हृदय की धड़कन को विशेष रूप से अनुभव किया जा सकता है। इस बात का अनुभव होता है कि कोई वस्तु प्रति मिनट अस्सी बार हमारी अंगुलियों को आ आ कर छू जाती है। पूरे मनुष्य की गति सत्तर से अस्सी बार प्रति मिनट तक है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की गति कुछ मंद होती है। किन्तु बच्चे का हृदय और भी अधिक तेजी से धड़कता है। तुरंत के बच्चे का हृदय तो एक सेकिंड मे दो बार अथवा एक मिनट मे १२० बार धड़कता है। ज्वरावस्था मे भी धड़कन की गति बढ़ जाती है।

यदि हम हाथ की अंगुलियों को दूसरे हाथ की कलाई पर रखते हैं तो वहां भी कोई वस्तु गतिशील अथवा धड़कती हुई ज्ञात पड़ती है। इसको प्रायः नाड़ी (Pulse) कहते हैं।

यदि आपने अपने एक हाथ को हृदय पर रखा हुआ है तो आप अपने दूसरे हाथ के अंगूठे को हृदय वाले हाथ की कलाई पर रखो। आपको पता लगेगा कि गति दोनों की एक सी ही है। किन्तु आपको इस बात का भी अनुभव होगा कि नाड़ी की धड़कन हृदय की धड़कन के कुछ ही समय के पश्चात्

होती है । वास्तव में हृदय की धड़कन ही नाड़ी में गति उत्पन्न करती है। इसका यह अभिप्राय है कि हृदय बड़े कोषों आरटेरीज़ अथवा धमनियों (Arteries) के द्वारा रक्त की लहर को भेज रहा है। रक्त के चलने में कुछ देरी लगने के कारण ही हृदय की धड़कन से नाड़ी की धड़कन को कुछ अधिक देर लगती है।

हम केवल कलाई की नसों को ही नाड़ी (Pulse) कहते हैं, किन्तु हृदय धड़कन करते समय कई २ अन्य स्थानों में भी रक्त को भेजता है। इन सब स्थानों में नाड़ी को देखा जा सकता है। आप नाड़ी को देखते हो किन्तु संभवत उसके अर्थ को नहीं जानते। यदि आप अपने एक पैर के ऊपर दूसरे पैर को रखो तो उसमे भी आपको झटके अथवा धड़कनका पता लगेगा। यदि आप पैर की धड़कन के स्थान (गट्टे से कुछ ऊपर) और हाथ की कलाई—दोनों पर एक २ हाथ रखोगे तो आपको पता लगेगा कि गति उन दोनों की भी एक है। अन्तर केवल इतना है कि पैर में धड़कन हाथ के भी कुछ देर बाद पहुंचती है।

शिराएं (Veins)

अब हम को शिराओं पर विचार करना है। यह बड़े पात्रों अथवा धमनियों (आरटेरीज) के समान एक प्रकार की नली होती हैं। किन्तु यह उनसे बहुत पतली होती हैं। क्योंकि इनमें रक्त का वेग धमनियों के समान अधिक नहीं होता। शरीर के

ऊपर और खाल के नीचे बहुत सी शिराएं हैं और हम उनको भली प्रकार देख सकते हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है रक्त उनमे से होकर हृदय में जा रहा है। शिराओ (Veins) मे कोई नाडी (Pulse) नहीं होती। क्यो कि रक्त को उनमें पहुंचने के पूर्व उन छोटे २ नलो (Tubes) मे से निकलना पडता है, जो धमनियों (आरटेरीज) और शिराओं के बीच में आवागमन का साधन हैं। वहां पर नाडी की गति इतनी मंद हो जाती है कि उसको बड़ी कठिनता से अनुभव किया जा सकता है। वास्तव मे शिराओं में रक्त अत्यन्त समगति से चला करता है।

ऐसा समय आ सकता है जब हम में से किसी के साथ कोई दुर्घटना हो जावे, एक धमनी (Artery) अथवा शिरा (Vein) कट जावे और उसमें से रक्त निकलने लगे। रक्त अत्यंत मूल्यवान है। इसके निकलने की हानि को कोई नहीं सह सकता। अतएव हमको रक्त निकलते देखते ही उसको बन्द कर देना चाहिये। किसी को भी—जो वीर है, किसी के भी बहते हुए रक्त को बंद कर देना चाहिये। यहां इसके कुछ नियम दिये जाते हैं।

पहिले कार्य के लिये रक्त के संचार का ज्ञान होने की कोई आवश्यकता नहीं होती। वह अत्यंत साधारण है। कल्पना करो कि किसी के मुंह पर पत्थर फेंकने से चोट लग गई। उस समय आपका प्रथम कर्तव्य है चोट लगे हुए स्थान पर अंगुली

रख कर उस को दाब देना। अंगुली रख देने से खतरा कम हो जाता है और सोचने का समय मिल जाता है।

दूसरा नियम रक्तसंचार के ज्ञान पर निर्भर है। यहां एक उदाहरण दिया जाता है। पैर के ऊपर अनेक शिराएं होती हैं। कभी वह फैल कर फूल जातीं और निर्बल पड़ जाती हैं। उनमे सुगमता से चोट लगकर उनमे से रक्त निकल सकता है। यदि चिकित्सा का प्रबंध न हो तो ऐसे अवसर पर इतना रक्त निकल सकता है कि मृत्यु हो जाना भी सम्भव है। किन्तु उस स्थान पर अंगुली रखने के नियम को जानने वाला सदा ही रोगी को बचा सकता है।

हमको स्मरण रखना चाहिये कि टूटी हुई शिरा में से रक्त हृदय को जाता रहता है। अतएव हमको दबाव से काम लेना चाहिये। हमको रक्त बहने के स्थान के नीचे रूमाल बाध देना चाहिये।

शिराओं में इस प्रकार के कपाट (Valves) होते हैं कि वह अपने अन्दर आने वाले रक्त का बहना रोक सकते हैं। कभी २ यह परदे काम नहीं करते। अतएव उस समय चोट के स्थान से ऊपर और नीचे दोनों स्थानों मे बाधना चाहिये। इसके अतिरिक्त हम सीधे चलने वालों के शरीर के परदे ठीक ठीक नहीं लगे होते। वह अधिक उपयोगी उन्हीं प्राणियों के होते हैं जो अपने चारों हाथ पैरों से चलते हैं।

कभी २ यह होता है कि रक्त अधिक चमकीला होता है। इसका यह अभिप्राय है कि रक्त धमनी (Artery) से बह रहा

है। अतएव ऐसे स्थान पर अंगुली रखने के अतिरिक्त बंधन हृदय के अधिक से अधिक पास लगाना चाहिये। क्योंकि इनमें रक्त हृदय से आता है और वह हृदय को वापिस नहीं जाता।

रक्तवाहक संस्थान

यह पीछे बतलाया जा चुका है कि रक्त शरीर में नलियों (Tubes) के भीतर रहता है। रक्त की यह नलिया दो प्रकार की होती हैं--

एक प्रकार की नलिया मोटी होती है, इनकी दीवारे भी मोटी होती हैं। इनके भीतर शुद्ध रक्त रहता है। इन नलियों को धमनी (Artery) कहते है।

दूसरे प्रकार की नलिया पतली होती है। इनकी दीवारे भी पतली होती हैं। इनमे अशुद्ध रक्त रहता है। इनको शिराये (Veins) कहते है।

हृदय की रचना

यह पीछे बतलाया जा चुका है कि रक्त सदा बहता ही रहता है। यदि उसकी गति एक क्षण के लिये भी बन्द हो जावे तो प्राणि की तुरंत मृत्यु होजावे। रक्त परिचालक यन्त्रका ही नाम हृदय (Heart) है। यह अङ्ग अनैच्छिक मांस से बना हुआ होता है और दोनो फुप्फुसों (Lungs) के बीच मे वक्ष के भीतर रहता है। युवा मनुष्य का हृदय कोई ५॥ इंच लम्बा, ३॥ इंच चौड़ा और २॥ इंच मोटा होता है। उसका भार लगभग ३॥ छटांक होता है।

हृदय एक सौत्रिक तंतु (Fibrous Tissue) से निर्मित आवरण से ढका रहता है। यह आवरण एक थैली के समान होता है, जिसके भीतर हृदय रहता है। इसको हृदयकोष अथवा हृदावरण (Pericardium) कहते हैं। आवरण का भीतरी पृष्ठ बहुत चिकना और चमकदार होता है।

जिसको हम रक्तावर्त (Blood Circulation) कहते हैं वह दो प्रकार की गतियां हैं। हृदय मे दो वृत्त (Circle) आकर मिलते हैं। सदा चलने वाली धार तो वास्तव में एक ही है, किन्तु इस धार मे रक्त दो वृत्तों में से हो कर जाता है। एक वृत्त बड़ा होता है, दूसरा छोटा। जैसा कि हम जानते हैं रक्तावर्त फेफड़ों के अन्दर से होता है। आवर्त (Circulation) शरीर मे से भी होता है, जिसके उपयोग का हमको पता है। हृदय मे दो पिचकारियां (पम्प) हैं। एक पिचकारी बायीं ओर होती है और दूसरी दाहिनी ओर। बाईं ओर की पिचकारी में फुफ्फुसों मे से शुद्ध रक्त आता है, जिसको वह शरीर मे भेज देती है। दाहिनी ओर वाली में शरीर मे से अशुद्ध रक्त आता है, जिसको वह फेफडों मे भेज देती है।

हृदय-कोष्ठ की दोनों ओर की रचना एक ही सिद्धान्त पर होती है। यह कोष्ठ भीतर से एक खड़े(ऊर्द्ध्व)मांस के परदे द्वारा दाहिनी और बाईं दो कोठरियों में विभक्त है। इन दोनों कोठरियों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक कोठरी की दो मंजिलें हैं। ऊपर की मंजिल को ग्राहक कोष्ठ (Auricle)

और नीचे की मंजिल को क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) कहते हैं। जिस छत द्वारा ऊपर की मंजिल नीचे की मंजिल से जुदा होती है, वह पतले किवाड़ों से बनी होती है। यह किवाड़ सौत्रिक तन्तु से बने हुए और इस प्रकार लगे हुए हैं कि नीचे की ओर को तो खुलते हैं और ऊपर की ओर को नहीं खुलते। दाहिनी ओर को तीन तिकोनिये किवाड़ होते हैं और बाई ओर को केवल दो होते हैं।

इस प्रकार हृदय में चार कोठरियां (Chambers) होती हैं—

१—दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Right Auricle),

२—दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Right Ventricle),

३—बायां ग्राहक कोष्ठ (Left Auricle) और

४—बायां क्षेपक कोष्ठ (Left Ventricle)

किवाड़ों के नीचे की ओर को खुलने के कारण रक्त ऊपर से नीचे को अर्थात् ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में तो जा सकता है नीचे से ऊपर को नहीं जा सकता। किवाड़ों से बने हुए इस यंत्र का नाम कपाट (Valve) है।

ग्राहक कोष्ठ रक्त को लेकर उसको नीचे के क्षेपक कोष्ठ में भेज देते हैं, जो अधिक बड़ा और मजबूत होता है। ग्राहक कोष्ठों की दीवारें क्षेपक कोष्ठों की दीवारों से पतली होती हैं, क्यों कि उनका काम कठिन नहीं होता। उनको तो कपाटों में से बहुत थोड़ी दूर पर ही रक्त को भेजना पड़ता है।

क्षेपक कोष्ठ ऊपर के छोटे २ ग्राहक कोष्ठों की अपेक्षा

फुफ्फुस, हृदय और रक्तवाहनी धमनियां तथा शिराएं
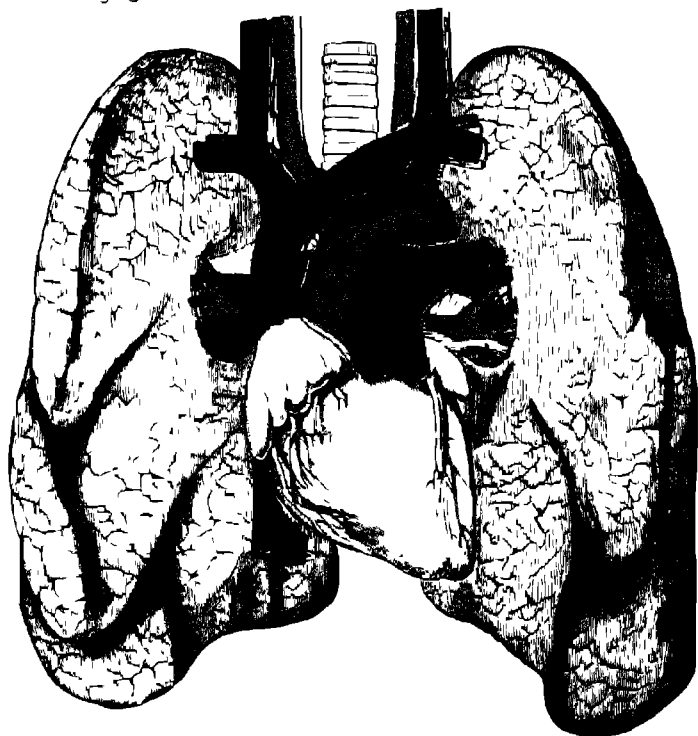
इस चित्र में दोनों ओर दोनों फुफ्फुस (Lungs) और रक्तवाहनियों सहित हृदय को दिखलाया गया है। इसमें धमनियां लाल और शिराएं नीली हैं

(पृ० ११७)

फुप्फुसीया धमनी (Pulmonary Artery) है। जहां इस धमनी का आरम्भ होता है, वहां उसके भीतर तीन अर्द्धचन्द्राकार किवाड़ों से निर्मित एक कपाट लगा रहता है। इस कपाट का प्रयोजन यह है कि रक्त कोष्ठ में से धमनी में तो जा सके परन्तु उलटा न लौट सके।

बाएं क्षेपक कोष्ठ में चार नलियां लगी रहती हैं। इनमें से दो दाहिने और दो बाए फुप्फुस से आती हैं। यह फुप्फुसीया शिराएं (Pulmonary Veins) हैं। जहां यह हृदय से जुड़ी रहती हैं वहा उनके भीतर कोई कपाट नहीं होता।

बाएं क्षेपक कोष्ठ के पिछले भाग से एक बड़ी मोटी नली निकलती है, यह बृहत् धमनी अथवा महाधमनी (Aorta) है। फुप्फुसीया धमनी को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियां हैं, वह सब बृहत् धमनी से निकलती हैं। जिस स्थान पर यह महाधमनी क्षेपक कोष्ठ से निकलती है, उस स्थान पर उसके भीतर तीन अर्द्धचन्द्राकार किवाड़ों से निर्मित एक कपाट होता है। इस कपाट के कारण रक्त कोष्ठ से महाधमनी में जा सकता है, महाधमनी से कोष्ठ में नहीं आ सकता।

हृदय के कपाट

इस प्रकार हृदय में चार कपाट होते हैं—

१. दाहिने ग्राहक और क्षेपक कोष्ठ के बीच में,
२. बांए ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच मे,
३. फुप्फुसीया धमनी में,

४. बृहत् धमनी में,

कपाटों के कारण रक्त दाहिने क्षेपक कोष्ठ से दाहिने ग्राहक कोष्ठ में और फुफ्फुसीया धमनी से दाहिने क्षेपक कोष्ठ में लौट कर नहीं जा सकता। इसी प्रकार बाएं क्षेपक कोष्ठ से बांए ग्राहक कोष्ठ में और महाधमनी से बांए क्षेपक कोष्ठ में लौट कर नहीं जा सकता।

यह अवश्य है कि कभी २ कपाटों के ख़राब हो जाने से रक्त उलटा लौटने लगता है।

हृदय का कार्य

हृदय कभी एक सा नहीं रहता। वह कभी सिकुड़ता और कभी फैलता है। सिकुड़ने और फैलने से उसकी धारण शक्ति घटती और बढ़ती रहती है।

रक्त शरीर के सब अंगो को आवश्यक वस्तुएं देकर दो महाशिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठ मे वापिस आता है। ज्योंही यह कोठरी रक्त से भरती है, तो वह सिकुड़ने लगती है। सिकुड़ने से उसकी धारण शक्ति (समाई) कम हो जाती है। इसलिये रक्त उसमे से निकल कर क्षेपक कोष्ठ में चला जाता है। जब रक्त क्षेपक कोष्ठ में पहुचने लगता है तो कपाट ऊपर को उठकर बंद होने लगते हैं और जब यह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तो वह अच्छी तरह से बन्द हो जाते हैं। कपाटों के बन्द हो जाने से रक्त ग्राहक कोष्ठ में लौट कर नहीं जा सकता।

दाहिने ग्राहक कोष्ठ से फुफ्फुसीया धमनी निकलती है, रक्त उसमें चला जाता है और उसकी शाखाओं द्वारा फुफ्फुसों में पहुंचता है।

फुफ्फुस रक्त को शुद्ध करने वाले अंग हैं। इन अंगों में शुद्ध होकर रक्त चार नलियों द्वारा (दो शिराएं दाहिने फुफ्फुस से आती हैं और दो बाएं से) बाएं ग्राहक कोष्ठ में लौट आता है। भर जाने पर यह कोष्ठ सिकुडने लगता है और रक्त उसमें से निकल कर बाएं क्षेपक कोष्ठ मे प्रवेश करता है। रक्त के इस कोष्ठ में प्रवेश करने पर कपाट (किवाड) ऊपर उठकर बंद होने लगते हैं और जब कोष्ठ सिकुड़ता है तो वह पूरी तरह से बंद हो जाते हैं, जिसके कारण रक्त लौटकर ग्राहक कोष्ठ में नहीं जा सकता।

क्षेपक कोष्ठ के सिकुड़ने से रक्त महाधमनी में जाता है। महाधमनी से बहुत सी शाखाए फूटती है, जिनके द्वारा रक्त समस्त शरीर में पहुचता है।

हृदय के कोष्ठ रक्तको आगे को ढकेल कर फैलने लगते हैं और शीघ्र ही पूर्व दशा को प्राप्त कर लेते हैं। उसके एक क्षण के पश्चात् ही वह रक्त से भर कर फिर सिकुड़ने लगते हैं और इस रक्त को आगे को ढकेल कर फिर फैलने लगते हैं। जन्म भर यह सिकुड़ने और फैलने का सिलसिला लगा ही रहता है। हृदय का कोई कोष्ठ पल भर के लिये भी कभी खाली नहीं रहता। दोनों ग्राहक कोष्ठ एक साथ ही रक्त से भरते और फिर एक साथ ही सिकुड़ते
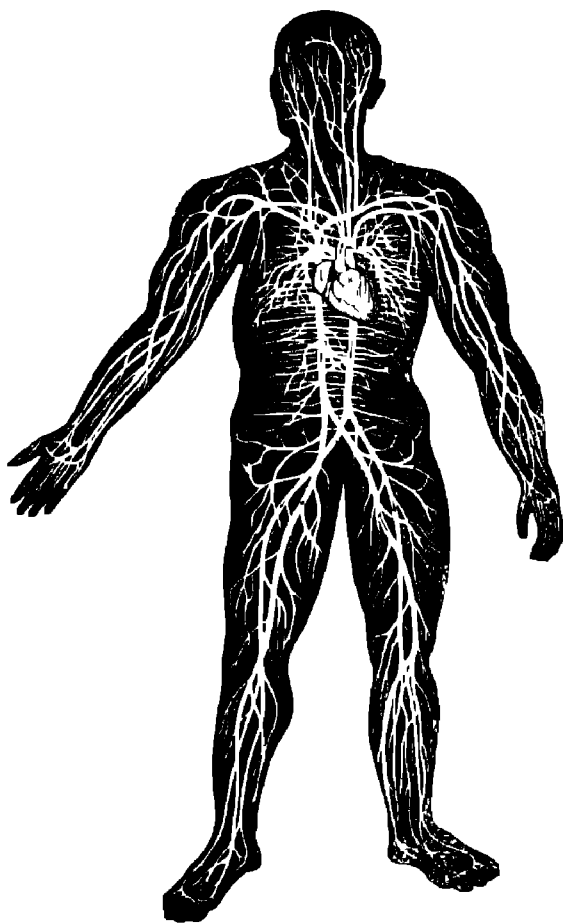
शरीर की रक्तवाहिनी शिराएँ

(पृ० ११९)

है। इसी प्रकार दोनों क्षेपक कोष्ठ भी एक साथ ही भरते और सिकुड़ते हैं। कभी २ रोगों के कारण एक कोष्ठ दूसरे से पहिले सिकुड़ने लगता है।

कोष्ठों के सिकुड़ने को आकुन्चन या संकोच (Contraction) कहते हैं। फैलकर पूर्व दशा को प्राप्त होने को प्रसार (Expansion) कहते हैं। प्रथम ग्राहक कोष्ठों का आकुन्चन होता है, फिर क्षेपक कोष्ठों का, इसके पश्चात् समस्त हृदय का प्रसार होता है और वह क्षण भर के लिये विश्राम करता है। फिर सिकुड़ता और फैलता है। एक आकुन्चन और एक प्रसार मे लगभग $\frac{१}{७२}$ मिनट समय लगता है, अथवा यह कहना चाहिये कि हृदय एक मिनट में ७२ बार रक्त ग्रहण करता है और इतने ही बार उसको आगे को ढकेलता है।

हृदय का शब्द

हृदय में नाड़ियों की बहुत सी सेलें होती हैं। हृदय की धड़कन का कारण यही होती हैं। वह अत्यन्त ग्राहक होती हैं। उन पर प्रत्येक बात का प्रभाव अत्यन्त शीघ्र होता है। उन पर उष्णता, सुरासारों, धूम्रपान के कारण रक्त में प्रवेश करने वाले गैसों और अन्य अनेक विषों का प्रभाव बड़ी शीघ्र होता है।

हृदय नियमानुसार सिकुड़ता और फैलता रहता है। फैलने पर उसमें रक्त का प्रवेश होता है। सिकुड़ने पर रक्त उस मे से बाहर निकलता है। जब हृदय संकोच करता है तो वह

रक्त को बड़े वेग से धमनियों में ढकेलता है। संकोच और प्रसार से एक शब्द उत्पन्न होता है जो लूब-डप, लूब-डप, लूब–डप, जैसा सुनाई दिया करता है। यह शब्द छाती पर कई स्थानों में सुनाई दिया करता है। लूब और डप के बीच में थोड़ा सा अन्तर रहता है। परन्तु डप और लूब के बीच में इससे अधिक अन्तर होता है। लूब को हृदय का प्रथम शब्द तथा डप को द्वितीय शब्द कहते हैं। हृदय के रोगों में यह शब्द और प्रकार के सुनाई देने लगते हैं।

हृदय के धड़कने की संख्या

प्रौढ मनुष्य का हृदय एक मिनट में ७०—७५ बार धड़कता है। बाल्यावस्था में हृदय जल्दी २ धड़कता है। जन्म-काल मे धड़कने की संख्या प्रति मिनट १४० होती है। ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता जाता है यह संख्या घटती जाती है। स्वस्थबालकों मे सोते समय या जब वह आराम से चुपचाप बैठे हों हृदय के धड़कने की संख्या इस प्रकार होती है·—

६ से १२ मास तक	१०५ से ११५ बार प्रति मिनट
२ से ६ वर्ष तक	९० से १०५ ,, ,, ,,
७ से १० वर्ष ,,	८० से ९० ,, ,, ,,
११ से १४ वर्ष ,,	७५ से ८५ ,, ,, ,,

वृद्धावस्था में संख्या पहिले से कुछ अधिक हो जाती है।

भय, अति हर्ष, अधिक उष्णता (ज्वर), अनेक प्रकार

रक्तावर्त (Blood Circulation)
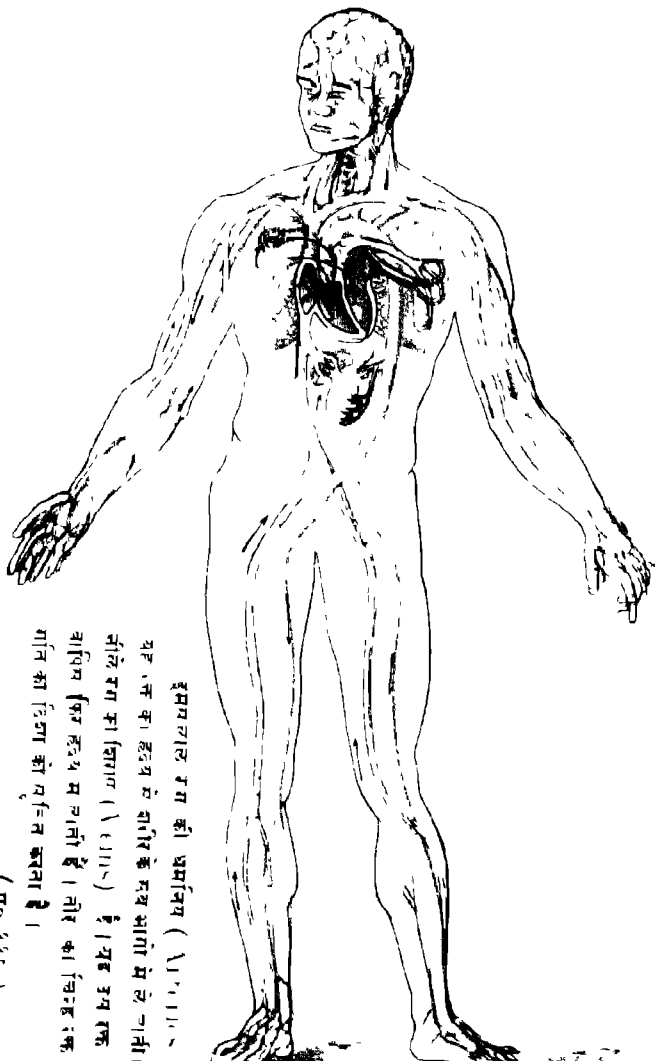
इसमें लाल रंग की धमनियां (Arteries
यह रक्त को हृदय से शरीर के सब भागों में ले जाती।
नीले रंग की शिराएं (Veins) हैं। यह उस रक्त
वापिस फिर हृदय में लाती हैं। तीर का चिन्ह रक्त
गति की दिशा को सूचित करता है।

(पृ० ११६)

की चित्तवृत्तियों और विकारों, मैथुन की इच्छा, क्रोध, भोजन करने, जल पीने तथा व्यायाम करने से हृदय की गति अधिक हो जाती है। बहुत सी औषधियां भी ऐसा कर सकती हैं।

क्लेश, निर्बलता और भूखे रहने (उपवास) से हृदय की चाल मन्द हो जाती है। कई एक औषधियों से भी हृदय की चाल घट जाती है। कभी २ एक दम किसी भयंकर दृश्य को देखने अथवा अकस्मात् हर्ष या शोकजनक समाचार को सुनने से भी हृदय का धड़कना एक दम बन्द हो जाता है, जिससे मनुष्य की तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

रक्तावर्त

यह बतला दिया गया है कि किस प्रकार अशुद्ध रक्त हृदयमें दाहिनी ओर आकर धमनी के द्वारा फुप्फुसों में जाता है और वहां से शुद्ध बन कर चार शिराओं के द्वारा फिर हृदय के बाए भाग में आता है और वहां से महाधमनी में आकर सम्पूर्ण शरीर की यात्रा पर रवाना हो जाता है। यह हृदय से लगा कर सिर तक और दूसरी ओर पैरों के नाखूनों तक जाकर फिर वापिस आ जाता है। किन्तु इस समय यह स्याहीमायल और अशुद्ध हो जाता है। यह अशुद्ध रक्त सीधे फुप्फुसों में न जाकर पहिले हृदय में जाता है और बड़े वृत्त को पूरा करता है।

फुप्फुसों मे रक्त शुद्ध किया जाता है। खाल और वृक्कों

(गुरदों) में भी इसका बहुतसा व्यर्थ अंश छन जाता है। शरीर में यह ताजे भोजन की सामग्री से मिलता है। अतएव दाहिने ग्राहक कोष्ठ में आते समय यह अपनी उस अवस्था से कुछ अच्छा हो जाता है जिस अवस्था मे इसने बाएं प्रेषक कोष्ठ को छोड़ा था। इसमें खराबी केवल अपने बुरे गैसो के कारण हो जाती है और उन्हीं को साफ करने के लिये इसको फुफ्फुसों में भेजा जाता है।

रक्तावर्त का नियंत्रण मनुष्य किस प्रकार करता है

मनुष्य शरीर मे हृदय द्वारा रक्तावर्त के सारे कार्य का नियन्त्रण मस्तिष्क करता है। मस्तिष्ककी परीक्षा करने पर पता लगता है कि हृदय के समान उसमें भी दो प्रकार की नाड़िया है। एक प्रकार की नाड़ियां रक्त के पात्रों को संकुचित होने की आज्ञा का संदेश पहुंचाती और दूसरी प्रकार की नाड़िया फैलने की आज्ञा के संदेश को पहुचाती हैं।

संवादों के आने जाने का तांता शरीर भर से लगा रहता है। कहीं से मस्तिष्क में अधिक रक्त की माग आती है और कहीं से कम की। सर्दी के समय बाहिर जाते समय हमारी नाक को अपने को अधिक उष्ण रखने के लिये अधिक रक्त की आवश्य-कता होती है। वह मस्तिष्क को संवाद भेजती है और नाक के सभी रक्तपात्रों को ढीला होने की आज्ञा मिल जाती है; जिससे नाक में बहुत सा रक्त पहुंच कर उसको उष्ण कर देता है। किसी किसी समय संदेश बिल्कुल भिन्न प्रकार का होता है। उदाहरणार्थ,

लज्जा करने के संदेश से मस्तिष्क के द्वारा धमनियों को चेहरे और गर्दन में अधिक रक्त भेजने की आज्ञा दी जाती है।

यद्यपि शरीर भी एक यंत्र है, किन्तु वह जीवित यंत्र है और इसका शासन एक जीवात्मा की आधीनता में है।

जब हम विचार करते हैं तो मस्तिष्क को अधिक रक्त की आवश्यकता होती है। बचपन से ही पढ़ना आरंभ करने वाले अथवा अत्यंत अधिक मस्तिष्क का काम करने वालों के पतला दुबला होने का कारण यही है कि उनके रक्त का अधिक भाग मस्तिष्क में आने से शेष शरीर को उतना रक्त नहीं मिल पाता।

रक्तावर्त में गैसों का मिश्रण

इस विषय में एक बात और स्मरण रखने योग्य है। रक्त बंद नलियों में घूमता है। किन्तु यदि उन नलियों में कहीं भी कुछ भी प्रवेश न कर सके तो रक्तावर्त का लाभ शरीर को कुछ भी नहीं होगा। यह पहिले ही बतलाया जा चुका है कि इस संचार में रक्त में अन्य गैस मिलते रहते हैं। धमनियों और शिराओं में यद्यपि यह मिश्रण का कार्य नहीं हो सकता, किन्तु छोटी नलियां अथवा केशिकाएं (Capillaries) बहुत पतले २ सेलों की एक ही तह की बनी होती हैं। गैस उनके अन्दर से आ और जा सकते हैं।

छोटी नलियों में जाने वाला शरीर का कचरा

फेफड़ों में तो यह होता है, किन्तु शेष सारे शरीर में

नाड़ीचक्र से केशिकाओं के द्वारा कर्बन द्विओषित अन्दर आता रहता है। सब प्रकार के भोजन का रस केशिकाओं की दीवारों में से नाड़ीचक्र में जीवन के लिये प्रवेश करता रहता है। सब प्रकार की विषैली वस्तुएं नाड़ीचक्र में से केशिकाओं में आती रहती हैं और यह सब वस्तुए शिराओं के द्वारा हृदय में ले जाई जाती हैं। किन्तु रक्त के वृक्कों (Kidneys) में जाने पर इसके प्रतिकूल क्रिया होती है, क्यों कि वृक्कों में सहस्रों केशिकाएं इस प्रकार लगी होती हैं कि उनकी छोटी नलियों मे विशेष प्रकार के सेल लगे होते हैं, जिनमें रक्त में से इस सब व्यर्थ की सामग्री को निकाल कर उसको साफ करने की शक्ति होती है।

दसवां अध्याय

जीवनक्रिया और फुफ्फुस

अब थोड़ा श्वास क्रिया के विषय में वर्णन किया जाता है। वास्तविक श्वास क्रिया अथवा जलने की क्रिया जीवनमूल (Protoplasm) नामकी जीवन की रचना-सामग्री मे होती है। किन्तु उसके लिये आवश्यक ओषजन को फुफ्फुस ग्रहण करते हैं। फुफ्फुस मास पेशियों के जीवित फर्श पर छाती में होते हैं। यह श्वास लेते समय ऊपर और नीचे उठते रहते हैं। वायु नाक में घुसती है, अथवा जब हम गलती से अथवा शीघ्रता से श्वास लेते हैं तो वह मुह में प्रवेश करती है और वहां उष्ण होती है, छनती है और नम होती है।

इसके पश्चात यह स्वरकोष (Voice box) में से होती हुई उस नलिका में पहुंचती है जो फुफ्फुसों में जा मिलती है। इस

प्रकार यह वायु के सेलों के पास जाकर उस रक्त के पास आ जाती है, जिसको हृदय उससे मिलने के लिये फुफ्फुसों में भेजता है। श्वास क्रिया से हम हवा को चूसते रहते है। हमको फुफ्फुसों में अधिक वायु कभी नहीं भरनी चाहिये। श्वास यंत्रों को अपने स्वभाव के अनुसार सुगमता से कार्य करने देना चाहिये।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि सभी प्राणि श्वास लेते हैं। फेफड़ों में कुछ गैसों को पहुंचाने के लिये और कुछ को निकालने के लिये ही हम तथा अन्य सब प्राणि श्वास लेते रहते हैं। हम यह भी पढ़ चुके हैं कि वास्तविक श्वास क्रिया फेफड़ों में नहीं होती, वरन् शरीर के नाड़ीचक्र में होती है। वहीं जलने का कार्य होता रहता है।

इस बात का पता लगा है कि साधारण जलने और प्राणियों के श्वास लेने के ढंग में बड़ा भारी अन्तर है। सामान्य जलने में जलने वाली वस्तु कोयले आदि में से ओषजन बाहिर आ जाता है, किन्तु जीवित वस्तुएं इस प्रकार नहीं जलतीं। वह श्वास के द्वारा लाये हुए ओषजन को ग्रहण कर लेती हैं। उसके द्वारा अनेक कार्य करती हैं और अपने अन्दर से ओषजन मिले हुए कर्बन को, कर्बन द्विओषित बनाने के लिये और उद्‌जन (Hydrogen) मिले हुए ओषजन को जल बनाने के लिये निकालती हैं।

हम देख चुके हैं कि हृदय छाती के बीच में होता है और उसके दोनों ओर एक २ फुफ्फुस (Lung) होता है।

अब हम को देखना है कि छाती का फर्श किस वस्तु से बनता है। क्योंकि यह फर्श जीवित होता है और फुप्फुस इस फर्श की सहायता के बिना कुछ कार्य नहीं कर सकते।

यह फर्श शरीर के मध्य भाग में फैला हुआ मांसपेशी का चपटा टुकड़ा होता है। वास्तव में यह धड़ के ऊपर और नीचे आधे २ भागों के बीच में पूरे का पूरा पर्दा है। परन्तु इस पर्दे में से शिराओं, धमनियों और नाड़ियों को जाने आने के लिये भी छेद बने हुए हैं। इस पर्दे का नाम वक्ष-उदर मध्यस्थ पेशी (Diaphragm) है।

यद्यपि इस वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी को चौड़ा बतलाया गया है, किन्तु वास्तव में यह गुम्बद के आकार की होती है। यह मांस पेशी होने के कारण एक जीवित फर्श होती है। संकुचित होने पर यह नीचे को दबती है। अत उस समय यह और चपटी हो जाती है। इसका अभिप्राय है कि इसके नीचे की प्रत्येक वस्तु दबती है। हमारे सांस लेते समय यह पेशी अवश्य कार्य करती है। इसी कारण श्वास लेते समय हमारे शरीर का नीचे का भाग भी ऊपर नीचे हुआ करता है। इसका कारण यही है कि जो वक्ष का फर्श है वही शरीर के नीचे के भाग की छत है। वह नीचे को जाकर और चपटा हो जाता है, जिससे पेट आगे को बढ़ता है।

फुप्फुसों की रचना

इस वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी (Diaphragm) के ऊपर

हृदय और दो फुप्फुस रक्खे रहते हैं । फुप्फुसों का जो भाग वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी के ऊपर रखा रहता है उसे तली या अधोभाग (Base) कहते हैं । फुप्फुसो में यह भाग सबसे मोटा और सबसे चौड़ा होता है। यदि फुप्फुसों को ऊपर को देखा जावे तो पता लगता है कि वह क्रमश अधिकाधिक तग और छोटे होते जाते हैं। अन्त में उनका सबसे ऊपर का सिरा बिल्कुल पतला और नोकीला हो जाता है। यह भाग गले की हसली की अस्थि (अक्षकास्थि) के पास तक पहुंच कर उसके पीछे रहता है। इस भाग को फुप्फुसों का शिखर कहते हैं। इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि फुप्फुसो का सबसे बड़ा और भारी भाग नीचे होता है। क्योंकि श्वास लेने के दो ढंग होते हैं---पहिले ढंग मे फुप्फुसों का ऊपर का भाग वायु से भर जाता है और दूसरे ढंग में नीचे का भाग वायु से भर जाता है। श्वास लेने का अच्छा ढंग यह है कि फुप्फुसों के नीचे के भाग में वायु भर जावे। इन दोनों फुप्फुसों में दाहिना फुप्फुस बाए की अपेक्षा अधिक चौड़ा और भारी होता है। फुप्फुस कुछ २ गावदुमी या शंखाकृति का होता है। अब हमको श्वास-प्रक्रिया पर विचार करके देखना है कि वायु जाती कहा है।

श्वास मार्ग

बाहिर की वायु के फुप्फुसों तक पहुंचने के लिये एक निश्चित श्वास नली होती है। बुद्धिमान् मनुष्य को सदा इसी नली से श्वास लेना चाहिये। इस नली का मुख नासिका में है ।

कभी कभी अनेक पशुओं के समान हम मुख से श्वास लेते हैं। किन्तु यह बात न भूलनी चाहिये कि मुख की नली भोजन करने के लिये है और नाक की नली श्वास लेने के लिये। प्रत्येक मार्ग में अपने अपने उद्देश्य के अनुसार सुविधाओं का प्रबन्ध है। मुख में भोजन चबानेके लिये दांत तथा स्वाद लेने के दूसरे साधनों का प्रबन्ध है। नाक में वायु को छानने के लिये छोटे २ बाल होते हैं। उसमें गंध लेने के साधनों का भी पूरा प्रबन्ध है। इसमें एक ऐसी आश्चर्य जनक झिल्ली भी है, जिसको रक्त से इसलिये भरा जा सकता है कि वायु फुप्फुसों में जाने के पूर्व उष्ण हो जावे।

फुप्फुसों में वायु के प्रवेश करते समय छनने का ढंग

प्रबन्ध केवल इतना ही नहीं है। यदि हम वायु में से श्वास के मार्ग को देखें तो हमको पता चलता है कि वह मार्ग सीधा और खुला न होकर असाधारण रूप से घूमघुमवाल का और चक्करदार है। यह एक बड़ी सुविधा है। पहिली बात तो यह है कि यह वायु को उस तल के ऊपर से जाने को विवश करती है, जिसके नीचे उष्ण रक्त है। दूसरी बात यह है कि यदि उसमें पर्याप्त जल-वाष्प (Water Vapour) न हो तो वह उसमें यहां मिल सकता है। यह बड़ी अच्छी बात है, क्योंकि पूर्णतया रूक्ष वायु फुप्फुसों में रूक्षता लाकर उनको अस्वस्थ कर देती है। इस मार्ग के इतना चक्करदार होने का एक बड़ा लाभ यह है कि वायु बड़े अच्छे ढंग से छन जाती है।

इस प्रकार छनने से वायु में के मैले का बड़ा भारी परिमाण और उसमें के सूक्ष्मजीव (Microbes) मार्ग में ही रुक जाते हैं। अतएव फुफ्फुसों में केवल उष्ण और नम वायु ही नहीं जाती, वरन अत्यन्त शुद्ध भी जाती है। इस बात का प्रयोग करके अनेक बार देखा गया है कि इस प्रकार छन कर फुफ्फुसों में जाने वाली वायु में कोई सूक्ष्मजीव नहीं होते, चाहे नासिका में प्रवेश करते समय उसमें कितने ही जीव क्यों न हों। अतएव इस बात की सब किसी को सावधानी रखनी चाहिये कि श्वास नाक से ही लिया जावे।

नासिका द्वारा श्वास लेना जीवनमें बड़ा महत्व पूर्ण कार्य है

मुख के द्वारा वायु का मार्ग नासिका की अपेक्षा सुगम है। क्योंकि मुख उसको छानने का कष्ट नहीं करता। अतएव यदि मुख को खुला रखा जावे तो यह निश्चय है कि श्वास लेते समय वायु उसी में से जावेगी। अतएव मुख को सदा बन्द रखना चाहिये। मुख को तभी खोलना चाहिये जब किसी वस्तु को खाना हो अथवा कुछ कहना हो।

नासिका द्वारा श्वास लेने के अतिरिक्त स्वास्थ्य के लिये कुछ और भी महत्वपूर्ण पाठ हैं।

दम घुटने के दौरों का कारण

नासिका से छन कर वायु मुख के पिछले भाग हलक़ में जाती है, और वहां से स्वर कोष (Voice box) में

जाती है। स्वरयन्त्र का अगला भाग हमारी गर्दन में होता है। इस स्वरयन्त्र के दोनों ओर दुहरा नाडी चक्र फैला होता है, उनके बीच में एक छोटी सी दरार होती है। जब २ हम श्वास द्वारा वायु को खींचते हैं मस्तिष्क कुछ वातरज्जुओं (Nerves) के द्वारा उन मांसपेशियों में आज्ञा भेजता है, जो उन छोटी २ स्वररज्जुओं (Vocal cords) पर शासन करता है। वह एक दूसरे से बहुत पृथक् होती हुई हिलती हैं, जिससे वायु बिना शब्द किये उनके अन्दर से जा सकती है।

दम घुटने के दौरे को सभी कोई जानते हैं। उस समय कोई वस्तु इस श्वास प्रबन्ध के मार्ग में स्वरयन्त्र और स्वररज्जुओं के बीच में आ जाती है, जिससे वह श्वास के समय पृथक् न हो कर वायु को बड़ी कठिनता से निकलने देती है। इस क्रिया में नस कांपती है, जिससे शब्द होता है।

यद्यपि दम घुटने के दौरे में हम बड़े भारी दुर्भाग्य की कल्पना किया करते हैं, किन्तु इसमें भय करने की कोई बात नहीं है, क्योंकि जिस समय मस्तिष्क को पता लगता है कि रक्त में ओषजन (Oxygen) बहुत कम पहुंच रहा है तो वह तुरन्त ही स्वररज्जुओं को ढीला होने की आज्ञा देता है। उस समय एक क्षण में ही हम सुगमता से लम्बा और गहरा श्वास लेने लगते हैं। किन्तु जब कोई निगली हुई वस्तु हलक में अटक जाती है तो

वहां नसों का वश नहीं चलता । इस प्रकार दम घुटना भयानक होता है ।

दम घुटने के दौरे से किस प्रकार प्राण रक्षा की जासकती है

ऐसे दौरे के समय साहस के साथ हलक में अंगुली डाल देनी चाहिये । इससे वहां लगी अथवा अटकी हुई वस्तु दूर हो जावेगी ।

कभी २ भोजन के कण स्वरयंत्र मे चिपक जाते हैं, जिससे बडे जोर का धसका लग जाता है । उस समय फुफ्फुसों से वायु की सी धौंकनी चलती है, जिससे मार्ग का विघ्न दूर हो जाता है ।

हलक में यह बात बड़ी विचित्र होती है कि उसमें दो मार्ग होते हैं—एक श्वास के लिए, दूसरा भोजन के लिये । किन्तु भोजन का मार्ग श्वास की नली के पीछे होता है । इसका यह अभिप्राय है कि हमारे द्वारा खाई हुई प्रत्येक वस्तु को श्वास मार्ग को कूद कर पीछे के मार्ग में जाना पड़ता है । किन्तु यह बात बडी सुगम है । क्योंकि निगलने का कार्य बीसियों नाड़ियों और मास पेशियों के संतुलन (Balance) पर निर्भर है यदि हम भोजन करते समय हंसने अथवा बात करने लगें तो यह संतुलन ठीक नहीं रहता । उस समय प्रत्येक वस्तु सीधे मार्ग में न जाकर कुछ न कुछ गलत मार्ग से चली जाती है, जिससे धसका लग जाता है ।

फुप्फुसों में जाने वाले श्वास की मार्ग रूप दो नलियां

स्वर यंत्र अथवा स्वरकोष्ठ से निकल कर वायु रूप श्वास वायुप्रणालियों (Wind pipes) में आता है। यह एक लम्बी और गोल नली होती है, जिसको गर्दन में टटोलकर देखा जा सकता है। स्वरयंत्र के ठीक नीचे टेंटवा होता है। यह गोल होता है और उसको छूकर देखा जा सकता है। इसके नीचे वायुप्रणालिया होती हैं, जो फुप्फुसो तक जाती हैं। टेंटवे अंगुली से टटोलने पर पता चलता है कि यह गोल नली अनेक छोटे २ छल्लों से बनी होती है। कुछ दूर तक जाने के पश्चात् इस वायुप्रणालिका के दो भाग हो जाते हैं। एक भाग दाहिने फुप्फुस मे जाता है और दूसरा बाएं में। इनमें से फिर प्रत्येक में फुप्फुसों की आवश्यकता के अनुसार वृक्ष के समान शाखाएं फूटती रहती हैं। इन सब नलियों को श्वास प्रणालिका (Bronchi) कहते हैं। जब यह नली बीमार हो जाती है तो हम उसको फेफड़े अथवा कण्ठ की सूजन अथवा ब्रानचाइटिस (Bronchitis) रोग कहते हैं। इन प्रणालियों के फिर भी भाग प्रभाग होते जाते हैं। यहां तक कि वह बहुत छोटे हो जाते हैं। अन्त में वह असंख्य छोटी २ कलियों (Buds) के रूप में समाप्त हो जाते हैं। उनको वायु के सेल (Air cells) कहते हैं।

यह वास्तव में पूर्वोक्त प्रकार के सेल नहीं होते। वरन् यह बहुत छोटे २ खोखले भाग होते हैं। इनकी दीवारें बड़ी सुन्दर होती हैं, जिनमें सेल लगे होते हैं। इन खोखले भागों में वायु भरी होती है। नवजात शिशु अपने प्रथम श्वास से जब

फुप्फुसों को भरता है तो वह वायु के उन सेलों में कुछ निश्चित कार्य करता है। यह वायु के सेल अत्यन्त छोटे होते हैं। उनके नीचे रक्त से भरी हुई अनेक प्रणालिया होती हैं, जिन में अशुद्ध रक्त भरा होता है। इसका यह अभिप्राय है कि गैसों को सेलों की दो तहों में से जाना पड़ता है। एक वह तह जो वायु के सेलों की दीवार में नली होती है और दूसरी वह तह जिससे उन प्रणालियों की दीवारें बनती हैं। उनको शुद्ध करने के लिये उनके अन्दर ओषजन गैस जाया करता है। अधिक अशुद्ध रक्त वायु के सेलों में से होता हुआ श्वास के द्वारा शुद्ध होने को फेफड़ों में आता है।

फुप्फुस और उनका दो सहस्र वर्ग फुट का तल

फुप्फुसों की रचना उनके उद्देश्य से बड़ी सुन्दर होती है। शरीर शास्त्र के विद्वानों ने पता लगाया है कि यदि फुप्फुसों के अन्दर के रक्तमार्ग को खोल कर के एक रेखा में फैलाया जावे तो वह दो सहस्र वर्ग फुट स्थान को घेर लेगा। यदि फुप्फुस केवल बड़ी भारी खोखली कोठरी ही होते तो वह केवल दो या तीन वर्ग फुट स्थान को ही घेरते। किन्तु उनके स्पंज के समान होने के कारण वह बहुत अधिक स्थान में फैल सकते हैं। इस प्रकार रक्त के शुद्ध होने के लिये उसको पर्याप्त स्थान मिल जाता है।

नवजात बालक के फुप्फुस का रंग गुलाबी होता है। किन्तु यदि उसमें रक्त बिल्कुल न हो तो वह पूर्णतया श्वेत होता है।

ध्रुव प्रदेश के पक्षियों के फुप्फुस का रंग यदि उसके श्वास में कोयले की धूल या धुआं कभी न गया हो तो--बिल्कुल नवजात शिशु के फुप्फुस के समान गुलाबी होता है। कोयले की खान में काम करने वाले कुली के फुफ्फुस का रंग बिल्कुल काला होता है। क्यों कि उसको कोयले की धूल के बड़े भारी परिमाण को सूंघना पड़ता है। प्रौढ़ मनुष्य के फुप्फुस का रंग कुछ नीलापन लिये हुए भूरा सा--कुछ २ स्लेट के से रंग जैसा—होता है। जन्म से पहिले (गर्भ में) फुप्फुस का रंग गहरा लाल होता है।

गंदगी को बाहिर फेंकने की फुप्फुसों की शक्ति

फुप्फुसों का यह प्रधान कर्तव्य होता है कि वह अपने को बाहिर की गंदगी से शुद्ध रखें। वायु के मार्ग खुले होने चाहियें; उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। यदि हम वायु प्रणाली और श्वास प्रणालियों में लगे हुए सेलों को सूक्ष्मदर्शक यंत्र से वहां तक देखें जहा वह वायु के सेलों पर समाप्त होते हैं तो हम को पता लगता है कि उनमें एक विशेष प्रकार के सेल क्रमबद्ध लगे हुए हैं। इन सेलों में आंख की अक्षिपक्ष्मों (Eye-lashes) के समान बहुत छोटी २ वस्तुएं लगी होती हैं।

यह सब मैली वस्तुएं ऊपर की ओर को लगी होती हैं। ऊपर को लगी होने के कारण यह श्वास अथवा खांसी के साथ छूटकर फुप्फुसोंसे निकल जाती हैं। किन्तु यदि कोयलेकी खानके कुली के समान हम को प्रतिदिन ही मैली वायु में श्वास लेना पड़ेतो श्वास के इतने अधिक छनने तथा सफाई का प्रबन्ध होने पर भी

फुप्फुसों में मैल जमा होकर वह काले पड़ही जाते हैं ।

फुप्फुसों की नाड़ियां लचकीली होती हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र में यह नाड़ीचक्र पीला दिखलाई देता है । यह इंठे हुए से छोटे २ सौत्रिक तन्तुओं का बना होता है। इसके लचकीलेपनके कारण फुप्फुसों को श्वास लेने में बड़ी सुगमता होती है और हमारे शरीर पर श्वासलेने के कारण कुछ परिश्रम नहीं पड़ता।

श्वास प्रक्रिया के भेद

पूर्ण स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में पन्द्रह सोलह बार श्वास लेत है। स्त्री संभवत एक मिनट मे अठारह बार श्वास लेती है। बच्चे इससे भी अधिक बार श्वास लेते हैं। श्वास क्रिया के दो भाग होते हैं- एक बाहिर की वायु को अन्दर लेना, दूसरा अन्दर की वायु को बाहिर निकालना। प्रथम भाग को अन्त श्वसन अथवा पूरक(Inspiration) और दूसरे को बहिःश्वसन अथवा रेचक(Expiration) कहते हैं। अब इनकी कार्य शैली पर विचार किया जाता है।

श्वास लेने की मासपेशिया असंख्य होती हैं। वैसे तो सभी मास पेशियों को अनिवार्य रूप से श्वास लेना पड़ता है। किन्तु साधारण श्वास क्रिया में हम केवल वक्ष-उदर-उदरमध्यस्थ पेशी (Diapragm) और पर्शुकाओं अथवा पसलियों (Ribs) के अन्दर की मास पेशियों से ही काम लेते हैं। श्वास क्रिया में वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करती है।

जब हम श्वास लेते हैं तो मस्तिष्क द्वारा वक्ष-उदर-मध्यस्थ-पेशी को एक आज्ञा भेजी जाती है, जिससे वह उसी

समय चपटी हो जाती है। यह चूसने की पिचकारी के समान कार्य करती है। इससे वक्ष के अन्दर का स्थान बढ़ जाता है और बाहिर की वायु चूसी जाकर अन्दर आ जाती है।

उसी समय मस्तिष्क एक आज्ञा स्वरयंत्र में भेजता है, जिससे स्वर रज्जुओं के वायु के जाने के लिये मार्ग बन जाता है। इस प्रकार पूरक अथवा अन्तःश्वसन मांसपेशियों का कार्य है। हमारे जीवन के लिये इन पेशियों का कार्य करते रहना अत्यन्त आवश्यक है। यह हो सकता है कि कोई पुरुष बिस्तर पर पड़ा पड़ा ही बिना हिले डुले भी जीवित बना रहे। उसकी गर्दन, हाथों, पैरों और धड़की पेशियां भी वर्षों तक शांत पड़ी रह सकती हैं। किन्तु यदि वह जीवित है तो उसकी कम से कम दो मांस पेशियां (Muscles) अवश्य कार्य करेंगी। वह पेशियां हृदय और वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी हैं।

रेचक अथवा बहिःश्वसन (Expiration) क्रिया इससे बिल्कुल भिन्न होती है। खांसने, छींकने, बोलने, गाने अथवा वायु के मार्ग में अन्य प्रतिबन्ध के अतिरिक्त रेचक अथवा बहिःश्वसन क्रिया में बिल्कुल ही प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसमें किन्हीं भी मांसपेशियों को काम करना नहीं पड़ता। इस क्रिया में केवल फुप्फुस और पेट पीछे हट जाते हैं।

मस्तिष्क का जीवन का केन्द्र रूप छोटा सा बिन्दु

इस सम्पूर्ण आश्चर्यजनक प्रणाली का शासन मस्तिष्क के उस छोटे से बिन्दु द्वारा किया जाता है, जिसको श्वास केन्द्र

(Breathing Centre) कहते हैं। यह बिन्दु हृदय और रक्त नलियों के केन्द्र के बिल्कुल पास है। इस केन्द्र के आविष्कार के समय इसको जीवन बिन्दु (Vital Point) नाम दिया गया था। क्योंकि एक प्रकार से वास्तव में ही यह जीवन का केन्द्र है। यदि यह किसी प्रकार नष्ट होजावे तो तत्क्षण मृत्यु हो जावे। मद्यसार जैसे विष इसको निष्क्रिय कर देते हैं।

आज हम जानते हैं कि यह आश्चर्यजनक केन्द्र किस प्रकार कार्य करता है और किस प्रकार यह हमारी श्वास क्रिया को सुधार सकता है। इसकी रचना करने वाले वातरज्जुओं के सेल रक्त के द्वारा पुष्ट होते हैं। वह अपने पास पहुंचने वाले रक्त को बड़ी तत्परता से ग्रहण कर लेते हैं। रक्त मे अत्यन्त अधिक कर्बन द्विओषित के अस्तित्व के समय वह विशेष रूप से ग्राहक हो जाते हैं। कर्बन द्विओषित से अधिक उनको कोई वस्तु नहीं भड़काती। फालतू कर्बन द्विओषित होने पर वह श्वास लेने वाली मांस पेशियों को आज्ञा देती हैं कि वह अधिक गहरा और शीघ्र २ श्वास लेकर इन विषों को निकालदे।

कभी कभी इन वातरज्जुओं के सेलों (Nerve cells) को पानी के अन्दर डुबकी मार कर विश्राम भी दे दिया जाता है। डुबकी मारने से पूर्व कई बार अत्यंत गहरा और लम्बा श्वास लिया जाता है। इससे रक्त का बहुत सा कर्बन द्विओषित निकल कर पानी मे अधिक देर तक रुकने की क्षमता आ जाती है।

फुफ्फुसों में पुरानी वायु का स्थान नयी वायु लेती है।

व्यायाम अथवा भोजन के पश्चात हम अधिक कर्बन

द्विओषित निकालते हैं। यदि भोजन में स्निग्ध पदार्थ (घृत आदि) और शक्कर अधिक हो तब तो कर्बन द्विओषित और भी अधिक निकलता है, क्योंकि यह वस्तुएं बड़ी शीघ्रतासे जल जाती हैं। रात्रि के समय हम कम श्वास लेते हैं। युवकों की अपेक्षा वृद्ध पुरुष भी कम श्वास लेते हैं। यह बात विशेष रूप से स्मरण रखने की है कि प्रकाश के सन्मुख हम अधिक जोर से और अधिक गहरे २ श्वास लेते हैं। शरद ऋतु में अपने को उष्ण बनाये रखने के लिये हमको अधिक रक्त की आवश्यकता पड़ती है। अतएव उन दिनों में हम अधिक जोर से श्वास लेते हैं।

भिन्न २ प्राणियों में भी श्वास के वेग को ध्यानपूर्वक देखना कम रुचिकर न होगा। अधिक जोर से गाने वाले सभी छोटे २ पक्षि अधिक श्वास लेते हैं। पक्षि वास्तव में उड़ते और गाते समय अत्यन्त अधिक कार्य करते हैं। उनका कार्य मनुष्य से भी अधिक हो जाता है।

हम लगातार ओषजन मिलते रहने पर ही जीवित रह सकते हैं।

श्वास क्रिया तभी होती है जब बाहिर की वायु में ओषजन शरीर के रक्त से अधिक हो और कर्बन द्विओषित कम हो। वायु के कर्बन द्विओषित के परिमाण को नापना सम्भव है। यह भी बतलाया जा सकता है कि वायुमें कर्बन द्विओषित का परिमाण कितना अधिक होने पर हमारे लिये हानिप्रद हो सकता है। यदि हम अधिक कर्बन द्विओषित की वायु में श्वास लें तो हमारे रक्त का कर्बन द्विओषित या तो

बिल्कुल न निकलेगा अथवा बहुत कम निकलेगा, जिससे हमारी मृत्यु होजाना निश्चित है।

इटली में एक गुफा का नाम कुत्तों की गुफा है। उसमें कर्बन द्विओषित बहुत अधिक है। कर्बन द्विओषित वायु से भारी होता है। अतएव उस गुफामें यह तहके रूपमें फर्श पर पड़ा रहता है। उस गुफा में प्रवेश करने वाला मनुष्य कर्बन द्विओषित से ऊपर होने के कारण श्वास ले सकता है। किन्तु अपनी नाक कर्बन द्विओषित के पास तक नीचे होने के कारण कुत्ता उसमें जाते ही अचेत हो जाता है।

वैज्ञानिक संसार में वह समय भी आने वाला है जब दूकानों, कारखानों और मिस्त्रीघरों की वायु के भेदों के निश्चित नियम बना दिये जावेंगे। इस बातके नियम पहले ही बने हुए हैं कि प्रत्येक मनुष्यको अमुक संख्या फुट के आकाशकी आवश्यकता होती है। किन्तु यदि उस सख्या के फुटों में भी वायु नियमित रूप से बदलती रहे तो वहां कितने ही घन फुट भी व्यर्थ हैं।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने कमरे की खिडकियां खुली रख कर सोना चाहिये। जिन कमरों में खिड़कियां न हों, अथवा खिड़कियां खुल न सकती हों उनमे न सोना चाहिये।

ग्यारहवां अध्याय

मनुष्य शरीर की त्वचा

हमारे शरीर की त्वचा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह रेशम, रबड़, कागज़ अथवा वस्त्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सबसे अधिक विशेष बात यह है कि यह जीवित है। यह केवल हमारे शरीर की चादर ही नहीं है, वरन् यह हमारे मस्तिष्क को बाह्यसंसार की सब सूचनाएं देने की साधन भी है।

हम जानते हैं कि पर्याप्त प्रकाश न मिलने से हमारी वृद्धि रुक जाती है और हमारा रक्त पीला पड़ जाता है। हम यह भी जानते हैं कि हम प्रकाश में अधिक उत्तमता से श्वास लेते हैं। एक निश्चित समय पर अंधकारकी अपेक्षा प्रकाशमें प्राणि ओषजन अधिक लेते हैं और कर्बन द्विओषित अधिक छोड़ते हैं।

यह सब मस्तिष्क पर प्रकाश का प्रभाव होने के कारण होता है। किन्तु इसका प्रभाव सीधा नहीं पडता। क्योंकि स्वयं मस्तिष्क भी अन्धकार मे रहता है। यह इस कारण होता है कि मस्तिष्क पर जाने वाली कुछ निश्चित नाडियों पर ही प्रकाश का प्रभाव पड़ता है।

यह नाड़ियां प्राय: आंख और त्वचा की होती हैं। यदि किसी प्राणी की आंखों पर पट्टी बांध दी जावे तो वह कभी भी अच्छी तरह श्वास नहीं ले सकता, किन्तु मस्तिष्क को सहायता देने के उत्तरदायी केवल नेत्र ही नही है। त्वचा का भी उससे बहुत कुछ सम्बन्ध है। यद्यपि हम त्वचा से न देख कर आंख से देखते हैं किन्तु देखनेमें त्वचा भी बड़ी भारी सहायता देती है। अत एव अपने मुख और हाथों को प्रकाश में खोले रखना अच्छा होता है। किसी २ समय रुग्णावस्था मे सूर्य किरणों का स्नान बडा लाभदायक सिद्ध होता है। यदि कपडे उतार कर शरीर की सारी त्वचा को धूप लगाई जावे तो खुली वायु मे धूप शरीर को बड़ा अच्छा स्नान करा देती है। आजकल की पाश्चात्य शिक्षा और फैशन के कारण शरीर को अधिकाधिक ढकते जाना बिल्कुल अनुपयोगी है, क्योंकि इससे प्रकाश हमारी त्वचा पर अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकता।

हम अपने शरीर को जितनी ही धूप और खुली हवा देंगे उतना ही हमारा स्वास्थ्य उत्तम बनेगा।

त्वचा का लचकीलापन

हमारी त्वचा बिल्कुल लचकीली है। यदि यह न होता तो

हम अपने हाथ पैर आदि अङ्गों को नहीं हिला डुला सकते थे। प्रत्येक बार गति करते समय हमारी त्वचा फैल जाती है और अंग सिकुड़ते समय वह भी सिकुड़ जाती है। आप अपने शरीर की त्वचा को कहीं से भी पकड़ कर उठाओ वह फिर अपने पूर्व स्थान पर आ जावेगी।

हमारी आकृति से हमारे आचरण का क्यों पता लग जाता है।

संसार की सबसे अधिक लचकीली वस्तु की शक्ति की भी सीमा है। त्वचा के विषय में भी यही नियम काम करता है। हम देखते है कि अवस्था बीत जाने पर हमारे चेहरे की त्वचा मे उसी प्रकार रेखाए और झुरिया बढने लगती है, जिस प्रकार यह चलती रहता है। यह प्राय हमारे विचारो पर निभर है। बुद्धिमान प्रसन्न व्यक्तियो की त्वचा मे उनके प्रसन्न दिखलाई देने के एक और प्रकार के चिन्ह पड जाते है। सदा विचारशील के चहरे पर अन्य प्रकार के चिन्ह होते हैं। तथा सदा दुखी और चिन्तित के चेहरे पर उसके मनोभाव पृथक् प्रगट होते है। मन के भाव सदा ही चेहरे की त्वचा पर अंकित हो जाते हैं।

अधिक अवस्था हो जाने पर त्वचा का लचकीलापन भी कम होता जाता है। प्राय: यह कमोर बहुत पतली भी हो जाती है।

त्वचा के गुण

त्वचा की बनावट बड़ी सुन्दर होती है। इसकी उपमा मखमल और आलूबुखारे की छाल आदि से दी जाती है। यदि

त्वचा की अच्छी तरह रक्षा की जावे और उसको बुरी ऋतु में न खोला जावे तो उससे किसी वस्तु की उपमा नहीं दी जा सकती। त्वचा हमको सदा अच्छी लगती है। बच्चे के गाल पर अंगुली लगाना सब कोई चाहते हैं। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह जल से खराब नहीं होती। किन्तु यह विशेषता इसमें बाहिर की ओर से ही है। कुछ विशेष प्रक्रिया द्वारा त्वचा रक्त में से जल ले लेती है और उसको निकाल भी देती है। किन्तु त्वचा के अन्दर पानी प्रवेश नहीं कर सकता।

शरीर के लिये त्वचा का सबसे प्रथम उपयोग यह है कि वह अपने अन्दर के सब नाड़ीचक्र तथा मांस आदि के ऊपर चादर के रूप में पड़कर उसको कूड़े करकट से रक्षा करती है। यदि त्वचा का बाहिर का भाग भी जीवित होता तो उसको भी मैल मिट्टी से बड़ी भारी हानि उठानी पड़ती। किन्तु त्वचा के विषय में यह बात आश्चर्यजनक है कि जीवित वस्तु का भाग होते हुए भी वह बाहिर से जीवित नहीं है।

त्वचा का बाह्य भाग उसी उपादान से बना हुआ है, जिस से नाखून, घोड़ों के खुर अथवा सींग बने होते हैं। प्रत्येक बार के मलने में हमारी त्वचा का बाह्य भाग मैल के रूप में उतर जाता है। त्वचा का गंभीर अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसको बाहिर तथा अन्दर की दो तहों में विभाजित किया जा सकता है।

त्वचा के बाह्य भाग को उपचर्म (Epidermis) कहते

है। किन्तु वास्तविक त्वचा अंदर की होती है। इसको चर्म (Dermis) कहते हैं। इसमें कुछ चुभाया जाने पर रक्त निकलने लगता है कोई टक्कर लगने पर इसमें चोट लग जाती है।

उपचर्म

यह त्वचा का वह भाग है जो उबलते हुए द्रवों अथवा अनेक औषधियों के लगाने से चर्म से पृथक् हो जाता है। इसके और चर्म के बीच में तरल के एकत्रित होने से फफोला या छाला पड़ जाता है। इस उपचर्म में प्रतिक्षण परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक बार मलने में उसका कुछ न कुछ अंश उतर जाता है।

उपचर्म कई प्रकार की सेलों से बना हुआ है। यह सेलें एक दूसरे के ऊपर कई तहों में बिछी होती हैं। ऊपर की सेलें नीचे की सेलों की अपेक्षा बहुत पतली और चपटी होती हैं। नीचे की तहों की सेलें मोटी और मुलायम होती हैं। ऊपर की सख्त होती हैं। अफ्रीका आदि की श्यामवर्ण जातियों तथा चीन की पीले वर्ण की जातियों के उपचर्म के नीचे वाली मोटी सेलों के भीतर एक रंग रहता है। गोरी जातियों में कोई रंग नहीं होता।

प्रतिदिन उपचर्म की ऊपर की सेलें घिस घिस कर गिरती रहती हैं और नीचे की सेलें उनकी जगह आ जाती हैं।

उपचर्म की मोटाई सब स्थानों में एक सी नहीं होती। हथेलियों, पाँव के तलुओं अथवा पीठ की उपचर्म और स्थानों की अपेक्षा अधिक मोटी होती है।

उपचर्म में कोई नाड़ी न होने से अनुभव नहीं होता।

ऊसमें बिना रक्त बहाए सुई को आर पार किया जा सकता है। अंगुली के किनारे पर तो सुगमता से सुई को आर पार किया जा सकता है, क्यों कि वहां का उपचर्म अधिक मोटा होता है। नाखून इसी उपचर्म का अंग होते हैं।

उपचर्म किस प्रकार बनता है

उपचर्म और चर्म दोनों ही सेलों से बने होते हैं। चर्म के सेल जीवित होते हैं। किसी विशेष अंश तक बढने पर वह विभक्त होकर दो हो जाते हैं और नये सेल बन जाते हैं। इसी प्रकार सदा होता रहता है। यह प्रक्रिया चर्म की नीचे की तहों में होती रहती है। इस प्रकार पहिले बने हुए सेल ऊपर आते रहते हैं और उनके नीचे नये बनते रहते हैं। कुछ समय के पश्चात पुराने सेल मर जाते हैं। वह पतले चपटे सींगों के जैसे वस्तुतत्व होकर उपचर्म बन जाते हैं। वह चर्म तथा समस्त शरीर की रक्षा करते हैं।

उन ऊपर के सेलों में बाहिर का मैल भी एकत्रित हो जाता है। किन्तु वह सेल मरे जाकर स्वयं प्रथक् हो जाते हैं और उनका स्थान दूसरे सेल ले लेते हैं। इस प्रकार शरीर प्रतिदिन शुद्ध और स्वच्छ बना रहता है।

चर्म

त्वचा का यह भाग उपचर्म से अधिक मोटा और मज-बूत होता है। पैर के तलुओं, हथेलियों, कमर तथा पीठ का चर्म शरीर में सब से मोटा होता है। पलकों, अंडकोष तथा शिश्न का चर्म अत्यन्त पतला होता है।

चर्म मे सेलों के अतिरिक्त सौत्रिक तंतु (Fibrous Tissue), रक्त या लसीका-वाहनियां (Lymphatic) अथवा वातसूत्र (Nerve Fibre) भी होते है। उसमें दो प्रकार की ग्रन्थियां और बालों की जड़ें रहती है। चर्म स्थिति-स्थापक (Elastic) होता है। त्वचा मे ग्रन्थियां भी होती है।

त्वचा की ग्रन्थियां

शरीर के जिस भाग मे कोई विशेष तरल पदार्थ बनता है उसे ग्रन्थि (Gland) कहते हैं। पेट की ग्रन्थियां पाचन रस (Digestive Juice) बनाती है। चर्म के अन्दर बहुत सी ग्रन्थियां होती हैं। उन ग्रन्थियों के विशेष उद्देश्य होते हैं। यह पसीने की ग्रन्थियां (घर्म-ग्रन्थियां) कहलाती हैं। यह लच्छेदार लम्बी नली होती है। उनका सिरा उपचर्म से मिला होता है। त्वचा मे दो प्रकार की ग्रन्थियां रहती हैं—

(१) वह जिनमे तेल जैसी चिकनी वस्तु बनती है।

(२) वह जो पसीना बनाती है।

तेल की ग्रन्थियां

यह नन्हीं-नन्ही थैलियां है, जिनकी दीवारों की सेलें एक चिकनाईदार वस्तु बनाती है। प्रत्येक थैली से एक छोटी सी नली निकलती है, जिसमे से होकर यह वस्तु बालों की जड़ों में पहुंच कर बालों को चिकना और चमकदार बनाती है। त्वचा भी इसी वस्तु के कारण चिकनी सी रहती है। टटरी और चेहरे की

त्वचा मे और स्थानों की अपेक्षा अधिक ग्रन्थियां रहती हैं। यह ग्रन्थियां हथेली और पैर के तलुओं मे नहीं पाई जातीं।

साबुन से स्नान करने से यह चिकनी वस्तु धुल जाती है। उस समय हमारे बाल और त्वचा रूखे से तथा पहले से कम चमकदार मालूम होने लगते हैं। चेहरे—विशेषकर नाक के पास—की त्वचा कभी-कभी अधिक चिकनी मालूम होने लगती है। इसका कारण वहां इस वस्तु का अधिक बनना है।

पसीने या घर्म की ग्रन्थियां (Sweat Glands)

यह चर्म के सबसे नीचे के भाग मे रहती है। प्रत्येक ग्रन्थि वास्तव मे एक नली है, जिसका नीचे का सिरा बन्द होता है। इस नली का ऊपर का भाग सीधा होता है, नीचे का भाग सर्प के समान कुण्डल मारे रहता है। नली की दीवारें सेलों से बनती है, जो एक पतली झिल्ली पर रक्खी रहती है। इस झिल्ली के बाहिर सहारे के लिये कुछ सौत्रिक तंतु रहते है। मुड़े हुए भाग मे सेलो और सौत्रिक तंतु की तह के बीच मे कुछ स्वाधीन मास भी होता है। ग्रन्थि के चारो ओर केशिका (Capillary) का जाल रहता है। ग्रन्थि की सेलें चुए हुए लसीका (Lymph) मे से कुछ जल, यूरिया (Urea) अथवा कई प्रकार के लवण ले लेती है। यह तरल—जिसमे सब पदार्थ घुले रहते है—पसीना या घर्म (Sweat) कहलाता है। उपचर्म मे बहुत से छोटे २ छिद्र होते है, यह पसीने की नलियों के मुख हैं। पसीना नलियों मे बहता हुआ इन छिद्रों द्वारा शरीर से बाहिर निकलता है।

कक्षतल अथवा बगल (Armpit axilla) और वंक्षण अथवा जंघासे (Groin) की त्वचा मे यह ग्रन्थियां बड़ी २ होती हैं। हथेलियों और पैर के तलुओं मे इनकी संख्या और स्थानों की अपेक्षा अधिक होती है। अनुमान है कि हथेली की एक वर्ग इंच त्वचा मे कोई २८०० पसीने के छिद्र होते हैं। सम्पूर्ण शरीर मे २४ लाख के लगभग ग्रन्थियां होती हैं। हमारे बिना जाने भी हमारे शरीर से प्रति दिन २५ औंस पसीना निकल जाता है।

पसीना, घर्म अथवा स्वेद

पसीने की परीक्षा करने पर पता लगा है कि उसमे ९९ प्रतिशत जल होता है। शेष १ प्रतिशत मे कई वस्तुएं होती हैं, जिनमे साधारण नमक भी होता है।

पसीने की प्रतिक्रिया अम्ल होती है और उसमे एक विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है। उसका गुरुत्व १००५ होता है और स्वाद नमकीन। ग्रीष्म ऋतु मे और व्यायाम करने से पसीना अधिक निकलता है। शीत ऋतु मे और कम परिश्रम करने से पसीना कम आता है। जब मूत्र अधिक आता है तब पसीना कम बनता है; और जब मूत्र कम आता है तो पसीना अधिक निकलता है।

स्वस्थ दशा मे पसीने मे दुर्गन्ध नहीं आती। उसमे कोई विशेष प्रकार का रंग भी नहीं होता। कई औषधियों के सेवन से पसीने की मात्रा अधिक या कम हो जाती है। अधिक जल पीने से भी अधिक पसीना आता है।

हमारे शरीर का तापमान भिन्न-भिन्न ऋतुओं में किस प्रकार ठीक बना रहता है ?

सभी प्राणियों के स्वास्थ्य के लिये एक विशेष प्रकार के ताप-मान का होना अत्यन्त आवश्यक है।

इस तापमान का नियंत्रण भी पसीना ही करता है। अत्यंत गर्मी पड़ने पर हमारा ठंडे बना रहना आवश्यक है। शरीर की उष्णता किसी न किसी प्रकार कम होनी ही चाहिये। इसी कारण उस समय हमको पसीना आता है। पसीने के साथ हमारे शरीर की उष्णता का एक बड़ा भाग निकल जाता है। स्नान करने का भी वही प्रभाव होता है।

भयंकर गर्मी पड़ने पर कुत्ता ज़बान बाहिर निकाल कर हाँकने लगता है। उसके शरीर पर हमारे समान पसीने की ग्रन्थियां न होने से वह कष्ट अनुभव करता है और अपने फुप्फुसों से पानी निकालता रहता है।

पसीने के केन्द्र का शासन

ठंड के दिनों में वायु में काफी नर्मी होने से हमको पसीना लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पसीने के केन्द्रों के शासन का भी कोई न कोई ढंग अवश्य होगा। पसीने का केन्द्र मस्तिष्क के नीचे के भाग में है। वहां पसीने की लाखों ग्रन्थियों में नाड़ियों द्वारा आज्ञा जाती है। जब रक्त अत्यन्त उष्ण हो जाता है तो मस्तिष्क का उष्ण रक्त वाला पसीने का केन्द्र आज्ञा देता है और पसीने की ग्रन्थियां अत्यन्त

शीघ्रता से कार्य करने लगती हैं। पसीने के केन्द्र में और भी कई प्रकार से गड़बड़ी होती है। उदाहरणार्थ, अत्यन्त ठंड होने पर भी भय से पसीना आ सकता है।

किन्तु किसी २ समय पसीने का केन्द्र विषाक्त हो जाता है और ठीक २ कार्य नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, ज्वर के समय रक्त अत्यन्त उष्ण हो जाता है। उस समय पसीने की बड़ी भारी आवश्यकता होती है। किन्तु तो भी उस समय त्वचा उष्ण और रूक्ष बनी रहती है। बहुत सी ओषधियां पसीना लाती हैं और बहुत सी उसको रोकती है।

त्वचा के कार्य—स्पर्शनेन्द्रिय

अब त्वचा के कार्यों के विषय मे थोड़ा विचार किया जाता है। इसके द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है। वास्तव में यह स्पर्शनेन्द्रिय है। इसके द्वारा हल्के, भारी, रूखे, चिकने, कड़े, नरम, शीत और ऊष्ण का ज्ञान होता है। अब हमको यह देखना है कि त्वचा से स्पर्श का ज्ञान किस प्रकार होता है।

जब हम वास्तविक त्वचा—विशेष कर हाथ और पैर की अंगुलियों के सिरों—की परीक्षा करते हैं तो हम उनकी रचना एक विशेष प्रकार की पाते हैं। उनमे नाड़ियां (Nerves) आकर मिलती हैं और उनके अंदर नाड़ियों के किनारे फैले होते हैं। जहां कहीं यह स्पर्शन अंग अधिक होते हैं वहीं हमारी स्पर्शन शक्ति अधिक होती है। बहुत से स्पर्शन अंग ओठों और जिह्वा की फुंगल पर भी होते हैं।

ललाट और हाथ की हथेली की त्वचा को बोझा कम मालूम हुआ करता है।

शीत और ऊष्णता के अनुभव करने के लिये दूसरी नाड़ियां होती हैं। यदि आप एक शीशे की पेंसिल को अपने गाल पर फिरावें तो आपको वह कहीं से कम ठंडी और कहीं पर अधिक ठंडी लगेगी। इसका कारण यही है कि त्वचा की शीत-ऊष्ण को ग्रहण करने की शक्ति सभी स्थान पर एक सी नहीं होती।

त्वचा में अनेक प्रकार के छोटे बिन्दु होते हैं। भार के बिन्दु हलके या भारीपन को तुरंत बतला देते हैं। शीत-बिन्दु शीत को शीघ्रता से बतलाते हैं। उनको उष्णता का बिल्कुल पता नहीं लगता। उष्ण बिन्दु केवल उष्णता को ही ग्रहण करते हैं, उनको शीत का पता नहीं लग सकता।

त्वचा के अन्दर ही दुःख को ग्रहण करने की शक्ति भी है। त्वचा के भिन्न २ भाग दुःख को ग्रहण करते हैं। दुःख को ग्रहण करने में त्वचा की शक्ति शरीर के अंदर के भागों से भी अधिक होती है। दुःख अनुभव करने वाली नाड़ियां प्रथक होती हैं।

अतएव त्वचा भार, तापमान और दुःख तीन बातों को बतलाने वाली इन्द्रिय है।

नख

हमारी त्वचा में से बाल और नख भी निकलते हैं। हाथ और पैर की प्रत्येक अंगुली के अन्तिम पोरवे में एक नख या नाखून रहता है। नख अपने नीचे के चर्म से खूब चिपटा होता है। उसके

पिछले तथा इधर उधर के किनारे त्वचा मे घुसे रहते है। नख का अधिक भाग स्वच्छ होता है। उनमे से त्वचा के रंग का रक्त चमका करता है। पिछला थोडा-सा भाग स्वच्छ और श्वेत होता है। जब किसी कारणवश शरीर में रक्त कम हो जाता है तो नखों का रंग फीका पड़ जाता है। उन पर सफेदी छा जाती है। हृदय और फुप्फुस के रोगों में नखों का रंग नीला सा हो जाता है। नख मे उपचर्म के समान रक्त की नालियां नहीं होतीं। उनका पोषण चर्म की लसीका से ही होता है।

नख भी वास्तव मे वह उपचर्म ही है जिसको सेलें अधिक सख्त हो गई हैं। उसके नीचे और स्थानों के समान चर्म रहता है। यदि नख भूल से कट जाता है तो उसके स्थान पर दूसरा निकल आता है।

केश अथवा बाल

हमारे चर्म से ही बाल भी उत्पन्न होते है। उपचर्म के ऊपर बढ़े हुए बाल भी उसी उपादान से बने होते है, जिससे उपचर्म बना होता है। नख भी इसी उपादान से बनते हैं।

प्रत्येक बाल चर्म के एक २ विशेष स्थान मे से निकलता है। जहा कहीं से चर्म नष्ट हो जाता है वहां दाग़ पड़ जाता है और हम अच्छे भी हो जाते हैं। किन्तु वास्तविक चर्म फिर उत्पन्न नहीं हो सकता। दाग़ वास्तविक चर्म नहीं होता। दाग़ में बाल या पसीना कुछ नहीं निकल सकता।

बाल निकलने के स्थान अत्यंत चक्करदार और सुंदर ढंग

से बने होते हैं। प्रत्येक बाल में छै तहे होती हैं। यह सभी रोम कूपों (Hair bulbs) के सेलों से बनती है। किन्तु प्रत्येक बाल की रक्षा करनी होती है। अन्यथा वह खराब हो जाते हैं। अतएव प्रत्येक बाल के नीचे विशेष रूप से प्राय दो-दो ग्रन्थियां होती हैं। इन ग्रन्थियों मे एक प्रकार का तेल निकलता रहता है, जिससे बाल कोमल तथा चिकने बने रहते हैं और चटखते नहीं। प्रत्येक बाल की जड़ से एक-एक मांस-पेशी जुड़ी होती है, जब यह पेशी सिकुड़ती है तो यह बाल को खींचती है, जिससे वह बाल खड़ा हो जाता है। इन पेशियों के कारण ही शरीर मे रोमांच हुआ करता है।

बिल्ली अपने बालो को किस प्रकार खड़ा कर लेती है ?

इन पेशियो से मनुष्य अपनी इच्छानुसार काम नहीं ले सकता। किन्तु बिल्ली मे इन पेशियो से काम लेने की शक्ति होती है। वह अपने बालो को पूरी तौर से खड़ा कर लेती है। इससे बिल्ली को अपनी त्वचा को सफा करने मे सुविधा होती है। संभवत: इसका एक और उपयोग भी है। बाल खड़े करने से बिल्ली बहुत बड़ी और भयंकर दिखलाई देने लगती है, जिससे उसको शिकार करने और शत्रु से बचने मे सुविधा होती है।

शरीर का अस्थिपंजर

शरीर की २०० अस्थियां

(पृ० १५८)

बारहवां अध्याय

शरीर रचना किस प्रकार हुई

जब प्राणियों के शरीर अधिकाधिक विकसित होते हुए अधिक सुन्दर और बड़े होकर अनेक प्रकार के कार्य करने लगे तो यह आवश्यक हुआ कि शरीर में कुछ कठोर अंग भी हों, जिससे वह इतने बड़े शरीर को सुगमता से उठा सकें। शरीर के इस कठोर भाग को हम अस्थिपंजर (Skeleton) कह सकते हैं।

अस्थिपंजर प्राणियों के शरीर के अंदर अथवा बाहिर कहीं भी हो सकता है। झींगे (Losbter) का अस्थिपंजर उसके शरीर के बाहिर होता है। उसकी मास पेशियां उसके अस्थिपंजर के अन्दर होती हैं। सबसे प्राचीन ढंग का अस्थिपंजर यही है। इसका अध्ययन करने से ही शरीरों के विकाश तथा अस्थिपंजर के मांस-पेशियों के अन्दर आ जाने का पता लग सकता है।

जिनके अस्थिपंजर मांसपेशियों के अन्दर होते हैं, उनको मेरुदण्ड वाले (Vertebrates or backboned animals) प्राणि कहते हैं। जिनके अस्थिपंजर मांसपेशियों के बाहिर होते हैं उनको बिना मेरुदण्ड वाले प्राणि (Invertebrates) कहते हैं।

मेरुदण्ड वाले प्राणियों में सबसे हल्के प्रकार की प्राणि मछलियां होती हैं।

मेरुदण्ड के ऊपर के भाग में मस्तिष्क होता है। सिर की अस्थियां मस्तिष्क की रक्षा करती हैं। सिर की अस्थियों के बिना हमारा काम एक सप्ताह भी नहीं चल सकता।

सब प्राणियों की समानता

मेरुदंड वाले प्राणियों में से मछलियोंके अङ्ग (हाथ-पैर अथवा पर) नहीं होते। मण्डूक श्रेणि (Amphibia) में यद्यपि अङ्ग निकल आते हैं, किन्तु आरम्भ में वह भी मछलियों जैसे ही होते हैं। आगे जाकर इस श्रेणि के सभी प्राणियों में अङ्ग मिलते हैं, यद्यपि उनमें से कुछ सर्प आदि के अङ्ग झड़ गये हैं। किन्तु अङ्गों के चिन्ह उनके अस्थिपंजर में भी होते हैं। मेंढक से लगा कर मनुष्य तक के सब प्राणियों में यह समानता होती है कि उनके शरीर के पूरे लम्बे भाग में मेरुदण्ड (Spinal Column) होता है और उसके अगले तथा पिछले भाग में अङ्ग होते हैं तथा अङ्गों के चिन्ह होते हैं। दूसरी समानता इन प्राणियों में यह होती है कि इनके दाहिने और बांएं दोनों ओर के अंगों

की रचना एक जैसी ही होती है। यह समानता केवल अस्थि-पंजर में ही नहीं होती, वरन शरीर के प्रत्येक भाग में होती है। यद्यपि इस विषय के अपवाद होते हैं किन्तु उनकी संख्या बहुत कम होती है।

वृक्षों का आहार वायु, प्रकाश और पृथ्वी होता है, जो उनको सब कहीं मिल सकता है। इसीलिए वृक्षों की रचना स्थावर रूप में हुई है। एक स्थान में अनेक वर्षों तक खड़े रहने के कारण ही वृक्षों के शरीर के अङ्ग इतने कठोर बनाये गये हैं कि वह उनके बोझ को ठीक २ रोके रहे। किन्तु हमको भोजन के लिये इधर उधर जाना पड़ता है; अत हमारे अंग कठोर होते हुए भी इतने मुलायम होने आवश्यक हैं कि हम चल फिर सकें।

हमारे शरीर के जोड़ और मांसपेशियों द्वारा उनका शासन

चलने के लिये यह आवश्यक है कि अंग एक अथवा गिनी चुनी हड्डियों के ही न हों, क्योंकि ऐसा होने से शरीर के चलने में बड़ी भारी बाधा आती। शरीर की सुगमता इसी में है कि उसको यथासम्भव अधिक से अधिक दिशाओं में घुमाया जा सके। इसलिये हमारे एक-एक अंग की रचना में भी कई २ अस्थियां लगी हैं। फिर वह अस्थियां बीच २ में सन्धियों (Joints) से जुडी होती हैं। इन सन्धियों का स्थान हमारे शरीर में उसी प्रकार महत्वपूर्ण है, जिस प्रकार एक मोटर में उसकी सन्धियां होती हैं। किन्तु शरीर की सन्धियां यन्त्रों की सन्धियों की अपेक्षा अधिक आश्चर्यजनक

होती हैं। अस्थियों मे गति करने की स्वय अपनी शक्ति नहीं होती। वह केवल किसी वस्तु के द्वारा खींचो जाने पर ही गति कर सकती है। उनको खींचने वाली वस्तु मास-पेशियां होती हैं। मांस-पेशियां सन्धियों के ऊपर से होती हुई एक अस्थि से दूसरी अस्थि पर जाती है। जब मास-पेशी सुकडती है अथवा छोटी होती है तो वह सन्धि के सहारे एक अस्थि को दूसरी अस्थि पर मोड देती है।

अतएव यह स्पष्ट है कि अस्थिपंजर शरीर पर एक चौखटा (Framework) ही है। किन्तु अभी उसके सब कार्यों पर विचार नहीं किया गया कर्पर (खोपड़ी) और मेरुदंड केवल एक दूसरे को सहायता ही नहीं देते, वरन एक दूसरे की रक्षा भी करते है। बहुत सी अस्थियों के अन्दर लाखों ऐसे सेल है जो रक्त के लिये लगातार लाल सेल बनाते रहते हैं। किसी २ समय शरीर के लाल सेल एक दम नष्ट हो जाते है। तब उनके स्थान पर नये सेलों को बडी शीघ्रता से बनाना पडता है। अतएव यह देखा जाता है कि भिन्न २ प्रकार की अस्थियो मे शरीर के लिये लाल सेल बनाने वाले जीवित सेल अधिकाधिक भरते जाते हैं। यह बात यहां तक है कि यदि शरीर को उन सेलों की असाधारण परिमाण में आवश्यकता पड़ जावे तो अस्थियो का अस्थि-अंश एकदम लुप्त होकर उसके भी टूट कर लाल सेल ही बन जावें। इस बात का जानना इसलिए विशेष महत्वपूर्ण है कि अन्दर की अस्थियों को प्रायः बेजान ही

समझा जाता है और उनमे किसी प्रकार उन्नति की कल्पना नहीं की जाती ।

यदि हम मछलियों की अस्थियो को देखें तो वह ठीक २ अस्थि जैसी न होकर कुछ २ कारटिलेज (Cartilage) अथवा उपास्थि (कोमल अस्थि) जैसी होती है। हमारी प्राय अस्थिया इस कार्टिलेज से ही बनी हुई हैं।

छोटे २ बच्चों की अस्थिया भी प्राय कारटिलेज अथवा उपास्थि (कोमल अस्थिया) ही होती है। इसी कारण ऊपर से गिर जाने पर युवा पुरुष की अस्थि टूट जाती है तो बच्चे की केवल मुड़ ही जाती है। यदि बच्चे की अस्थिया भी हमारे जैसी ही कठोर होतीं तो वह कभी नहीं बढ़ सकती थी।

एक दिन अवश्य ऐसा आवेगा कि अस्थि-रचना के आश्चर्य जनक ढग का—कुछ सेलों का नई अस्थियां बनाते हुए—सूक्ष्म-दर्शक यंत्र द्वारा देखा जा सकेगा।

अस्थियों के अध्ययन, उनके प्रत्येक भाग के उपयोग और प्रत्येक अस्थि को पहिचानने के लिये अनेक वर्षों के लगातार परिश्रम की आवश्यकता है। इस प्रकार के गम्भीर ज्ञान की आवश्यकता केवल डाक्टरों को ही होने से यहा अस्थिपजर के विषय मे कुछ सामान्य बातों का ही वर्णन किया जाता है।

अस्थियों के विषय मे पहली बात तो यह स्मरण रखनी चाहिये कि वह केवल एक ही अस्थि की बनी हुई नहीं होती। उनमें कई २ अस्थियां होती हैं, जो एक दूसरे के आश्रय पर थमी रहती

है। यदि मनुष्य-शरीर का मेरुदंड एक अस्थि का होता तो वह बड़ी मुसीबत में पड़ जाता। उस समय इधर उधर झुकना भी कठिन हो जाता। बच्चों को बाल्यावस्था से ही इस लिये व्यायाम कराया जाता है कि उनकी अस्थियों को तभी से सब ओर झुकने का अभ्यास पड़ कर आगे जाकर उनके शरीर बड़े भारी फुर्तीले बन जावें।

मनुष्य बिना गिरे हुए सीधा किस प्रकार खड़ा रह सकता है ?

यद्यपि मेरुदंड की सभी अस्थियां भिन्न २ प्रकार की होती हैं, किन्तु उनकी संख्या सभी प्राणियों में समान होती है। उदाहरणार्थ, सभी स्तनपोषित प्राणियों (Mammals) की गर्दन में सात अस्थियां होती है। मनुष्य की गर्दन में भी सात अस्थियां ही होती है।

मनुष्यों और पशुओं के मेरुदंड में दो भारी अन्तर होते हैं। प्रथम तो यह कि मनुष्य का मेरुदंड पशुओं के मेरुदंड से बहुत छोटा होता है। प्राय पशुओं का मेरुदंड पूंछ में भी जाता है। अर्थात अन्य स्थानों के समान पूंछ में भी मेरुदंड की अस्थियां होती है। मनुष्य शरीर में इस पूंछ के स्थान की हड्डी का नाम पुच्छास्थि या गुदास्थि है। हमारे शरीर में यह चार छोटी-छोटी अस्थियों के जुड़ने से बनी है। पूंछ-वाले पशुओं में यह मोहरे (Vertebrae) पृथक्-पृथक् होते हैं। मनुष्य शरीर के विकास के समय यह पूंछ लुप्त हो गई। इसकी शकल तिकोनी होती है। यह अस्थि ऊपर चौड़ी होती है और नीचे नोकीली।

मलद्वार के पीछे अङ्गुली से दबा कर इस अस्थि को स्पर्श किया जा सकता है। इस अस्थि मे कोई छिद्र अथवा नली नहीं होती।

पशुओं और प्राणियों के मेरुदण्ड मे दूसरा बड़ा अन्तर टेढ़े-पन का होता है। बच्चों और बडो के मेरुदण्ड के टेढ़ेपन मे भी बड़ा अन्तर होता है। चौपायो, बच्चों और आधे सीधे रहने वाले बन्दरों का मेरुदण्ड इतना टेढ़ा होता है कि बिना प्रयत्न किये हुए शरीर का बोझ आवश्यक रूप से आगे को आ पड़ता है। कुत्ते को उसकी पिछली टांगो पर चलाया जा सकता है, किन्तु यह स्वाभाविक नही है। इसके लिये विशेष प्रयत्न करना पडता है। किन्तु बचपन बीत जाने पर मनुष्य के मेरुदण्ड का टेढ़ापन बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का हो जाता है। मनुष्य-शरीर की रचना मेरुदण्ड के ही चारों ओर होने के कारण बचपन के पश्चात ऊपर के सारे शरीर का बोझ पीछे की ओर ढुलकता रहता है।

कूल्हे की ग्रंथियों के सामने मजबूत रेशों के दो फीते होते हैं। इनको पार्श्विक-बन्धन (Ligament) कहते है। इनके कारण मनुष्य के खड़े होते समय उसका शिर या धड़ पीछे की ओर को नहीं जा पड़ता। रेशों के यह समूह दूसरे प्राणियो मे भी होते हैं। किन्तु उनमे यह बहुत छोटे होते हैं। इन पार्श्विक-बन्धनों के कारण ही हम सीधे खड़े हो सकते हैं।

मेरुदंड

गर्दन, पीठ और कमर की मध्य-रेखा मे अंगुली से टटोलने

से जो वस्तु दंड जैसी कडी मालूम होती है उसको रीढ़ की हड्डी, पृष्ठवंश, कशेरु या मेरुदण्ड (Spinal Column) कहते हैं। इस दंड के टुकड़े वास्तव मे २६ हैं, जो आपस मे बन्धनो मे बंधे रहते है। इन २६ प्रथक २ अस्थियों मे से सब से नीचे की दो अस्थिया वास्तव मे कई छोटी २ अस्थियों के आपस मे जुड जाने स बनी है। यदि इन अस्थियो को प्रथक् २ गिना जावे तो मेरुदण्ड की कुल अस्थियों की संख्या ३३ हो जावेगी। पृष्ठवंश अथवा मेरुदण्ड की प्रत्येक अस्थि को कशेरु या मोहरा (Vertebra) कहा जाता है। एक कशेरुका दूसरे के ऊपर रक्खा रहता है।

एक सामान्य कशेरुका का वर्णन

कशेरुकाए बडी विरूप अस्थियां होती है। क्यो कि इनमे कहीं उभार होता है, कहीं छिद्र होता है, कही से वह मोटे होते है और कहीं स पतले। कशेरुका की शकल कुछ-कुछ नगदार अङ्गूठी से मिलती है। अङ्गूठी का नग-वाला भाग मोटा होता है, और घेर-वाला भाग पतला होता है। कशेरुका के भी दो मुख्य अंश होते है। अगला अंश मोटा होता है; इसको गात्र या पिंड (Body) कहते है। एक कशेरुका का गात्र दूसरे के गात्र के ऊपर इस प्रकार टिका रहता है, जिस प्रकार रुपये एक दूसरे के ऊपर रक्खे होते है। यह सब मिल कर ही पृष्ठवंश, अथवा मेरुदण्ड (Spinal Columnor Backbone) बनते हैं।

कशेरुका के गात्र के पीछे उससे जुड़े हुए दूसरे भाग को घेरा या चक्र कहते हैं। कशेरुका के इन दोनों भागों से कई उभार अथवा प्रवर्द्धन (Projection) निकले रहते हैं। पीठ को छूने से इन उभारों को देखा तथा छुवा जा सकता है। कशेरुका के गात्रों के बीच मे सूत्रमय कारटिलेज की एक मोटी चक्री रहती है। कशेरुका के उभारों से मांस-पेशियां लगी होती हैं। वह सब भी रेशे के दृढ़ सूत्र मे बंधी होती हैं। इस प्रकार कशेरुका एक दूसरे मे इतनी उत्तमता से बन्धे होते हैं कि दुर्घटना से भी टूटने की अपेक्षा उनका प्रथक् र होना असम्भव है।

कशेरुकाओं के गात्र तो एक दूसरे के ऊपर होते ही हैं, घेरे भी एक दूसरे के ऊपर आ जाते हैं। इनके एक दूसरे के ऊपर रहने से एक नली बन जाती है, जो काशेरुकी नली (Vertebral canal) कहलाती है। इस नली मे वात-संस्थान का वह भाग रहता है जिसको सुषुम्ना नाड़ी (Spinal cord) कहते हैं। दो कशेरुका के बीच में गात्रों के पीछे और संधि-प्रवर्द्धनों के आगे एक रास्ता रहता है, जिसमे से होकर सुषुम्ना से निकली हुई नाड़ियां काशेरुकी नली (Vertebral Canal) से बाहिर आती हैं। इन नाड़ियों को सुषुम्ना वातरज्जु (Spinal Nerve) कहते हैं।

मनुष्य के सभी विचार और भाव एक नली में से होकर जाते हैं

यह बतलाया जा चुका है कि कशेरुकी नली के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) होती है। इसके बिना हम जीवन, गति अथवा स्पर्श कुछ भी नहीं कर सकते । सुषुम्ना में से दो २ कशेरुकाओं के बीच में से जो सुषुम्ना वातरज्जुएं निकली होती हैं, वह शरीर के प्रत्येक भाग में जाती हैं। यह चर्म से लगा कर पैर के नखों तक भी जाती हैं। सुषुम्ना की मांस-पेशियों को यही वातरज्जुएं आज्ञाएं ले जाती हैं। यह चर्म के अनुभवों को भी सुषुम्ना में लाती हैं।

यह स्पष्ट है कि कपेर अथवा खोपरी (Skull) में भी एक ऐसा छिद्र है, जिसके द्वारा सुषुम्ना खोपरी से मेरुदंड में आती है। खोपड़ी के नीचे भी हमको एक बड़ा छिद्र दिखलाई देता है, जिसके दोनों ओर का स्थान अत्यन्त चिकना है। यह छिद्र गुद्दी से कुछ ऊपर कपाल के पिछले भाग में होता है । सिर का पिछला भाग यहीं पर तले को झुकता है । यह सिर के पीछे की अस्थि (पश्चात-अस्थि) के मुड़ने के स्थान पर होता है। छिद्र के सामने का भाग पृथ्वी के समानतर रहता है और समस्थ भाग कहलाता है। छिद्र के पीछे का भाग खड़ा होता और ऊपर को जाता है। छिद्र के इधर उधर समस्थ भाग के नीचे के पृष्ठ पर दो उभार होते हैं। यह उभार ग्रीवा के प्रथम कशेरुका के संधि-प्रवर्द्धनों (Joint Projections) के ऊपर टिके होते हैं। कपाल

इस कशेरुका पर आश्रित रहता है तो अस्थि का बड़ा छिद्र काशेरुकी नली के ऊपर आ जाता है और इस प्रकार काशेरुकी नली (Vertebral Canal) का कपाल के कोष्ठ से सम्बन्ध हो जाता है। अथवा यह कहना चाहिये कि मस्तिष्क का सब से नीचे का भाग यहा से चलता हुआ सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) बन जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी तरल में किस प्रकार तैरती रहती है?

अनुभव और इच्छा मस्तिष्क ही करता है। मनुष्य शरीर के अङ्गों द्वारा मस्तिष्क को भेजे हुए सभी संदेश सुषुम्ना वात-रज्जुओ द्वारा सुषुम्ना नाड़ी मे पहुचते है। इस के पश्चात् वह संदेश इस बड़ी भारी नाड़ी मे मे होते हुए खोपडी की तली के पास मस्तिष्क मे पहुंचते है। मस्तिष्क द्वारा भेजा हुआ प्रत्येक संदेश भी सुषुम्ना नाडी मे से होता हुआ सुषुम्ना वातरज्जुओं मे आकर अङ्गो तक पहुचता है।

सुषुम्ना नाड़ी की मेरुदण्ड (पृष्ठवंश) आश्चर्यजनक रूप से रक्षा करता रहता है। यह बतलाया जा चुका है कि सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड के अन्दर काशेरुकी नली मे रहती है। काशेरुकी नली मे सुषुम्ना नाड़ी के चारों ओर एक प्रकार का तरल पदार्थ भरा रहता है। यह नाड़ी उसी मे तैरती रहती है। इसी कारण मेरुदंड मे चोट लग जाने पर भी सुषुम्ना नाडी को कोई क्षति नहीं पहुंचती; क्यों कि वह तो तरल के अन्दर तैरती रहती है। मेरुदण्ड और उसके चारों ओर की मांस-पेशिया उसकी धूप से भी पूर्णरूप से रक्षा करती है। केवल

गर्दन के पिछले भाग (गुद्दी) में ही सुषुम्ना नाड़ी की रक्षा का कम प्रबन्ध है। इसी कारण जिन मनुष्यों को अधिक धूप सहन करने का अभ्यास नहीं होता, उनको इस स्थान की रक्षा करने की आवश्यकता होती है। यद्यपि प्रकृति ने बालों द्वारा इस स्थान की रक्षा का प्रबन्ध किया हुआ है, तो भी पाश्चात्य देश-वालों के कालर तथा नेक-टाई इसी स्थानकी रक्षा के लिये होते हैं।

मेरुदंड सारे शरीर का आधार है

मेरुदंड नीचे की ओर बड़ी २ नितम्बास्थियों (Hipbones) से जुड़ा होता है। पैरों की अस्थियां भी नितम्बास्थियों में ही निकलती हैं। मेरुदंड के इस भाग (कमर) में पांच कशेरुकाएं (Vertebrae) इस प्रकार मिली होती हैं कि वह एक ही जान पड़ती है। प्राचीन काल में जीवात्मा का निवास इसी अस्थि में माना जाता था। अब भी इस अस्थि को पवित्र मानते हैं। भारतीय योग दर्शन का मूलाधार भी यही है।

मेरुदण्ड में कुल २६ अस्थियां होती हैं; जिनमें से ७ ग्रीवा में, १२ पीठ में, ५ कमर में और शेष दो कमर के नीचे वस्तिगह्वर की पिछली दीवार में होती है। इन नीचे वाली दोनों अस्थियों में से ऊपर की बड़ी होती है और नीचे की छोटी। बड़ी अस्थि ५ कशेरुकाओं के आपस में जुड़ने से बनी है। उसको त्रिक कहते है। छोटी अस्थि ४ कशेरुकाओं से बनती है। इसको पुच्छास्थि अथवा गुदास्थि कहते है।

कमर की पांच कशेरुकाओं के ऊपर पीठ की १२ कशेरुकाएं

होती हैं। मेरुदंड की इन्हीं अस्थियों से दोनों ओर बारह बारह पसलियों की अस्थियां (Ribs) निकली होती हैं। इनमे से अधिक
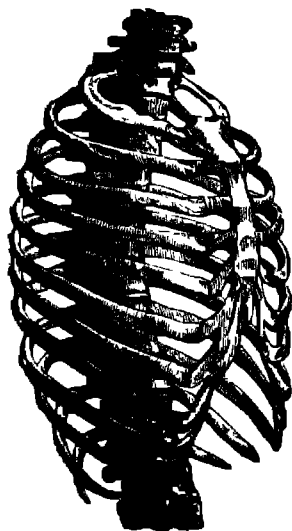
हृदय और फुप्फुसों को अपने अन्दर बन्द करके उनकी रक्षा करने वाली पसलियां

अस्थियां धड़के सामने के भाग मे आकर छाती की अस्थि में मिल जाती हैं। अस्थियों के इसी संदूक के भीतर सीना रहता है। उस संदूक के बाहिर अक्षकास्थि (हंसली की अस्थि) और स्कन्धास्थि होती हैं। स्कन्धास्थि से हाथों की अस्थियां निकली होती हैं। इस प्रकार सारे का सारा धड और कर्पर (खोपड़ी) भी मेरुदंड के ही आश्रित होता है। बिना मेरुदंड के कोई रचना होनी कठिन है।

तेरहवां अध्याय

सिर और हाथ पैर

अस्थियों के सामान्य विवरण और शरीर मे उनके उपयोग का वर्णन कर दिया गया। मेरुदंड की विशेषरूप से व्याख्या भी करदी गई, क्योंकि प्राणियों के सारे शरीर की रचना उसी पर होती है। यह भी बतलाया जा चुका है कि मनुष्यों मे यह विशेष रूप से निराला होता है, जिससे मनुष्य बचपन के कुछ माह बीतने पर ही सीधा खड़ा हो सकता है।

इसी मेरुदंड के ऊपर सिर रखा हुआ है। मस्तिष्क इसी सिर के अंदर है और इसी मस्तिष्क मे वास्तव मे जीवन है।

मेरुदंड-वाले सामान्य प्राणि—मछली अथवा कुत्ते तक को देखने से पता लगता है कि उसके सिर मे दो भाग होते हैं। आगे के भाग को चेहरा कहते हैं। महत्त्व पूर्ण इन्द्रिया–आंख, नाक,

मुख, आदि इसी मे होती हैं। सिर का पीछे का भाग गोल और बड़ा होता है। उसको कर्पर अथवा खोपड़ी (Skull) कहते हैं। यह भाग शरीर में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि मस्तिष्क इसी में बंद रहता है। मछली का मस्तिष्क बहुत छोटा होता है। इसीलिये उसका कर्पर भी छोटा होता है। कुत्ते का मस्तिष्क मछली से बड़ा होता है। अतएव उसका कर्पर भी बड़ा होता है। मनुष्य के समीपतर आने वाले प्राणियों मे मनुष्य जैसे लंगूर तक का मस्तिष्क और कर्पर उत्तरोत्तर बड़ा होता जाता है। किन्तु बड़े से बड़े लंगूर का कर्पर भी चेहरे के पीछे ही होता है।

मनुष्य का मस्तिष्क किसी भी प्राणि की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। पशुओं से मनुष्य मे मस्तिष्क उत्तम होने की ही विशेषता होती है। अधिक विकसित होने के कारण ही मनुष्य का मस्तिष्क चेहरे के पीछे न होकर सिर के ऊपर के भाग मे होता है। मस्तिष्क वास्तव में ही सब से ऊपर होता है, क्योंकि यह कार्य भी सबसे ऊंचे ही करता है।

मस्तिष्क के सबसे ऊपर के भाग ने इतनी उन्नति की कि वह सीधा न बढ़कर अपने ऊपर ही दोहरा होगया। मस्तिष्क के ऊपर को बढ़ने से खोपरी को भी उसके धारण करने के लिये ऊपर को ही बढ़ना पड़ा। सारांश यह है कि जो खोपरी पशुओं में चेहरे के पीछे होती है वह मनुष्यों में चेहरे के ऊपर होती है। किसी भी स्त्री, पुरुष अथवा बच्चे को देखने पर चेहरे के ऊपर मस्तिष्क के इस भाग को देखा जा सकता है। इस भाग का नाम ललाट (Fore-

head) है। इस प्रकार खोपरी का एक बड़ा भाग चेहरे के पीछे होने पर भी उसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग चेहरे के ऊपर ही होता है। शरीर की सारी उन्नति मस्तिष्क पर निर्भर है। इसी कारण यद्यपि बच्चे का मस्तिष्क इतना अविकसित होता है, तो भी वह उसके सारे शरीर से बड़ा होता है।

इस प्रकार बच्चे की लम्बी चौड़ी खोपरी के नीचे उसका चेहरा बहुत छोटा दिखलाई देता है। युवा मनुष्य के सिर को कंधों और नितम्बों की अपेक्षा छोटा देखकर यह कठिनता से विश्वास होगा कि जन्म लेते समय मनुष्य का सिर शरीर के सभी अंगों से बड़ा था।

मनुष्य-कर्पर का विकास

पशुओं का कर्पर चेहरे के पीछे होता है। इन चित्रों में मस्तिष्क को स्थान देने के लिये कर्पर का सामने की ओर ऊपर को बढ़ना दिखलाया गया है। प्रथम कर्पर निम्न कोटि के मनुष्य आस्ट्रेलिया-वासी का, द्वितीय नीग्रो का और तृतीय उच्च कोटि के मनुष्य यूरोप-वासी का है।

पृथ्वी के ऐसे बहुत से भाग भी हैं, जिनके निवासी असभ्य और अशिक्षित होते हैं। शिक्षा पाने का कितना भी अवसर मिलने पर वह अशिक्षित ही बने रहते हैं। इन व्यक्तियों के ललाट हमारे समान ऊंचे, चौड़े और सीधे न होकर लम्बे, तंग और कुत्ते के समान पीछे को ढलुवां होते हैं।

इन मनुष्यों की निम्न श्रेणि होने के कारण सुसभ्य मनुष्यों को इनसे घृणा करने का अधिकार नहीं है। उनके मस्तिष्क अविकसित होने से सुसभ्य मनुष्यों पर इस कर्तव्य का भार आ जाता है कि वह उनको सभ्य और स्वतन्त्र बना कर उनकी रक्षा करें; न कि उनको दास बना कर और उनसे मद्य बेचकर अपनी जेबे भरें।

मनुष्य-शरीर में सब से अधिक महत्वपूर्ण उसका मस्तिष्क है और कपाल उस मस्तिष्क का घर है।

कपाल की तली बड़ी मजबूत और मोटी होती है। यह शरीर की सब से घनी और कठोर अस्थियों से बनी होती है। इसके एक भाग को तो पथरीली अस्थि कहते हैं। कपाल के अनेक प्रकार के झटके सहते रहने से ही उसको इतना अधिक मजबूत बनाया गया है। प्रत्येक बार जब मनुष्य कूदता या दौड़ता है तो बड़े २ झटके टांगों में लग कर मेरुदंड में से मस्तिष्क में पहुंचते हैं। यदि कपाल इतना मजबूत न होता तो वह इतने झटकों को कभी सहन नहीं कर सकता था। मनुष्य के ऊंचाई से गिर जाने पर भी कपाल बहुत कम टूटता है।

कपाल की तली के विषय में दूसरी बात हम यह देखते हैं कि इसमें स्थान २ पर छोटे बड़े छेद बने हुए हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक और गड़बड़ में डालने वाली है कि उन सबका अध्ययन करने में महीनों लग जावेंगे। किन्तु एक बड़े भारी छिद्र को कोई नहीं भूल सकता। इसका वर्णन पीछे किया गया है। इसका नाम महाछिद्र है। इसी के द्वारा मस्तिष्क सुषुम्ना नाड़ी में जाता है। दूसरे छेदों का प्रयोजन कपाल में जाने वाले रक्त, वायु और भोजन को मार्ग देना है। इनमें से असंख्य शिराएं जाती और आती हैं। यह शिराएं मस्तिष्क का सम्बन्ध चेहरे, जिह्वा, होठों, नासिका, आंखों, कानों, स्वर-यंत्र तथा शरीर के अन्य महत्वपूर्ण भागों से करती हैं।

एक दो स्थानों में यह भी पता चलता है कि मस्तिष्क केवल ऐसी अस्थि के फर्श पर पड़ा है, जो उसकी पूर्णतया रक्षा नहीं करती। आखों के गोलकों की अस्थियां इसी प्रकार की अस्थियों में से है। इस प्रकार के स्थान इतने कोमल होते हैं कि छतरी के गज़ भी उनमें प्रवेश कर सकते हैं।

कपाल का बड़ा भारी गुम्बद विशेष प्रकार की अस्थियों से बना होता है। यह अस्थियां पतली और सुन्दरता पूर्ण, टेढ़ी और एक दूसरे से बिल्कुल ठीक-ठीक सटी होती हैं। शरीर में इस प्रकार के कुछ और जोड़ भी होते हैं, जहां अस्थियां तो जुड़ी होती हैं; किन्तु उन सन्धियों पर अस्थियां गति नहीं कर सकतीं। सिर में जहां नीचे का जबड़ा जुड़ा होता है वहां बाहिर

के शब्द को कान मे ले जाने वाली कान के अन्दर की कुछ छोटी २ अस्थियों की सन्धियों पर गति की जा सकती है। कपाल के ऊपर की अस्थियां बड़ी कड़ी होती हैं। वह उपास्थि अथवा कार्टिलेज से न बन कर रेशे की सामग्री अथवा झिल्ली से बनी होती हैं।

बच्चे के जन्म लेने के पश्चात उसके कपाल में कम से कम दो स्थान ऐसे बने रहते हैं, जहां की झिल्ली अस्थि रूप नहीं हो जाती। वह स्थान अत्यन्त कोमल होता है। बालक के उस स्थान पर हाथ धरने से कोई वस्तु फड़कती हुई जान पड़ती है। इसका कारण यह है कि हृदय की प्रत्येक गति के साथ नया रक्त उन स्थानों में भी आता है। हाथ के नीचे फड़कने वाला उसी रक्त का फव्वारा होता है। कभी २ जब बच्चे की नाड़ी का कहीं पता नहीं चलता तो यहां पर पता चल जाता है। अतएव बच्चे के इस स्थान के अत्यन्त कोमल होने से इसकी रक्षा सावधानी से करनी चाहिये।

मस्तिष्क का परिमाण

मस्तिष्क कुछ-कुछ अण्डाकार होता है। उसका पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा और मोटा होता है। उसकी लम्बाई सामने से पीछे तक ६—६॥ इंच होती है। चौड़ाई एक कान से दूसरे कान तक ५॥ इंच और ऊपर से नीचे तक की मोटाई लगभग ५ इंच होती है। १५ से ४९ वर्ष की आयु में मस्तिष्क का भार पुरुषों में २२ छटांक और स्त्रियों में २० छटांक के लगभग होता है।

युवा मनुष्य के मस्तिष्क का भार कुल शरीर के भाग के पचासवें अंश के लगभग होता है। नवजात बालक के मस्तिष्क का भार लगभग ७ छटाक होता है। पहिले वर्ष के अन्त में यह भार दुगना, छटे वर्ष मे तिगुना तथा १८ वें वर्ष में लगभग युवावस्था के समान २०-२२ छटांक हो जाता है।

कपाल की रचना

कपाल में कुल २२ अस्थियां होती हैं। इनमें से आठ अस्थियों के परस्पर मेल से वह कोष्ठ बन जाता है, जिसके भीतर मस्तिष्क अथवा दिमाग रहता है। शेष १४ अस्थियां इस कोष्ठ के अगले भाग में लगी होती हैं, जिनसे चेहरे का ढांचा बनता है। खोपड़ी की आठ अस्थियों से बनने वाले भाग को कपाल कहते हैं।

इस कोष्ठ के अगले भाग की अस्थि को ललाटास्थि कहते हैं। माथा या मस्तक इसी अस्थि से बनता है। ललाटास्थि के पीछे कपाल की छत मे दो चौड़ी और चपटी अस्थियां हैं। इनको पार्श्विकास्थि कहते हैं। इन अस्थियों से छत का बीच का भाग और दोनों पार्श्वों के अधिक भाग बनते हैं। एक अस्थि दाहिनी और दूसरी बाईं ओर रहती है। यह अस्थियां सिर की गोलाई के अनुसार मुड़ी रहती हैं। कपाल के पिछले भाग की अस्थि को पश्चादस्थि कहते हैं। गुद्दी के ऊपर के भाग का उभार इसी अस्थि का अंश है। पार्श्विकास्थि के नीचे की अस्थि को शंखास्थि अथवा कनपटी की हड्डी कहते हैं। कान का छिद्र इसी

हड्डी मे होता है। यह अस्थिया दोनों ओर दो होती हैं। कपाल का अधिक भाग इन छै अस्थियों से बन जाता है। उसकी अगली और पिछली दीवारें, छत और दोनों पार्श्व पूर्ण हो जाते हैं। फर्श का भी अधिक भाग बन जाता है। केवल एक अस्थि तितली के आकार की पश्चादस्थि के समस्थ भाग के आगे और ललाटास्थि के समस्त भाग के पीछे और दोनों शखास्थियों के बीच मे फंसी रहती है। इन सातों अस्थियों के मिलने के पश्चात भी कपाल की तली मे कुछ कमी रह जाती है। ललाटास्थि के समस्त भाग की घाई अभी तक नहीं भरती। यह आठवीं अस्थि से पूर्ण होती है। इस अस्थि मे बहुत से छिद्र होने से इसका नाम बहुछिद्रास्थि पड़ गया है।

मस्तिष्क की रचना

कपाल के अन्दर मस्तिष्क रहता है। मस्तिष्क के दो बड़े भाग हैं। मस्तिष्क को ऊपर से देखने पर दिखलाई देने वाला भाग वृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) कहलाता है। वृहत् मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे के मस्तिष्क को लघु या अणु मस्तिष्क (Cerebellum) कहते हैं।

स्त्री और पुरुष के मस्तिष्क

मनुष्य का कपाल अन्य प्राणियों के कपाल की अपेक्षा अधिक चिकना होता है। बिल्ली अथवा चीते के कपाल में बहुत से उभार आदि होते हैं। इसका कारण यह है कि चीते के आहार का आधार प्राय: उसके जबड़े ही होते है। इनसे काम लेने के लिये बहुत

बड़ी २ मांसपेशियो की आवश्यकता पड़ती है। फिर उनको संभालने के लिए कपाल मे दृढ़ अस्थिपंजर की भी आवश्यकता होती है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों मे अधिक पेशियां होती हैं। यद्यपि मनुष्य के जबड़े चीते की तुलना मे अत्यन्त निर्बल होते हैं, किन्तु उसका कपाल स्त्री के कपाल के जैसा चिकना नहीं होता। मनुष्य के कपाल की अपेक्षा स्त्री का कपाल अधिक हल्का, चिकना और अधिक गोल होता है।

स्त्री का कपाल पुरुष के कपाल से छोटा भी होता है। मस्तिष्क भी उसमे पुरुष के मस्तिष्क मे छोटा होता है। किन्तु अपने शरीर के अनुपात की अपेक्षा स्त्री के मस्तिष्क का अनुपात पुरुष के अनुपात से कम नही होता।

स्कन्धास्थि

चेहरे की अस्थियो मे सब से अधिक महत्वपूर्ण जबड़े होते हैं। दांत इन्हीं मे होते है। यह भी बतलाया जा चुका है कि मेरुदण्ड वाले सभी प्राणियों के अग एक दूसरे के समान ही होते है। संभवत. हंसली की हड्डी लगभग सभी की भिन्न २ प्रकार की होती है। मनुष्य की यह अस्थि बड़ी कोमल होती है। इस अस्थि का नाम अक्षकास्थि भी है। यह वक्ष के अगले और सब से ऊपर के भाग मे होती है। दूसरी अस्थि पीठ के उस भाग मे होती है, जिसको खवा कहते है। इस अस्थि को स्कन्धास्थि कहते है। यह दोनों—अक्षक और स्कन्धास्थि वक्ष की अस्थियों से मास और बंधनों द्वारा बंधी रहती हैं।

स्कन्धास्थि का सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग वह गोल गढ़ा होता है, जिसमें प्रगण्डास्थि (Bone of the upper arm) का सिर फंसा रहता है। इस प्रकार यहां गढ़े और गेंद का ऐसा संगम हो जाता है, जो चाहे जिधर घूम सकता है। अंगुली अथवा घुटनों के जोड़ एक या दो ओर को ही घूमते हैं, किन्तु कन्धों और नितम्बों के जोड़ गढ़े और गेंद होने से सब ओर को घूम सकते हैं।

हाथों की रचना

जिसको हम अपनी भाषा मे हाथ कहते हैं, शरीर विज्ञान में वह बड़ी भारी गड़बड़ी डालने वाला अंग है। शरीर विज्ञान के अनुसार उसके मुख्य पांच अंग हैं—

(१) प्रगण्ड अथवा बाहु—कंधे के नीचे और कुहनी के ऊपर का भाग।
(२) प्रकोष्ठ अथवा भुजा—कोहनी के नीचे कलाई तक का भाग।
(३) कलाई अथवा पहुंचा।
(४) हस्त तल अथवा हथेली—कलाई और अंगुलियों के बीच का भाग।
(५) अंगुलियां।

प्रकोष्ठ में दो अस्थियां बराबर-बराबर होती हैं। एक अंगुष्ठ की ओर और दूसरी कनिष्ठा की ओर। जब हथेलियों को ऊपर को करके हाथ को फैलाया जाता है तो वह दोनों बराबर-बराबर आ जाती हैं। हथेली को घुमाया जाने पर बाहिर की अस्थि अंदर की अस्थि के ऊपर आ जाती है। यह दोनों अस्थियां कोहनी पर प्रगण्डास्थि

अथवा बाहु की अस्थि में जुड़ जाती हैं। प्रकोष्ठास्थियों के नीचे के सिरे कलाई की अस्थियों से मिले रहते हैं।

कुहनी
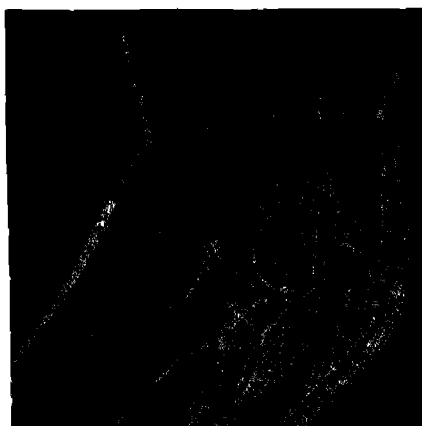
इसमें प्रगण्ड (Upperarm) की अस्थि के प्रकोष्ठ (Forearm) की दोनों अस्थियों में ठीक २ जोड़ को दिखलाया गया है।

प्रकोष्ठास्थि के पश्चात् कलाई में आठ छोटी छोटी अस्थियां होती हैं। यह स्मरण रहे कि कलाई हथेली और प्रकोष्ठास्थियों के जोड़ को कहते हैं। कलाई की अस्थियां एक दूसरे के साथ बड़े आश्चर्य जनक रूप से जुड़ी होती हैं।

कलाई के पश्चात् पाच लम्बी २ अस्थियां होती हैं। इन में से प्रत्येक को करभास्थि कहते हैं। करभ हाथके पीछे के भाग को

कहते हैं। हथेली की अपेक्षा इस भाग मे यह अस्थियां सहज ही टटोल कर स्पर्श की जा सकती हैं। इन अस्थियों मे अ गुष्ठ-वाली अस्थिया सब से मोटी और कम लम्बी होती हैं। इन अस्थियों के बीच का अन्तर मांस-पेशियों से भरा रहता है। प्रत्येक अस्थि के दो सिरे होते हैं। नीचे के सिरे या सिर कुछ गोल होते हैं और यह सबसे नीचे के पोरवों की अस्थियों से मिले रहते हैं।

अंगुलियों की अस्थियां

अगुष्ठ मे दो अस्थियां होती हैं और शेष अंगुलियों मे तीन तीन। इस प्रकार पाचों अ गुलियो में १४ अस्थियां होती है। प्रत्येक अस्थि को पर्व या पोरवा कहते है। तीसरी पंक्ति पर नख लगे होते है। इस प्रकार एक २ हाथ मे ३२ अस्थिया हुई और दोनों हाथों की मिलाकर ६४ अस्थियां हुई।

हाथ के अ गूठे के समान पैर के अ गूठे की अस्थि भी शेष अङ्गुलियों मे एक कम होती है। कुछ प्राणियों के पैरों की अङ्गु-लियां मे जाला सा बना होता है। बत्तक इसका उदाहरण है। किन्तु मनुष्यों की अङ्गुलियों मे भी एक प्रकार का थोड़ा सा जाला होता है।

वस्तिगह्वर

कूल्हे या नितम्ब मे एक बड़ी चौड़ी और विरूप अस्थि होती है। इसको नितम्बास्थि कहते हैं। दोनों नितम्बास्थियां पीछे जाकर कमर के नीचे त्रिक नाम की अस्थि से बंधी होती हैं। दाहिनी नितम्बास्थि त्रिक से दाहिनी और बाई उसके बाईं ओर होती है। सामने आकर यह दोनों अस्थियां

आपस में मध्यरेखा में जुड़ जाती हैं। इन दोनों अस्थियों के इस जोड़ या सन्धि को विटप-सन्धि या भग-सन्धि कहते हैं। इसी सन्धि के नीचे पुरुष में शिश्न और स्त्री में भग नामक अंग रहते हैं। जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है त्रिक अस्थि के नीचे गुदास्थि अथवा पुच्छास्थि है। नितम्बास्थिया इस अस्थि से मिली हुई नहीं रहतीं। इन चारों अस्थियों के बीच में जो गहरा कटोरे की शकल का स्थान है उसको वस्तिगह्वर (Pelvis) कहते हैं।

वस्तिगह्वर उदर की कोठरी के नीचे का भाग है। उसमें पुरुष के मूत्राशय, शुक्राशय, मलाशय; तथा स्त्रियों के मूत्राशय, गर्भाशय, मलाशय और डिम्ब-ग्रंथियां नामक अंग रहते हैं। अस्थियों के भीतरी पृष्ठ पर मास-पेशियां लगी होती हैं। स्त्री का वस्तिगह्वर पुरुष के वस्तिगह्वर की अपेक्षा कम गहरा परन्तु अधिक चौड़ा और विशाल होता है।

पैरों की अस्थियां

प्रत्येक नितम्बास्थि के बाहिरी पृष्ठ पर एक गहरा गोल गढ़ा होता है। ऊर्वास्थि (जाघ की अस्थि) का सिर इसी गढ़े मे टिका होता है। यह स्कन्धास्थि के गढ़े से कई गुना अधिक मजबूत होता है। क्योंकि चलने फिरने में इसी सन्धि से सहायता मिलती है।

जांघ की अस्थि

बाहु के समान जांघ में भी केवल एक ही अस्थि होती है। इसका नाम ऊर्वास्थि है। यह अस्थि शरीर में सबसे लम्बी, बड़ी

और दृढ़ होती है। इसके नीचे के किनारे पर घुटने का जोड़ होता है। यह संधि भी बड़ी मज़बूत होती है। इस सन्धि पर भी एक तिकानिया अस्थि होती है, जिसे पाली कहते हैं। यह हिलाई जा सकती है। यह अस्थि ऊर्वास्थि के नीचे के सिरे के सामने रहती है।

पिंडली की अस्थियां

घुटने के नीचे के पैर के भाग को पिंडली कहते हैं। प्रकोष्ठ के समान इसमे भी दो अस्थिया होती है। इनमे से एक अंगुष्ठ की ओर रहती है और दूसरी कनिष्ठा की ओर। पहिली अस्थि को जंघास्थि और दूसरी को अनुजंघास्थि कहते हैं।

जंघास्थि दूसरी अस्थि से मोटा होती है। इसका ऊपर का सिरा नीचे के सिर से अधिक मोटा और चौडा होता है। इस सिरे के ऊपर के पृष्ठ पर ऊर्वस्थि के उभारों को सहारने के लिये दो निशान होते हैं।

अनुजंघास्थि जघास्थि से बहुत पतली, कमज़ोर और नली जैसी होती है। इसका ऊपर का सिरा जंघास्थि से बंधा रहता है। यह मांस से खूब ढकी रहती है। इसके नीचे के सिरे से कनिष्ठा अंगुली की ओर का गट्टा बनता है। इसको बहिर्गुल्फ कहते हैं। यह सिरा टखने (गट्टे) की गुल्फास्थि नामक अस्थि से मिला रहता है।

टखने की अस्थियां

पिंडली की दोनों अस्थियों के नीचे एक विरूप अस्थि होती

है। इसको गुल्फास्थि कहते हैं। इस अस्थि का अगला सिरा गोल होता है।

गुल्फास्थि के नीचे भी एक बड़ी और विरूप अस्थि होती है। इसके अगले भाग के ऊपर गुल्फास्थि टिकी होती है। उसका पिछला भाग पीछे को निकला रहता है। इसी उभार को एड़ी कहते है। इस अस्थि का नाम पार्ष्णि है।

गुल्फास्थि के अगले गोल सिरे के सामने एक अस्थि होती है, जिसकी शकल नौका जैसी होती है। इसका नाम नौकाकृति अस्थि है। यह अस्थि अंगुष्ठ की ओर के किनारे के मध्य मे टटोलने से स्पर्श की जा सकती है।

नौकाकृति के अगले पृष्ठ से तीन छोटी-छोटी अस्थिया मिली होती हैं। इन अस्थियो की गिनती अंगुष्ठ की ओर से होती है। यह प्रथमा, द्वितीया और तृतीया त्रिपार्श्विक अस्थिया कहलाती है।

पार्ष्णि के अगले सिरे से कनिष्ठा की ओर एक घनाकार अस्थि लगी होती है। यह पैर की घनास्थि कहलाती है।

इन अस्थियों मे पार्ष्णि अथवा एड़ी की अस्थि सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। क्यों कि शरीर का सारा बोझ उसी पर होता है।

प्रपाद की अस्थियां

त्रिपार्श्विक या घन-अस्थियों के सामने और अंगुलियों के पीछे पैर का जो भाग है वह प्रपाद या प्रपद कहलाता है। प्रपाद मे हस्ततल के समान पाच लम्बी-लम्बी शलाकाकार अस्थियां होती

हैं। अंगुष्ठ की प्रपादास्थि सब से मोटी होती है। इन अस्थियों के अगले सिरे गोल होते हैं। इनकी गिनती अंगुष्ठ की ओर से १-२-३-४-५ होती है।

अंगुलियों की अस्थियां

पैर की अंगुलियों की अस्थियों की संख्या भी अंगुलियों के समान ही होती है। इस प्रकार दोनों निम्नशाखाओं में ३१ × २ = ६२ अस्थियां होती हैं।

बूटों का उपयोग

पैर की अस्थियां इस प्रकार लगी होती हैं कि उनका नीचे का भाग सीधा रहता है। इनमे अंगूठा ऊपर और नीचे को घूमता रहता है। किन्तु बूट जूते पहिनने से पैर की स्वतंत्रता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। बूट के कारण कम से कम अंगूठे का आकार तो बहुत कुछ बिगड़ जाता है। जिन व्यक्तियों के पैर में गठिया हो जाती है उनके अंगूठे को बूट के कारण विशेष कष्ट उठाना पड़ता है।

बूट और जूतों से भी अधिक कष्ट ऊंची एड़ी के जूते में होता है। ऊंची एड़ियों से शरीर का बोझ बहुत आगे को हो जाता है और उसका स्वाभाविक संतुलन (Balance) जाता रहता है। इस अस्वभाविक रूप को रोकने लिये भिन्न २ मांसपेशियों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है, जिससे शरीर को हानि ही होती है।

चौदहवां अध्याय

मांस-पेशियां और उनकी संचालक नाड़ियां

शरीर का एक बड़ा भाग मांस-पेशियों से ही बनता है। जिस प्रकार शरीर मे अस्थि-संस्थान होता है, उसी प्रकार मास-संस्थान भी होता है। मास-पेशियों के बिना सारा शरीर ही व्यर्थ हो जावे। क्यों कि शरीर की आज्ञा का पालन मास-पेशिया ही करती हैं। कुछ मासपेशियों पर तो शरीर का जीवन ही निर्भर है। उदाहरणार्थ श्वास की मांस-पेशिया इसी प्रकार की हैं।

मास-पेशियों के रूप को ठीक २ समझ लेना चाहिये। मांस-पेशियां अपने २ कार्य के अनुसार भिन्न २ आकार की होती हैं। कुछ तो मांस के पतले और चपटे पत्तर के जैसी होती हैं, दूसरी लम्बी और तंग इत्यादि आकार की होती हैं, किन्तु प्राय. पेशियां अंत मे एक रस्सी के आकार की हो जाती हैं, जो अपना

शासन करने वाली अस्थि में जाती हैं। कलाई के सामने या घुटने के पीछे इस प्रकार की मजबूत रस्सियों को टटोल कर देखा जा सकता है। उन रस्सियों को कण्डरा (Tendons or Sinews) कहते हैं।

कण्डराएं भी पेशियों का ही भाग होती हैं। वह सन्धियों (Joints) को बांधने वाले बंधनों (Ligaments) से बिल्कुल ही भिन्न होती हैं।

पेशी का शरीर लाल मांस का होता है। उसका वास्तविक जीवित भाग वही होता है। उसमें एक कण्डरा नाम की सफेद रस्सी भी लगी होती है, यह रस्सी अस्थि को खींचती रहती है। पेशियों का कण्डरा भाग सौत्रिक तन्तु (Fibrous Tissue) से बना होता है और लाल भाग मांस-तन्तु से।

सब पेशियों की कण्डराएं एक जैसी नहीं होतीं। चौड़ी पेशियों की कंडराएं श्वेत रंग की, पतली, परन्तु मजबूत चादर के समान होती हैं। बहुतसी कंडराएं डोरियों के समान होती हैं। कुछ कंडराएं मोटी, छोटी और चपटी होती हैं। हाथों और पैरों की अंगुलियों की पेशियों की कण्डराएं बहुत लम्बी होती हैं। कलाई में और पैर में स्पर्श करने से पतली-पतली लकड़ियों के समान जो चीजें मालूम होती हैं, वह सब कण्डराएं हैं। कंडराएं अस्थियों या कारटिलेजों से लगी रहती हैं। कहीं २ वह मोटी झिल्लियों या त्वचा से भी लगी रहती हैं।

मांस-पेशियां एक स्थान से आरंभ होकर एक या एक से

अधिक संधिया के ऊपर से होती हुई दूसरी अस्थि या कारटिलेज से आ लगती हैं। कोहनी विशेष कर दो पेशियों की सहायता से मुड़ती है, इनमे से एक पेशी स्कन्धास्थि से आरम्भ होती है और नीचे जाकर वहि.प्रकोष्ठास्थि से जुड़ जाती है। आरम्भ होने और अन्त होने के स्थान के बीच में दो संधिया पड़ती है। (स्कन्ध-सन्धि और कफोणि सन्धि)। दूसरी पेशी प्रगण्डास्थि के गात्र से आरंभ होती है और अन्त· प्रकोष्ठि से लगी रहती है। यह सन्धि केवल एक ही संधि (कोहनी) के ऊपर होकर जाती है। संधियों के ऊपर होकर जाने से ही गतिया होती हैं।

मांस का विशेष गुण

जब कोई मनुष्य अपनी कोहनी को मोड़ता है तो बाहु का सामने का भाग पहले की अपेक्षा अधिक मोटा और सख्त हो जाता है। सिर इधर उधर फिराने मे कान के नीचे की पेशियां गरदन मे स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगती हैं। कारण यह है कि वह पहिले से अधिक मोटी और कड़ी हो जाती हैं। अङ्गुलियो को मोड़ने से प्रकोष्ठ की पेशिया हिलती हुई दिखलाई देती हैं।

मास का यह विशेष गुण है कि वह सिकुड़ कर मोटा और छोटा हो सकता है और फिर अपनी पूर्व दशा को प्राप्त कर लेता है। उसमे स्थितिस्थापकता (Elasticity) भी होती है।

पेशियों के सिरे अस्थियों, कारटिलेजों, त्वचा वा झिल्लियों से जुड़े रहते हैं। इस कारण जब कोई पेशी सिकुड़ कर छोटी होती है तो वह उस चीज को जिससे वह लगी हुई है अपने साथ उठाती है।

अस्थियों के बीच में सन्धियां रहने के कारण पेशियों के सिकुड़ने से उनके सिरे एक दूसरे के समीप आ जाते हैं। माथे और चेहरे मे पेशियों के सिकुडने से त्वचा में झोल पड़ जाते हैं।

मांस के सिकुड़ने को संकोच और फिर फैल कर पूर्वदशा को प्राप्त करने को प्रसार कहते है।

पेशियों का पोषण

सभी पेशियों को पर्याप्त मात्रा मे रक्त मिलता रहता है। इस से उनका रंग लाल बना रहता है। कुछ पेशियों मे एक विशेष प्रकार का रक्त पदार्थ भी होता है, जो केवल मास-पेशियों मे ही होता है, अन्यत्र नहीं। पेशियों को कार्य करने की शक्ति भी रक्त से ही मिलती है।

प्रत्येक मांस-पेशी एक प्रकार का यन्त्र (मशीन) है। प्रत्येक यन्त्र मिली हुई शक्ति को उष्णता रूप मे परिवर्तित कर देता है, सभी से काम नहीं लेता। जो यन्त्र जितनी ही कम उष्णता उत्पन्न करता हुआ अधिक काम करता है वह उतना ही अच्छा गिना जाता है। क्योंकि हम कार्य चाहते हैं, उष्णता नहीं। इस दृष्टि से मांसपेशियां मनुष्य द्वारा बनाये हुए किसी भी यन्त्र से अधिक उत्तम यंत्र हैं।

पेशियों की गतियां

जब किसी पेशी का वर्णन किया जाता है तो उसकी गतियों पर पहिले ध्यान जाता है।

हमारे शरीर मे दो प्रकार की गतियां होती हैं—

प्रथम वह जो हमारी इच्छानुसार होती हैं और हो सकती

हैं। जैसे चलना, फिरना, बोलना, हाथ उठाना, भोजन चबाना। यह गतियां इच्छाधीन गतियां कहलाती हैं।

दूसरी वह जो हमारे वश में नहीं हैं। हम उनको अपनी इच्छा से रोक नहीं सकते और जब वह न होती हों अथवा उनका होना बंद हो जावे तो हम उन गतियों को अपनी इच्छा से कर भी नहीं सकते। हृदय धड़कता रहता है। हम उसको बन्द करना चाहें तो नहीं कर सकते। आंतों में गति होती रहती है, जिसके कारण भोजन ऊपर से नीचे को सरकता रहता है। हम अपनी इच्छा से इस गति को नहीं रोक सकते। प्रकाश के प्रभाव से हमारी आंख की पुतली सिकुड़ कर छोटी हो जाती है, अन्धकार के प्रभाव से वह फैल कर चौड़ी हो जाती है; हम उसको अपनी इच्छा से कभी छोटी या बड़ी नहीं कर सकते।

इस प्रकार की गतियां इच्छा के आधीन न होने से स्वाधीन अथवा अनैच्छिक कही जाती हैं।

दो प्रकार के मांस-तन्तु

गतियों के समान ही मांस-तन्तु भी दो प्रकार के होते हैं—

१ अनैच्छिक या स्वाधीन मांस।

२ ऐच्छिक या इच्छाधीन।

अनैच्छिक मांस से हृदय, नलियों, मार्गों और आशयों की दीवारें बनी हुई हैं। ऐच्छिक-मांस कंकाल (Skeleton) से लगा हुआ है और वह पेशियों में विभक्त है। दोनों प्रकार के मांस में छोटे २ सेल होते हैं। इन सेलों की रचना भिन्न २ प्रकार की होती है।

अनैच्छिक मांस-सेल

पेशियों के मांसल भाग की परीक्षा करने पर उनमें लाखों जीवित सेल दिखलाई देते हैं। यह बढ़ कर सूत्रों के रूप में बन जाते हैं।

यह सेल लम्बे होते हैं; बीच में से मोटे और सिरों पर पतले तथा नोकीले। उनकी लम्बाई $\frac{१}{४८०}$ से $\frac{१}{१००}$ इंच तक और मोटाई $\frac{१}{८०००}$ से $\frac{१}{३०००}$ इंच तक होती है। प्रत्येक सेल में अण्डाकार या शलाकाकार मींगी होती है। सेल एक दूसरे से सूक्ष्म सौत्रिक-तन्तुओं द्वारा जुड़े रहते हैं। सेलों के पास-पास रहने से मांस की तहें बन जाती हैं। हर एक सेल से वात-मण्डल का एक सूक्ष्म तार लगा रहता है। इस तार के द्वारा वात-मण्डल (मस्तिष्क) उनको आज्ञा देता रहता है।

सेलों के संकोच और प्रसार के मार्गों और नलियों के छिद्र छोटे बड़े हो सकते हैं। त्वचा में बालों की जड़ों में अनैच्छिक मांस रहता है; इसके संकोच से बाल खड़े हो जाते हैं। अन्त्र की दीवार में अनैच्छिक मांस की दो तहें होती हैं; एक तह में सेल इस प्रकार लगे रहते हैं कि उनकी लम्बाई अन्त्र की लम्बाई के रुख होती है, दूसरी तह में सेलों की लम्बाई अन्त्र की चौड़ाई के रुख होती है। पहली तह के सेलों के संकोच से अन्त्र की लम्बाई कम हो जाती है, दूसरी तह के सेलों के संकोच से चौड़ाई कम हो जाती है। दोनों तहों के सेल साथ-

साथ सकोचन कार्य करते रहते हैं, जिसमे यह होता है कि कभी लम्बाई कम होती है और कभी चौडाई। अन्त्र की गति केंचवे जैसे कीड़े के सदृश होने के कारण कृमिवत् आकुंचन कहलाती है। इस गति से भोजन धीरे २ नीचे को सरकता रहता है और उस पर अन्त्र की दीवारो का दबाव पड़ने से पाचक रस भी उसमें भली प्रकार मिल जाते हैं।

अनैच्छिक मांस कहां २ पाया जाता है ?

१ अन्नमार्ग की दीवार मे—अन्नप्रणाली के नीचे के भाग से लेकर मलद्वार तक (आमाशय और अन्त्र मे)।

२ टेंटवे और उसकी शाखाओं की दीवारों में।

३. मूत्रप्रणाली, मूत्राशय और मूत्रमार्गों की दीवारों मे।

४ शुक्रप्रणाली, शुक्राशय और प्रोस्टेट ग्रन्थि मे।

५ स्त्रियों के विशेष अंगो (योनि, गर्भाशय, डिम्बप्रणाली) में।

६. रक्त और लसीका-वाहिनी नलियो मे; हृदय में।

७ पाचक रसो की नलियों से।

८. प्लीहा मे।

९. आंख के उपतारा (Iris) नामक भाग में।

१० बालों की जड़ों, पसीने की ग्रन्थियों अण्डकोष और कई ग्रन्थियों में।

ऐच्छिक मांस-सेल

यह सेल अनैच्छिक सेलों की अपेक्षा अधिक लम्बे होते है। वह बेलनाकार होते हैं। परन्तु उनके सिरे बीच के भाग से

कुछ गलने होते हैं। इन सेलों की चौड़ाई और मोटाई $\frac{१}{२३००}$ से $\frac{१}{२८०}$ इंच तक (सामान्यत: $\frac{१}{५००}$ इंच) होती है। लम्बाई एक से डेढ़ इंच तक होती है। सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखने पर इन सेलों मे मोटाई के रुख धारिया दिखलाई देती है। यह धारिया दो प्रकार की होती हैं। श्वेत और काली। श्वेत के पास काली और काली के पास श्वेत धारिया होती है। श्वेत धारियों वाला सेल का भाग स्वच्छ होता है और जहां काली धारियां होती हैं वह भाग अस्वच्छ होता है। ऐच्छिक-मास-सेल धारीदार सेल कहलाते हैं और अनैच्छिक-सेल धारीविहीन। प्रत्येक ऐच्छिक मांस सेल मे एक से अधिक मींगियां होती है।

जीवित पेशी के संकोच का रहस्य पेशियों के सेलों के जीवन-मूल (Protoplasm) मे ही है।

पेशियो के सेलों को देखने से ही पेशियों के विकास को देखा जा सकता है। यह सेल आरभ मे गोल और छोटे होते हैं। व्यायाम से किसी मासपेशी के उन्नति करने पर पेशियों के बहुत से सेल भी उन्नति कर जाते हैं। किन्तु जब उन सब से उपयोग ले लिया जाता है तो पेशियो का विकास—कितना ही व्यायाम करने पर भी—आगे होना रुक जाता है।

पेशियों का स्वभाव

मांस-पेशियों का आकार भी भिन्न २ शरीरों मे भिन्न २ प्रकार का होता है। स्त्रियों मे पुरुषों की अपेक्षा छोटी और कम

पेशियां होती हैं, किन्तु उनमे जीवनशक्ति (Vitality) अधिक होती है। उनकी आयु औसत दर्जे से अधिक होती है। वह रक्तहानि, उपवास और विष की मात्रा-को पुरुषों की अपेक्षा अधिक सहन कर सकती हैं।

पेशियों की संचालक नाड़ियां

किन्तु यदि हम को मांस-पेशियों की ठीक-ठीक रक्षा करनी सीखनी हो तो हम को शरीर की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करके यह देखना चाहिये कि मास-पेशियों के आज्ञानुसार कार्य करते समय क्या होता है। प्रत्येक मासपेशी मे से कम से कम एक गोल सफेद रस्सी जाती है, जिसको नाड़ी अथवा वातरज्जु (Nerve) कहते हैं। इन नाड़ियों मे से एक जो प्रकोष्ठ (Forearm) की अनेक पेशियों मे से जाती है, थोड़ी दूर तक कोहनी के पीछे से आती है। इस स्थान पर यह कोहनी की अस्थि और उसके चर्म के बीच मे रहती है। इसमें चोट लग जाने से बड़ी भारी बेचैनी होती है। इस नाड़ी को मिश्रित नाड़ी कहते हैं, क्योंकि इसके एक प्रकार के नाड़ी-सूत्र मांस-पेशियों में से जाकर उनमें गति उत्पन्न करते हैं, तो दूसरी प्रकार के नाड़ी-सूत्र संवेदन अथवा अनुभव करने के लिये चर्म मे से होते हुए मस्तिष्क तक जाते हैं।

इनमें से जिन नाड़ी-सूत्रों का पेशियों की गति से सम्बन्ध होता है उनको गति-सम्बन्धी अथवा चालक नाड़ियाँ (Motor Nerves) कहते हैं। जब हम आंख को इधर उधर घुमाते हैं

तो जिन नाड़ियों के द्वारा आंख की पेशियों को गति करने की आज्ञा मिलती है वह चालक नाड़ियां है।

जिन नाड़ियों का सम्बन्ध चेतना अथवा संवेदन से है उनको सांवेदनिक नाड़ियां (Sensory Nerves) कहते हैं। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो जिस नाड़ी द्वारा प्रकाश का प्रभाव मस्तिष्क तक पहुंचता है वह सांवेदनिक नाड़ी है।

इन दोनों प्रकार की ही नाड़ियों का शरीर मे महत्वपूर्ण स्थान है। पेशियों की संचालिका होने के कारण प्रस्तुत प्रकरण में चालक नाड़ियों पर कुछ विशेष प्रकाश डाला जावेगा। कल्पना करो कि किसी मासपेशी की चालक नाड़ी किसी दुर्घटनावश कट गई, अथवा वह अधिक मद्यपान, शीशे अथवा संखिये से विषाक्त होकर मृतक हो गई तो उसको मासपेशी में से काटा जा सकता है। उसके काटने के दो परिणाम होंगे। प्रथम यह कि पेशी से कुछ काम न लिया जा सकेगा, उस पर लकवा मार जावेगा और कितना भी परिश्रम करने पर हम उससे कुछ भी काम न ले सकेंगे। क्योंकि उन पेशियों को चलाने वाली चालक नाड़ियां नहीं हैं। इसका दूसरा परिणाम यह होगा कि पेशी नष्ट होने लगेगी। वह कोमल होते २ छोटी होनी लगेगी। पेशी से काम लेने वाली संचालक नाड़ी केवल उसकी स्वामिनी ही नहीं है, वरन् वह ऐसी स्वामिनी है जो अपने सेवक की भली प्रकार रक्षा भी करती है। सभी चालक नाड़ियों में से पेशियों में कुछ इस प्रकार का प्रभाव पहुंचता रहता है, जिससे वह स्वस्थ बनी रहती हैं।

इस प्रकार पेशिया चालक नाडियों की सेवक हैं ।

नाड़ी स्वयं सूत्र अथवा सूत्र-समूह रूप होती हैं। वह नाड़ी की सेलों से निकलती है । केवल नाड़ी ही संवाद-वाहक होती हैं। पेशियों के समान इनका आरंभ किसी वस्तु से नहीं होता। वास्तविक स्वामिनी मस्तिष्क-स्थित नाड़ी के सेल अथवा सुषुम्ना नाड़ी होती है । इस समय शरीर-विज्ञान-वादियों को पता है कि शरीर की प्रत्येक पेशी के नाडी-सेलों का समूह मस्तिष्क अथवा सुषुम्ना नाडी मे है । यदि उनको किसी प्रकार नष्ट कर दिया जावे तो पेशी को लकवा मार जावेगा और वह नष्ट हो जावेगी । पेशी नाडी-सेलो की सेविका होती है और नाडियां उनके संदेशों को पेशियों तक पहुंचाती है ।

पन्द्रहवां अध्याय

मुख और दांत

जलने वाली प्रत्येक वस्तु के लिए भोजन आवश्यक है। यदि उस को भोजन न मिले तो वह नष्ट हो जावेगी। पौदों और प्राणियों के विषय में भी यही नियम लागू है।

अमीबा जैसा सब से छोटा प्राणि अपने शरीर के किसी भी भाग से भोजन कर सकता है। किन्तु आगे के प्राणियों मे भोजन ग्रहण करने का शरीर में एक निश्चित स्थान बन जाता है, जिसको हम मुख कहते हैं। उससे भी उच्च कोटि के प्राणियों—मेरुदण्ड वालों—में मुख का चिन्ह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है।

मेरुदण्ड वाले प्राणियों के सिर के दो भाग होते हैं—कपाल और चेहरा। चेहरे में श्वास और भोजन लेने के छिद्र होते हैं, जिनको हम नाक और मुख कहते हैं। मुख की अस्थियों में दो

अस्थि बड़ी प्रबल होती हैं, जिनको जबडा (*Jaw*) कहा जाता है। ऊपर का जबडा अवशिष्ट चेहरे और कपाल में स्थिर रहता है। बोलते अथवा कुतरते समय हमारा ऊपर का जबड़ा कभी नहीं चलता। किन्तु नीचे का जबडा कपाल मे टंगा होता है अतएव वह गतिशील होता है। जबडे बडे प्रबल होते है। नीचे के जबड़े की गति का शासन कुतरने मे बडी २ लम्बी और बलवान पेशियां करती हैं।

भोजन चाहे घास, किसी प्राणि का शरीर अथवा अन्न कुछ भी क्यों न हो, उसका टुकड़े-टुकडे होकर कटना और दबाया जाना आवश्यक है। अतएव जबडों म छोटे २ दात भी निकल आते हैं। दांत पहिली पहल मछलियों में प्रगट होते है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह मसूडों म से ही उन्नति करते हैं। दात वास्तव मे नखो के समान चर्म से ही बनते हैं। किन्तु प्राणियों के उन्नति-काल में यह जबडों में स्थिर हो जाते है।

दात बहुत प्रकार के होते है। इनमे से कुछ हमारे कीलों के समान पकड़ने और फाड़ने के लिये होते है। यह कुत्ते अथवा बिल्ली के दांतों के समान लम्बे होते है। दूसरे प्रकार के दात हाथी के लम्बे दांतों के जैसे भाले के समान छेदने के लिये होते है। एक और प्रकार के दात सर्प के विषैले दात के समान विष के होते है। इनके अन्दर विष आने के लिए एक नाड़ी होती है। सर्प अपने नीचे के जबड़े और नीचे की ग्रन्थियों मे विष को बनाता रहता है। दांत वाले प्राय. प्राणियों मे चबाने अथवा पीसने के

दांत होते हैं, जिनको दाढ़ कहा जाता है। यह प्राय: पीछे होती हैं, जब कि पकड़ने, कुतरने, छेदने अथवा विष देने वाले तेज दांत आगे होते हैं। वास्तव मे यहीं उनका ठीक और अधिक से अधिक उपयोग हो सकता है।

भिन्न २ प्रकार के प्राणियों के दांत उनके अपने अपने स्वभाव के अनुसार होते हैं। चीते और गौ के दांत एक प्रकार के कभी नहीं हो सकते। भिन्न २ प्रकार के प्राणियो के दांतों का अध्ययन करने से इस बात का पता अच्छी तरह लग जाता है कि उक्त प्राणियों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है। मनुष्यों मे सब के ही एक से दांत होते है। उनके बचपन से लगा कर युवावस्था तक के दांतों का नियम एकसा ही है।

मनुष्य के दो प्रकार के दांत और उनका इतिहास

प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मनुष्य के दांत दो बार उगते हैं। पहिली बार बीस और दूसरी बार बत्तीस। पहिली बार के दांतों को दूध के दांत कहा जाता है। यह दांत बच्चे के उत्पन्न होने के पश्चात प्राय छठे अथवा सातवें माह मे निकलते हैं। दूसरे प्रकार के अथवा अन्न के दांत छटे वर्ष मे निकलने आरम्भ होते हैं। अन्न के दांत बाल्यावस्था मे अट्ठाईस ही निकलते हैं। शेष चार दांत (दाढ़ें) युवावस्था की पूर्णता में निकलती हैं। उनको 'अक्ल की दाढ़' कहा जाता है। इन दाढ़ों के विषय में सभी देशों मे यह विश्वास किया जाता है कि यह

मनुष्य की बुद्धि परिपक्व होने पर ही निकलती हैं। दोनों जबड़ों के दांतों की संख्या बराबर होती है। सामने के चपटे दांत छेदक या कर्तनक दंत (Incisors or cutter teeth) कहलाते हैं। यह ऊपर नीचे चार-चार होते हैं। इनके बाद दोनों जबड़ों में दोनों ओर एक-एक लम्बा तथा नोकीला दांत होता है; इसको कीला, रदनक दंत अथवा भेदक दांत (Canines) कहते हैं। यह दांत कुत्ते, बिल्ली, शेर आदि मांस फाड़ने वाले प्राणियों में अधिक लम्बा और नोकीला होता है। यह दांत भोजन की वस्तुओं में छेद करने अथवा उनको फाड़ने के काम आता है। इन चारों कीलों के आगे के दांतो का दाढ़ (Molars) कहते हैं। यह दोनों जबड़ों में दोनों ओर पांच-पांच होती हैं। अन्त की दाढ़ को 'अक्ल की दाढ़' कहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य के दाढ़ और दांत क्रमशः छोटे और निर्बल होते जा रहे हैं। बहुत से व्यक्तियों के तो अक्ल की दाढ़ बिल्कुल ही नहीं निकलती।

मनुष्य के दांतों के लगातार निर्बल होते जाने का कारण यह है कि वह अपने स्वाभाविक तरीकों को क्रमशः छोड़ता जाता है और कृत्रिमता को अपनाता जाता है।

हमारे दांत एक दूसरे के ठीक सामने क्यों नहीं हैं?

नीचे के जबड़े के दांत ऊपर के जबड़े के ठीक नीचे ही नहीं होते। इससे एक बड़ा भारी लाभ यह है कि यदि एक जबड़े का दांत टूट जाता है तो दूसरा दांत बिल्कुल बेकार नहीं

हो जाता। वह टूटे हुए दांत के बगल के दांत के भाग से कुछ न कुछ मिलता ही रहता है।

दांतों को सफा रखने से ही वह साफ और दृढ़ बने रहते हैं। उनमें मैल जमते जाने से वह निर्बल पड़ते जाते हैं और क्रमश: बीमार पड़ कर टूट जाते हैं। दांतों की सफाई के लिये दातौन का सेवन सब से अधिक प्राकृतिक उपाय है। वर्तमान-कालीन अनेक प्रकार के टूथ पाउडर (Tooth Powder) दातौन के समान सफाई न कर सकने से दांतों को निर्बल होने से नहीं रोक सकते। दातौन कीकर अथवा नीम की अच्छी होती है। मोलसिरी की दातौन भी बहुत अच्छी होती है।

दूसरे प्राणियों का मांस खाने वाले पशुओं के दांत सदा ही तेज फाड़ने वाले और लम्बे २ होते हैं। इन प्राणियों को मांसाहारी प्राणि कहते हैं। घास खाने वाले प्राणियों को शाकाहारी कहते हैं। उनमें से अनेक के तो कीले बिल्कुल ही नहीं होते।

मनुष्य भी शाकाहारी ही है। यह अवश्य है कि उसका भोजन न तो केवल घास ही है और प्राणियों का कच्चा मांस तो बिल्कुल ही नहीं है। वह शाक और फल दोनों को खाता है। फलों में उसको अपने कीलें से अनेक स्थलों पर काम लेना पड़ता है। अत. मामूली सहायता के लिये प्रकृति ने उसको चारों ओर एक २ कीला ही दिया है, हिंसक पशुओं के समान अनेक नहीं। अतः फल और शाक खाने से मनुष्य भी शाका-

हारी प्राणि ही है। मांस खाना मानव स्वभाव के विपरीत है। अत: मनुष्य को मास कभी नहीं खाना चाहिये।

दांत भीतर से खोखले होते हैं। दांतों में सब से बाहिर के श्वेत भाग का रासायनिक सगठन अस्थि जैसा होता है। उसको दन्त-वेष्ट या रुचक (Enamel) कहते हैं। दंत-वेष्ट में नाड़ियां नहीं होतीं। अत: यह अनुभव नहीं कर सकते। कभी २ दंत-वेष्ट में कीड़ा (Microbes) लग जाने से अम्ल उत्पन्न होकर वह गलने लगता है।

दंत-वेष्ट की नीचे की वस्तु को रदिन (Dentine) कहते हैं। यह दन्त-वेष्ट की अपेक्षा बहुत कोमल होती हुई भी पर्याप्त मात्रा में सख्त होती है। इसका रग हल्का पीलापन लिये श्वेत होता है। यह अर्द्धस्वच्छ होती है।

दात का खोखला भाग दंतकोष्ठ (Pulp Cavity) कहलाता है। इसके भीतर एक कोमल वस्तु भरी होती है। इसमे सूक्ष्म सौत्रिक-तंतु, कई प्रकार के मेल, रक्त-केशिकायें और वात-सूत्र (नाड़ी-सूत्र) होते हैं। इस मुलायम वस्तु को दन्त-मज्जा कहते हैं।

प्रत्येक दन्तमूल के शिखर मे एक छोटा छिद्र होता है। इसी छिद्र मे से होकर रक्त-वाहनिया और नाडिया (वात-सूत्र) दन्तकोष्ठ मे प्रवेश करती हैं।

अधिक गरम और ठण्डी वस्तुएं दान्तों को खराब कर देती हैं। अत्यंत उष्ण वस्तु के सेवन के पश्चात् बहुत ठंडी वस्तु का सेवन दन्तवेष्ट को हानि पहुंचाता है। उपरोक्त वाहनियों और

नाड़ियों मे हमारे द्वारा खाए हुए पदार्थों से कोई बाधा नहीं आती; किन्तु शक्कर उनको हानि पहुचाती है। यदि हमारे दात का रदिन कहीं पर खुल जाता है तो निश्चय से दात मे दर्द होने लगता है।

कभी २ ऐसा होता है कि एक दात का ही रदिन खुलने पर भी उस जबड़े के उस ओर के सभी दातों मे दर्द होने लगता है। इसका यह कारण है कि एक ओर के जबड़े में जाने वाली सब नाड़िया एक ही नाड़ी की शाखाएं हैं। अतएव उनके किसी भी भाग मे बाधा पहुचने पर सभी दातों मे दर्द होने लगता है।

पशुओं और जंगलियों के दांत हम से क्यों सुन्दर होते हैं?

पशुओं के दात बहुत कम गिरते है। जगली मनुष्यों के दांत भी बड़े मजबूत होते है और बहुत कम गिरते है। किन्तु हमारे दांत शीघ्र गिर जाते है। इसका प्रथम कारण तो यह है कि हमारे बच्चों को माताओं के रोगों अथवा चोचलों के कारण अपनी माता का पर्याप्त दूध नहीं मिलता। दूसरा कारण यह है कि हम अंग्रेजी भोजन की नकल करते जाते हैं। होटलों का टोस्ट (Toast) यद्यपि मुलायम भोजन है, किन्तु उसमे दातों का कुछ भी उपयोग न होने से टोस्ट खाने वालों के दात धीरे २ काम मे न आते हुए निर्बल पड़ जाते हैं, जब कि पशुओं और जगली मनुष्यों मे उसके ठीक विपरीत होता है।

दांतों से जितना ही काम लिया जावेगा वह उतने ही अधिक बलवान होंगे। रात्रि को सोते समय मुख को विशेष रूप से साफ कर लेना चाहिये।

ओष्ठ

ओष्ठ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। ओष्ठ मुख का पर्दा हैं। उनको बोलने अथवा खाने के अतिरिक्त समय में सदा बन्द रखना चाहिये, क्योंकि उनके खुले रहने से मुख से श्वास आवेगा, जो हानि प्रद है। ओठों मे बहुत सी नाड़ियां होती हैं।

ओष्ठो मे अधिक नाड़िया होने के कारण वह अत्यन्त ग्राहक होते हैं। वह मुख के रक्षक होने के कारण भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। जो वस्तु भोजन करने योग्य नहीं होती ओष्ठ उसको या तो ग्रहण नहीं करते अथवा निकाल कर बाहिर फेंक देते हैं। छोटे छोटे बच्चों में ओष्ठो का यह चमत्कार प्रायः देखा जाता है।

श्लैष्मिक कला

ओष्ठों के ऊपर बड़ा पतला चर्म होता है। ओष्ठों के भाग के मुख के अंदर जाने पर उस चर्म के स्थान म एक श्लैष्मिक कला या झिल्ली (Mucus membrane) बन जाती है। मुंह में चारों ओर और शरीर के अंदर भी एक प्रकार का चिकना और लसदार तरल बनता रहता है, जिसको श्लेष्म (Mucus) कहते हैं।

श्लेष्म

यद्यपि जुकाम के समय इससे विशेष कष्ट होता है किन्तु यह बड़ा उपयोगी पदार्थ होता है। यह सूक्ष्मजीवों (Microbes) को पकड़ कर उनको हमारे शरीर मे नहीं घुसने देता। सूक्ष्मजीवों के लिये यह विष का काम भी देता है। यह धूल को भी पकड लेता है। इसी के कारण मुख के अंदर के भाग बिना चिपके

हुए ठीक ठीक चलते रहते हैं। यह हमारे भोजन मे मिलकर उसको भी इतना चिकना बनाता है कि वह हमारे आमाशय में सुगमता से फिसल कर चला जावे।

मुख के अंदर की श्लैष्मिक झिल्ली मे से श्लेष्म का निकलना नाड़ीचक्र के शासन के आधीन है। चिन्ता अथवा भय के कारण मुख के सूख जाने से इस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष मे प्राय यह प्रथा है कि चोरी का मामला होने पर संदिग्ध व्यक्तियों को सूखे चावल निगलने को दिये जाते हैं। अपराधी मनुष्य का मस्तिष्क पहिले मे ही भयभीन रहता है। अतएव उसके मुख मे पर्याप्त रूक्षता होने से वह उक्त चावलों को निगलने मे असमर्थ प्रमाणित होता है, जिससे उसीका चोर होना प्रमाणित हो जाता है।

लार अथवा लाला

हमारे भोजन करते समय मुख मे एक और प्रकार का तरल पदार्थ उत्पन्न होता है। यह श्लेष्म से बिल्कुल भिन्न होता है। उसको लाला या लार (Saliva)कहते हैं। इसीलिये यह कहा जाता है कि उत्तम भोजन को देख कर मुंह मे पानी भर आया। लार मुख मे उत्पन्न न होकर जबड़े के नीचे और कान के सामने की कुछ विशेष ग्रन्थियों (Glands) मे उत्पन्न होती है। उन ग्रंथियों को लार-ग्रन्थिया अथवा लाला-ग्रन्थियां (Salivary Glands) कहते हैं। विषैले नागों में इन्हीं से विष निकलता है। इन ग्रन्थियों के पास का दांत सब से अन्त में टूटता है।

यह बतलाया जा चुका है कि लार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण

होती है। वह भोजन को केवल मुलायम ही नहीं बनाती, वरन् उसके अन्दर एक ऐसा विशेष रासायनिक पदार्थ होता है, जो स्टार्च को शक्कर बना देता है। हमारे अधिकाश भोजन मे स्टार्च के पदार्थ होते हैं। उस स्टार्च को पचने से पूर्व शक्कर रूप में परिवर्तित हो जाना आवश्यक है। इस क्रिया मे भोजन तरल हो जाता है। इस प्रकार भोजन के टूट जाने से शेष को सुगमता से पचाया जा सकता है।

भोजन तथा पाचन की विधि

यदि हम भोजन को निगल जाते है तो वह वह हमारे बहुत कम काम आता है और हमको अपच हो जाता है। किन्तु यदि भोजन को अच्छी तरह चबाया जाता है तो मुख मे बहुत सी लार उत्पन्न हो जाती है। यह सिद्ध हो गया है कि चबाने से मुख में लार उत्पन्न होती है। इस बात को हम अपने अन्दर ही अनुभव कर सकते हैं।

भोजन चबाते समय लार और भोजन मिल जाते हैं। फिर इस मिश्रण के ऊपर श्लेष्म लग जाता है। अब यह निगला जा सकता है, इससे पूर्व नहीं। पेट में पहुचने पर लार भोजन के स्टार्च को पचा कर उसकी शक्कर बना देती है। इस रूप मे इसको उष्णता और शक्ति देने के लिए रक्त में लेजाया जा सकता है। आयुर्वेद मे भोजन के इस शक्कर रूप को ही रस कहा है। पाचन क्रिया पेट में ही होती है। किन्तु पेट लार को नहीं बनाता।

लार भोजन के साथ २ मुख में से ही बन कर आती है। अतएव बिना भली प्रकार चबाये भोजन कभी नहीं करना चाहिये।

यदि पाचन क्रिया के इस प्रथक् कार्य को भली प्रकार कर लिया गया तो अवशिष्ट कार्य सुगमता से हो जाता है।

मुख का अध्ययन करते समय उसको ढकने वाले ओष्ठों, उनसे जुदी रहने वाली श्लैष्मिक झिल्ली, उसके शस्त्र रूप दांतों; तथा उसमे उत्पन्न होने वाली लार का वर्णन किया जा चुका। किन्तु मुख के अन्दर एक इंद्रिय इन सब से अधिक महत्वपूर्ण है। वह जीभ है।

जिव्हा

जिव्हा के उपयोग का कोई अन्त नहीं है। निम्न प्रकार के प्राणियों की जीभ के विषय मे भी यही बात सत्य है। मनुष्य की जिव्हा तो सब मे अधिक उपयोगी है; क्यों कि उसको यही बोलने का काम भी देती है।

जिव्हा वास्तव में कुछ मांसपेशियों का समूह मात्र ही होती है। कुछ पेशियां उसमे जड़ से फुंगल तक जाती हैं और कुछ उसके आरपार जाती हैं। इनमें से किसी भी पेशी का एक दूसरी से स्वतन्त्रता पूर्वक अथवा उसके साथ उपयोग किया जा सकता है। सारी जिह्वा को किसी भी दिशा में घुमाया जा सकता है। उसको छोटी अथवा बड़ी किया जा सकता है। उसको बच्चे के रोने जैसा शब्द निकालने के लिये खोखली किया जा सकता है।

ऐसा ज्ञान पड़ता है कि जिह्वा आरंभ में बोलने के लिए नहीं थी। इससे यह काम मनुष्य ने ही लिया है।

जिह्वा के और भी अनेक उपयोग हैं। यह मुख के अन्दर खोज २ कर भोजन को तलाश कर लेती है। बन्दर के जैसे कुछ प्राणियों में यह उनके गालों के गड्ढों मे भोजन भर देती है, जिससे उससे अवश्यकता के समय काम लिया जा सके।

भोजन निगलते समय प्रत्येक बार जिह्वा से काम लिया जाता है। भोजन को दांतों के नीचे ठीक २ दबाये और चबाये जाने के लिए जीभ ही घुमाती है। बिना जीभ को हिलाए कुछ भी नहीं निगला जा सकता।

जिह्वा मुख को स्वच्छ भी रखती है। यह अनिच्छित वस्तु को मुख मे जाने से भी रोकती है। शाक भाजी मे से डंठलों अथवा रोटी के बालों का पता जीभ ही लगाती है।

जिह्वा का सब से अधिक उपयोग यह है कि वह स्वाद लेने की रसना इन्द्रिय है। यह कुछ विशेष बिन्दुओ से ढकी हुई है। इन बिन्दुओ मे स्वाद की नाडियां मस्तिष्क मे आकर मिलती हैं। इन बिन्दुओं को स्वादकोष (Taste bulbs) कहते हैं। जिह्वा के ऊपर यह बडी भारी संख्या में होते हैं। जिह्वा के पिछले भाग पर स्वादकोषो की संख्या कम होती है। उस भाग से केवल निगलन और भोजन को गले के भीतर फेंकने का ही कार्य लिया जाता है। जीभ के भिन्न २ भाग भिन्न २ रसों को ग्रहण करते हैं। यह जान

पड़ता है कि रस मुख्य रूप से चार प्रकार के होते हैं। संभवतः प्रत्येक नस में पृथक् २ स्वादकोष और विशेष नाड़ियां होती हैं। चार मुख्य रस यह हैं—

जिह्वा अथवा रसना इन्द्रिय

अम्ल अथवा खट्टा (Acid)। कड़वा (bitter), मीठा (sweet) और क्षार अथवा नमकीन (salt), मधुर जिह्वा की नोक से, अम्ल किनारों से और कटुरस जिह्वा-मूल से अच्छी तरह जाने जाते हैं। शेष रस कुछ २ प्रत्येक भाग से जाने जा सकते हैं।

इन रसों में से अम्ल तथा क्षार का सम्बन्ध दो बड़े रासायनिक मिश्रणों के विभागों से है। मिष्ट रस का सम्बन्ध शक्कर के मिश्रणों (Sugar Compounds) से है। कड़वे रस का सम्बन्ध भी कुछ मिश्रणों से है।

इस प्रकार जिव्हा मनुष्यों में वाणी और रसना दोनों ही इन्द्रियों का काम देती है। स्वाद को केवल आनंद का साधन ही समझा जाता है। किन्तु मनुष्य की कोई इन्द्रिय केवल आनंद के लिये नहीं है। प्रत्येक का प्रथक् २ विशेष उपयोग है।

जिव्हा स्वाद और स्पर्श दोनों को ही बतलाती है। स्वाद के द्वारा यह रासायनिक ज्ञान भी कराती है। यह शक्कर को पहिचान कर उसको पसंद करती है, क्यों कि शक्कर हमारे लिये लाभ-प्रद है। यह भोजन की बुरी वस्तुओं को पहिचान कर उनको ग्रहण करने से निषेध कर देती है, जिससे उनको ग्रहण कर हम बीमार न हों।

मुख और जीभ का कार्य निगलने का है। भोजन तयार हो जाने पर जीभ के पीछे हलक के पास रखा जाता है। अब मस्तिष्क को उसके निगलने का संकेत मिलता है। मस्तिष्क फुप्फुसों को खोलने वाले नाड़ी-सेलों को आज्ञा देता है; वह मुख के कोमल कंठ को ऊपर को उठाता है, जिससे भोजन नाक में न जावे। तब वह हलक की पेशियों को एक निश्चित प्रकार से सिकोड़ता है, जिससे भोजन अपने ठीक मार्ग में से होता हुआ पेट में पहुंच जावे।

सोलहवां अध्याय

भोजन पचने की विधि

यह देख लिया गया कि किस प्रकार अच्छा चबाया हुआ भोजन लार के साथ मिल कर निगला जाकर आमाशय (Stomach) में पहुंचता है। आमाशय शरीर के खोखले अङ्गों में से सबसे बड़ा तथा सब से अधिक महत्वपूर्ण अंग है। किन्तु इसको खोखला कहते समय यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि यह बहुत कुछ 'फुटबाल' के समान होता है। उसके अन्दर खाली कोई स्थान नहीं होता। जब आमाशय खाली होता है—जैसा कि प्रत्येक समय भोजन करने के कुछ पूर्व होना चाहिये—तो उसकी दीवारें बिना वायु को फुटबाल के समान एक दूसरी से मिल जाती है। जब उसमें भोजन प्रवेश करता है तो वह उसके लिए स्थान दे देती है। भोजन जितना ही अधिक होगा आमाशय उतना ही अधिक बढ़ जावगा।

उदर (Abdomen) शरीर के अन्दर पेशियो की एक थैली है, जो यकृत (Level) अथवा जिगर के बायें भाग के नीचे शरीर के वामभाग में है। यकृत् शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि है। इस थैली के दो मुख हैं। एक ऊपर की ओर हलक का मार्ग है, जिसमें से भोजन आता है, दूसरा दाहिनी ओर है, जहा आमाशय तग और लगभग नोकीला हो जाता है। यह मार्ग छोटी आत मे जाता है।

इस थैली की दीवारें बड़ी सुन्दरता से बनी होती हैं। पहिले तो बाहिर की ओर एक बड़ा चिकना कोट होता है। इसीके कारण यह अपने पड़ोसियों के विरुद्ध स्वतन्त्रता से गति करती है। इसके पश्चात् एक और बीच का कोट होता है। यह पेशियो के सूत्रों (Muscular Fibres) का बना होता है। अन्त मे सबसे अन्दर एक श्लैष्मिक झिल्ली होती है।

बीच का अथवा पेशियों का कोट भिन्न-भिन्न दिशाओं मे जाने वाले सूत्रो की तीन तहों का बना होता है। इसके कर्तव्य बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। यह आमाशय के भोजन को बिलोता है। जब हम कोई वस्तु खा लेते हैं तो उदर में भिन्न २ प्रकार के सूत्र एक निश्चित ढंग से चलना आरम्भ कर देते हैं। यह बहुत समय तक—कभी २ तीन या चार घंटे तक—चलते रहते हैं। यह भोजन को आमाशय के एक कोने से दूसरे कोने मे फेंकते रहते हैं। उसको आगे पीछे यहा तक घुमाते रहते हैं कि उसका प्रत्येक भाग पच जाता है। भोजन कम या

अधिक कितना भी किया जावे, आमाशय की दीवारें उसके पास ही रहती हैं। अतएव वह उसको दबा कर मुलायम करने में सहायता देती हैं। किन्तु आमाशय के दांत नहीं होते, उसकी दीवारें भी अत्यन्त पतली होती हैं। वह हृदय की पेशियों की दीवारों से कहीं कम शक्तिशाली होती हैं। पक्षियों के भी दांत नहीं होते। किन्तु उनके शरीर में उस त्रुटि को पूर्ण करने की विशेष शक्ति होती है। यदि हम अपने दांतों से काम न लें तो आमाशय उनके एवज का कार्य नहीं कर सकता। यह अवश्य है कि उसकी पेशियों की दीवारें अपनी ओर से उद्योग करने में कोई त्रुटि नहीं करतीं। मनुष्य को अपनी स्वस्थ दशा में हृदय की धड़कन के अतिरिक्त इस प्रकार की किसी क्रिया का पता नहीं चलता।

आमाशय की आन्तरिक श्लैष्मिक झिल्ली और भी अधिक आश्चर्यजनक होती है। उसमें कुछ छोटी २ ग्रन्थियाँ (Glands) होती हैं, जो श्लेष्म (Mucus) उत्पन्न करती रहती हैं। उसमें दो अन्य प्रकार की ग्रन्थिया भी होती हैं। यह आमाशय के साथ २ छोटे २ गड्ढे अथवा नली जैसी होती हैं। यह जीवित सेलों की रेखाओं में होती हैं। इनका प्रभाव बड़ा आश्चर्यजनक होता है। इनमें से एक प्रकार की ग्रन्थि अभिद्रवहरिक अथवा हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड (Hydrocloric Acid) नाम का पदार्थ उत्पन्न करती हैं। साधारण क्षार (नमक) सभी प्राणियों के भोजन का आवश्यक अंग है। मनुष्य तथा अन्य अनेक प्राणियों में क्षार ही उस हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड को उत्पन्न करने का साधन है,

जो आमाशय की अम्ल ग्रन्थियों से उत्पन्न होता है। रक्त ग्रंथियों के सेलों में क्षार (Salt) अथवा सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) को लाता है। सेल उसके दो भाग कर देते हैं—अम्ल (Acid) और सज्जी खार (Alkali) । उनका बनाया हुआ अम्ल आमाशय मे जाकर भोजन को पचाने जैसा बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करता है। यदि कोई रसायनविद् सोडियम क्लोराइड के शरीर के बाहिर दो भाग करना चाहे तो वह ऐसा कर सकता है। किन्तु वह इस कार्य को बड़ा भारी कष्ट सहन कर और उन शक्तिशाली पदार्थों की सहायता से ही कर सकता है, जो शरीर मे बिल्कुल नहीं पाये जाते।

आमाशय की रासायनिक क्रियाएं

यह बात किसी की समझ में नहीं आती कि आमाशय की ग्रन्थियों के सेल ऐसे शक्तिशाली मिश्रण के किस प्रकार टुकड़े कर डालते हैं। ऐसा करने मे वह किसी शक्तिशाली अम्ल से काम नहीं लेते। कभी २ बीमारी के समय मनुष्योंके आमाशय में हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड (उज्जहरिक या अभिद्रवहरिक) न बनने के कारण रोगी को भोजन नहीं पचता, जिससे डाक्टर उसको औषधि रूप में अभिद्रवहरिक ही देता है।

आमाशय की दूसरे प्रकार की ग्रन्थियां भी कम आश्चर्यजनक नहीं होतीं। यदि इन ग्रन्थियों के सेलों को सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा भोजन से पूर्व देखा जावे तो उनमें कुछ विशेष प्रकार के कण (Specks

दिखलाई देते हैं। यह कण सेलों के द्वारा रक्त मे से बनाये जाते हैं। किन्तु यदि इन को भोजन के पश्चात देखा जावे तो इनमे से कोई भी दिखलाई नहीं देता।

पेप्सिन और उसका कार्य

इसका कारण यह है कि भोजन के आमाशय मे प्रवेश करने के लगभग आध घण्टे के पश्चात् ग्रन्थियों के सेल इन कणों को गला कर आमाशय मे डाल देते है। यहा आकर वह कण बिलोए जाने वाले भोजन मे मिल जाते हैं। इन कणों मे पेप्सिन(Pepsin) नामक एक पदार्थ होता है, जिसके बिना आमाशय भोजन को नहीं पचा सकता। बीमारी के समय रोगी के पेप्सिन बनाने में असमर्थ होने पर अन्य पशुओं के पेट से पेप्सिन निकाल कर रोगी को दिया जाता है।

यदि किसी स्वस्थ पुरुष को पेप्सिन या हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड दिये जावें तो उसका शरीर इन को स्वयं उत्पन्न करना बंद कर देगा। अतएव बिना विशेष आवश्यकता के इनको कभी नहीं लेना चाहिये।

अब हमको यह देखना है कि पेप्सिन और हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड भोजन का क्या करते हैं।

भोजन को रक्त में प्रवेश कराने के लिये किस प्रकार तयार किया जाता है?

हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड पहिले भोजन के कुछ भागों पर इस प्रकार की किया करता है कि वह पेप्सिन के लिये तयार हो जावें।

इसके पश्चात पेप्सिन उनको यहा तक पचाता है कि उनका दूसरा ही नया पदार्थ बन जाता है, जो रक्त मे मिल जाने योग्य होता है। तब आमाशय का आंतों की ओर का पक्वाशयिक द्वार खुलता है। यह मांसपेशी के मजबूत वृत्त (Ring) से सुरक्षित रहता है और इस पूरे समय भर मजबूती से बंद रहता है। आमाशय वाला पदार्थ थोडा २ करके इस द्वार मे जाता है। यहा तक कि आमाशय बिलकुल खाली हो जाता है।

यह आमाशय का कार्य है। इस स्थान मे लार या थूक पचाता है अथवा भोजन के स्टार्च को पचाना आरंभ करता है। यह वह थैली है, जो भोजन को थामे रहती है और उसकी रक्षा करती है। यह स्वास्थ्य का संरक्षक और आंतो से ठीक कार्य कराने वाला है। क्योंकि यह मुलायम बल्कि लगभग तरल पदार्थ के अतिरिक्त आंतों मे और कुछ नहीं जाने देता, और वह भी एक समय मे उचित परिमाण मे ही जाने देता है।

भोजन का असली पाचन आंतों में ही होता है। आमाशय तो उसको पचने के लिये तयार करता है।

आंतें

जिस भोजन को पचाया जाता है, उसके तीन भाग होते हैं— प्रोटीन अथवा ऐल्बुमेन (Proteins or Albumens), स्टार्च तथा शक्कर (Carbohydrates) और चिकनाई (fats)।

पहिले वर्ग का पाचन तो आमाशय मे ही हो जाता है।

दूसरे वर्ग का कुछ अंश आमाशय मे पचता है, किन्तु तीसरा वर्ग आमाशय में बिल्कुल ही नहीं पचता।

इस प्रकार दूध की चिकनाई अथवा घी का आमाशय में कोई परिवर्तन नहीं होता। वह वहा भी दूध के समान भोजन के ऊपर तैरता रहता है। आंतो में जाकर प्रत्येक पदार्थ पच जाता है।

आंत एक लच्छेदार लम्बी नली होती है। यह आमाशय के अंतिम सिरे से आरंभ होती है और गुदा तक जाती है। यह पच्चीस से लगाकर तीस फुट तक लम्बी होती है। इसके महत्वपूर्ण कार्य का अनुमान इसके लम्बे आकार से ही किया जा सकता है। प्रत्येक भोजन चौबीस से लगाकर छत्तीस घटों तक आतों में पड़ा पचता रहता है। यह वहा उपयोग के योग्य बनाया जाता है।

आमाशय के समान आत के भी उसी प्रकार के तीन कोट होते हैं। बीच का कोट पेशियों के सूत्र का बना होता है। यह आंतों के चारों ओर वृत्ताकार मे लिपटा होता है। इस अंतर का कारण यह है कि यहा आमाशय के रस को आगे पीछे बिलोने या झक-झोरने की आवश्यकता नहीं पड़ती; क्यो कि आमाशय उसको पहिले ही यहा रस बनाकर भेजना है। यहा उसको केवल धीरे २ आगे बढ़ने की आवश्यकता ही रहती है।

पचाने वाली आश्चर्यजनक ग्रंथियां

किन्तु आतों का श्लैष्मिक-कला का अन्दर का कोट अत्यन्त आश्चर्यजनक होता है। श्लेष्म उत्पन्न करने वाली ग्रंथियों के अतिरिक्त इसमें कुछ विशेष ग्रंथियां होती हैं, जो भोजन पचाने

के लिये खमीर उत्पन्न करती हैं। आंतों में अनेक प्रकार के खमीर (Ferments) उत्पन्न होते हैं। किन्तु आमाशय के जैसे पाचक खमीर आंत भी उत्पन्न नहीं करती। यह खमीर पैंक्रिया (Pancreas) नामकी एक विशेष प्रकार की ग्रन्थियों से उत्पन्न हुआ करते हैं। यह ग्रन्थियां मेरुदण्ड वाले सभी प्राणियों में होती हैं। यह चार इंच की एक नली द्वारा अपने रस को आंतों में पहुंचाती हैं।

पैंक्रियाओं के रस मे कम से कम चार प्रकार के खमीर होते हैं। जिनमे से तीन बड़े शक्तिशाली होते हैं। उनमें से एक ऐल्बुमेनों (Albumens) अथवा प्रोटीनों को पचाता है। दूसरा स्टार्च को और तीसरा चिकनाई (Fat) को पचाता है। यहां जाकर सब पदार्थ पच जाते हैं।

पैंक्रियाओं के सेलों का कार्य

पैंक्रियाओं के सेलों द्वारा बनाए हुए पदार्थ मे कण (Specks) होते हैं। इनको वह नलियो द्वारा भोजन में डाल देते हैं। आमाशय को छोड़ते समय भोजन अम्ल (Acid) रूप होता है। इस अम्ल के आतों मे प्रवेश करते ही पैंक्रियाओं को संकेत हो जाता है कि रस की आवश्यकता है। यदि पैंक्रियाओं का रस न आवे तो हमारे भोजन का स्निग्ध पदार्थ नहीं पचेगा। इससे हमारी सारी पाचन क्रिया के अतिरिक्त स्निग्ध पदार्थों (Fats) के पाचन को बड़ी भारी हानि उठानी पड़ती है। क्यों कि इन पैंक्रियाओं के रस का काम किसी दूसरे पदार्थ मे नहीं चल सकता।

यकृत भी अपने उत्पन्न किए हुये पदार्थ को पैंक्रियाओं के समान उसी स्थान पर आंतों मे भेजता है। इस पदार्थ का नाम पित्त (Bile) होता है। जब पित्त की उत्पत्ति में खराबी आ जाती है तो हम कहते हैं कि 'इसका पित्त बिगड़ गया है'। पित्त का रंग भूरापन लिये हुये पीला होता है। उसके इस रंग का कारण कणरंजक (Heamoglobin) होता है। यह पुराने रक्त के उन सेलों का होता है, जो यकृत् (Lever) में टूट जाते हैं। कोई खमीर न होने पर भी पित्त पाचन क्रिया मे कई प्रकार से सहायता देता है। यह जान पड़ता है कि यह भोजन के स्निग्ध पदार्थों को पैंक्रियाओ के रस के द्वारा क्रिया किये जाने योग्य बनाता है। यह स्निग्ध पदार्थ को तोड़ कर उसको अनेक छोटी २ बूंदों मे विभाजित कर देता है, जिससे उनके ऊपर भली प्रकार क्रिया की जा सके। पित्त सूक्ष्म जीवों के लिए भी विष है। इस प्रकार आमाशय हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड को तथा यकृत् पित्त को बनाते हैं। यदि यह दोनों स्वस्थ हों तो कैसे भी सूक्ष्मजीव भोजन के द्वारा हमारे शरीर मे प्रवेश करके हमको हानि नहीं पहुंचा सकते।

भोजन की शक्ति का रक्त में मिलना

जब भोजन ठीक २ पच कर रक्त में मिलने योग्य नया रसायनिक पदार्थ बन जाता है तो भोजन का व्यर्थ भाग—गोभी के डन्ठल जैसा व्यर्थ पदार्थ—अंतों में से गुदा के मार्ग से बाहिर निकल जाता है। अब उपयोगी और पचे हुए भाग को

रक्त में प्रवेश करना शेष रह जाता है। इस कार्य को वह एक विशेष रीति से करता है। अनेक फुट लम्बी आंतों की श्लैष्मिक कला में हमको एक नई वस्तु मिलती है। वह वस्तुएं छोटे २ उभार (Projections) होते हैं—आंतों में यह असंख्य—सहस्रों होते हैं। यह आतों के अन्दर की ओर होते हैं। यह सेलों की एक तह से ढके होते हैं। इन में बहुत सी रक्तवाहिनी केशिकाएं (Capillaries) होती हैं। इनका कार्य अन्य सभी ग्रंथियों से भिन्न प्रकार का होता है। यह भोजन को पचाने के लिए नहीं होते, वरन् उसको पी जाने (जज्ब करने)—पचने के पश्चात् उसको रक्त मे मिलाने के लिये होते हैं।

भोजन का सारा उद्देश्य भी यही है कि खाये हुए पदार्थ का सार (सत्व)रक्त मे मिल जावे। बाकी प्रत्येक बात का उद्देश्य उसको रक्त मे मिलने के लिये तयार करना है। इन श्लैष्मिक कला के जीवित उभारों या प्रवर्द्धनों (Projections) को ढकने वाले सेल जीवित और असाधारण रूप से चतुर होते हैं। वह आंतों मे से रक्त के लिये तयार पदार्थ को ले लेते हैं; और उसको अपने अन्दर से—तथा अपने अन्दर के रक्त कोषों की पतली दीवार में से निकालते हुए रक्त मे मिला देते हैं। यहा से रक्त की धारा उसको शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंचा देती है। किसी भी पशु की श्लैष्मिक झिल्ली को लेकर उसको उष्ण रख कर पर्याप्त समय तक जीवित रक्खा जा सकता है।

स्निग्ध पदार्थ शरीर में किस प्रकार मिल जाते हैं ?

किन्तु इस पदार्थ के साथ स्निग्ध पदार्थ रक्त में नहीं मिलते। चर्बी या स्निग्ध पदार्थ केशिकाओ में प्रवेश नहीं कर सकते। वह यकृत् में जाते हैं, जब कि दूसरे सेलों को उसकी आवश्यकता होती है। चर्बी लैक्टील (Lacteals) नाम के दूसरे कोषों (Vessels) मे जाती है। इसके द्वारा चर्बी शरीर के ऊपर के भाग में ले जाई जाती है, जहां लैक्टील उसको गर्दन के पास किसी बड़ी शिरा (Vein) में डाल देते हैं। लेक्टील नामका कारण यह है कि भोजन के पश्चात वह दूध से भरे हुए के समान दिखलाई देते हैं।

साराश यह है कि हम खाये हुए पदार्थ से जीवित न होकर जज्ब किये हुए पदार्थ से जीवित हैं। कोई मनुष्य प्रतिदिन संसार का अच्छे से अच्छा भोजन करता रहे, किन्तु उसको जज्ब न कर सके तो वह भूखा मर जावेगा। भोजन जब तक हमारे मुख, आमाशय अथवा आंतों में होता है, किसी काम का नहीं होता। वह हमारे रक्त में मिलकर ही हमारे काम आता है।

अधिक से अधिक किया हुआ भोजन भी बिना जज्ब हुए किसी काम नहीं आता। अतएव थोड़ा भूखा रह कर ही भोजन समाप्त कर देना चाहिये।

सतरहवां अध्याय

भोजन और उसके उपयोग

यह देखा जा चुका है कि पेशियां वह भट्टियाँ हैं, जहां इंधन को कार्य रूप में परिणत किया जाता है। पेशियों के उस इंधन का सामान्य नाम भोजन है। भोजन का एक बड़ा भाग प्रतिदिन पेशियों, हृदय, श्वास-संस्थान आदि के काम आता है।

शरीर के भट्टी और भोजन का इंधन होने का कारण शरीर को ऐसा भोजन ही मिलना चाहिए जो जले और काफी जले।

इस कार्य के लिए लकड़ी, कोयला और तेल बिल्कुल व्यर्थ हैं। कर्बन द्विओषित भी इस भोजन का कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि वह पहिले ही काफी जल चुकता है। किन्तु कर्बन के मिश्रणों में सब से सस्ता स्टार्च है। स्टार्च को शरीर के उपयोग में लाया जा सकता है।

यह जान कर कि संसार के सब प्राणि एक दूसरे में अनुस्यूत हैं— प्राणि पौदों को खाते हैं, पौदे प्राणियों को खाते हैं—यह आशा की जानी चाहिये कि स्टार्च उपयोगी होता है। यह देखा जा चुका है कि प्रत्येक हरी पत्ति जहां कहीं उस पर धूप पड़ती है—स्टार्च बना रही है। यह अनुमान लगाया जा चुका है कि प्राणियों को कितने स्टार्च की आवश्यकता है। एक वर्ग गज मे फैली हुई पत्तियां एक घंटे में स्टार्च के पन्द्रह दाने बनाती हैं। इस प्रकार यदि प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक स्टार्च को पत्तियों से ही लिया जावे तो १०० वर्ग गज में फैली हुई पत्तियों को पांच घंटे तक काम करना होगा। यह औसत परिमाण है। जितनी ही अधिक धूप पत्तियों पर पड़ेगी यह संख्या बढ़ती जावेगी।

यद्यपि स्टार्च हमारे शरीर में जलता है किन्तु यदि उसको हमारे शरीर के बाहिर रख कर शरीर के तापमान के अनुसार उष्णता पहुंचाई जावे तो वह नहीं जलता। शरीर के अंदर जलाने की विलक्षण शक्ति है। जलाने का कार्य खमीर (Ferment) नाम के रसायनिक पदार्थ द्वारा किया जाता है। यह शरीर के रक्त के प्रत्येक जीवित सेल में होता है।

यद्यपि मनुष्य की पेशियों के लिए स्टार्च मुख्य भोजन है किन्तु उसके साथ ही दूसरे प्रकार के भोजन की आवश्यकता भी पड़ती है।

शरीर में प्रतिदिन बाहिर से निम्नलिखित वस्तुएं आती हैं—

वायु, जल, प्रकाश, क्षार (Salts) इंधन रूप भोजन और प्रोटीनें। इनमें से एक-एक का प्रथक् २ वर्णन किया जावेगा।

वायु को हम भोजन कभी नहीं समझते, किन्तु उसका ओषजन (Oxygen) हमारे लिए भोजन से भी अधिक आवश्यक है। इसके नये से नये रूप की प्राणियों को प्रतिक्षण आवश्यकता पड़ती रहती है। यदि मनुष्य पर्याप्त परिमाण मे ओषजन का भोजन करें तो उनके शरीर दूसरे भोजन की अपेक्षा अधिक अच्छे रह सकते हैं।

प्राणियों के लिये जल की अनिवार्य आवश्यकता

प्राणियों के शरीर मे प्रतिदिन जाने वाली दूसरी वस्तु जल है। प्रत्येक प्राणि अपने शरीर से मूत्र-रूप में जल को निकालता रहता है। यदि उसकी क्षतिपूर्ति न की जावे तो उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। प्रकृति के कुछ कार्य तो मूत्र निकालने से भी अधिक आश्चर्य जनक हैं। जैसे एक प्रकार के पौदे की पत्तियों में एक प्रकार का पसीना आना, जड़ों द्वारा पानी लेकर उसको पत्तियों द्वारा निकाल देना, कितना विचित्र कार्य है। किन्तु यही प्रक्रिया मनुष्य शरीर में भी होरही है। हमारे शरीर मे से प्रतिदिन चर्म, फुफ्फुसों और गुर्दों की क्रियाओं से लगभग तीन सेर पानी निकल जाता है। इसका यह अभिप्राय है कि कम से कम इतना ही जल हमारे शरीर को प्रतिदिन मिलना चाहिये। अतएव पानी भी भोजन से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

मनुष्य अपने शरीर में चाहे जिस वस्तु का संग्रह कर सकता है और उसके बिना कुछ दिनों काम चला सकता है। किन्तु ओषजन कुछ मिनट के लिये भी एकत्रित नहीं किया जा सकता। भोजन, विशेषकर चर्बी के रूप में अवश्य ही शरीर में बहुत समय के लिए एकत्रित किया जा सकता है।

कोई मनुष्य दो माह तक उपवास कर सकता है। किन्तु इसका कारण यह है कि इस पूरे समय भर उसका शरीर अपने अन्दर की चर्बी से काम लेता रहता है। किन्तु जल को अपने शरीर मे कोई मनुष्य एकत्रित नहीं कर सकता। इस लिए उपवास करने वालों को जल अवश्य दिया जाता है।

इससे शरीर में प्यास के महत्व और उसकी भयंकरता का पता चलता है। बच्चे शीघ्र २ बढ़ते हैं। अतएव उनको पानी की आवश्यकता भी शीघ्र २ पड़ती है। बच्चे को जल न देने से अधिक उसके साथ और कोई क्रूरता नहीं हो सकती।

प्रकाश का जीवन में उपयोग

प्रकाश भी हमारे शरीर में प्रवेश करता है। प्रकाश में केवल धूप का ही अन्तर्भाव नहीं किया जाता, वरन् सूर्य और वायु के परमाणुओं से आने वाली प्रत्येक प्रकार की अदृश्य चमक का अन्तर्भाव किया जाता है; क्योंकि वह भी प्राणियों के शरीर में प्रवेश करती है। वह किरणें भी शक्ति का ही एक दूसरा रूप हैं। हम यह भी जानते हैं कि संसार में कोई वस्तु

कभी नष्ट नहीं होती। अतएव उन किरणों का उपयोग भी हमारे शरीर में पूर्णतया होता है, यद्यपि विज्ञान अभी उनका पता अच्छी तरह से नहीं लगा सका है।

नमक का उपयोग

नमक या क्षार से यह बात स्मरण हो आती है कि शरीर में न जलने योग्य भोजन भी जा सकता है; फिर चाहे वह शारीरिक तन्तुओं को न भी बनावे। कुछ क्षार तो जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। शरीर मे उनके बराबर निकलते रहने से शरीर को अधिकाधिक क्षारों की आवश्यकता पड़ती रहती है। विज्ञान अभी तक शरीर में उनके पूरे उपयोग का पता नहीं लगा सका है।

शरीर के लिये कई प्रकार के क्षारों की आवश्यकता है, यद्यपि प्रसिद्ध क्षार एक 'सोडियम क्लोराइड' ही हमारे भोजन में मिलता है। दूसरे प्रकार के क्षार भी हमारे भोजन में स्वाभाविक रूप से होने के कारण ही मिलते हैं। उदाहरणार्थ हमको चूने की आवश्यकता है। चूना अपने पानी की अपेक्षा दूध मे कहीं अधिक होता है। शाक और फल भी अपने क्षार के कारण ही अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। किन्तु शाकों को पकाते समय उनके क्षारों का बड़ा भारी भाग जल में मिल जाता है। मांस मे भी क्षार होता है। किन्तु जहां तक क्षारों का सम्बन्ध है फल सबसे अच्छे भोजन हैं।

हम साधारण नमक को मसालों के समान भोजन में स्वाद उत्पन्न करने का साधन ही समझते हैं, किन्तु वास्तव में वह

जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है। वह केवल रक्त और नाड़ी चक्र में ही आवश्यक कार्य नहीं करता, किन्तु वह आमाशय में एक ऐसे महत्वपूर्ण पदार्थ को भी उत्पन्न करता है, जिसके बिना पाचन कार्य ही कठिन अथवा असम्भव हो जावे। यदि हम यह समझ जावें कि साधारण नमक ही सोडियम क्लोराइड है तो हमारी समझ में यह तुरन्त आजावेगा कि वह नमक के तेजाब (हाईड्रोक्लोरिक ऐसिड) को उत्पन्न करता है, जो हमारे भोजन के लगभग आध घंटे पश्चात आमाशय मे डाला जाता है।

यदि किसी मनुष्य या अन्य प्राणि के शरीर को जलाया जावे तो केवल राख ही बाकी रह जाती है। इस राख में शरीर के नमक होते हैं, जो जल नहीं सकते। इनमे महत्वपूर्ण चूना है, जिससे अस्थियों और दांतों को शक्ति मिलती है। यदि किसी अस्थि को तेजाब मे डाल कर उसमे नमक घोल दिया जावे तो अस्थि बिल्कुल कोमल हो जावगी। यहां तक कि रस्सी के समान उसकी गिरह लगाई जा सकेगी। अतएव अस्थिया और दात बनाने वाले बच्चों और लड़कों के लिये तो यह क्षार अत्यन्त उपयोगी होते हैं। लोहे का क्षार भी रक्त के लिए आवश्यक है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि दूध में भी बहुत सा लोहे का क्षार होता है।

हमारा तीन प्रकार का भोजन

अब हमारे भोजन रूप जलने वाले आहार के विषय में विचार किया जाता है। वह केवल तीन प्रकार के होते हैं—कार-बोहाइड्रेट (स्टार्च और शक्कर का मिश्रण), स्निग्ध पदार्थ (चर्बी

बनानेवाले) और प्रोटीन। कारबोहाइड्रेट उस मिश्रण का नाम है, जिसमे स्टार्च जैसा कार्बन ओषजन (Oxygen) और उद्-जन (Hydrogen) मे मिला होता है। प्रोटीन के अन्दर कर्बन, उद्जन, ओषजन, नत्रजन (Nitrogen) और गन्धक होते हैं। यह पदार्थ सभी प्राणियों और शाकों में होते हैं। कारबोहाइड्रेट और स्निग्ध पदार्थ इंधन के अतिरिक्त कुछ और नहीं होते। वह शरीर के अन्दर जलकर उष्णता और शक्ति उत्पन्न करते हैं।

अनेक स्निग्ध पदार्थ प्राणियों से आते हैं। जैसे—चर्बी, अण्डे का जर्दा, घी, मलाई और मक्खन। शरीर को इंधन मिलना ही चाहिये, फिर वह स्निग्ध पदार्थ, शक्कर अथवा स्टार्च किसी भी रूप मे भी क्यो न हो। किन्तु शकर और स्टार्च मे स्निग्ध पदार्थों से यह सुगमता है कि वह सस्ते होने के अतिरिक्त पच भी शीघ्रता से जाते हैं।

शरीर में जलने और उसको पुष्ट करने वाला भोजन

शकर तुरन्त पच कर अपना प्रभाव दिखलाती है। इसी कारण बच्चे—जो इतने चंचल होते हैं—स्वभावतः शकर और मिष्ट पदार्थों के प्रेमी होते हैं। यदि बच्चों को उनकी इच्छानुसार मीठी वस्तुएं दी जावें तो वह उतने बीमार कभी नहीं हो सकते, जितने वह बिना शकर के हो जाते हैं।

अन्तिम प्रकार का भोजन प्रोटीनें हैं। उनमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिससे भोजन में वह सब से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

प्रोटीनें अनेक प्रकार की होती हैं और उनमें से अधिकांश

हमारे लिए उपयोगी भोजन होती हैं। वह पाचन-क्रिया के द्वारा हमारे रक्त में पाई जाने वाली विशेष प्रकार की प्रोटीन बन जाती है।

मनुष्य को कितने ही अधिक जल, क्षार, स्टार्च, शक्कर और स्निग्ध पदार्थ दिये जाने पर भी वह प्रोटीनो के बिना जीवित नहीं रह सकता। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि प्रोटीनो की आवश्यकता शक्कर और स्टार्च के समान जलने के लिए नहीं होती, वरन् शरीर की क्षति-पूर्ति के लिये होती है। आवश्यकता पड़ने पर प्रोटीनों से जलाने का कार्य भी लिया जा सकता है। उस समय स्निग्ध पदार्थों तथा कारबोहाइड्रेटो के बिना भी काम चल सकता है। अधिक प्रोटीन को मास के रूप मे बहुत कम व्यक्ति खाते है। यदि शक्कर, स्टार्च और स्निग्ध पदार्थों का अधिक सेवन किया जावे तो वह शरीर मे चर्बी के रूप मे एकत्रित हो जाते हैं। प्रोटीन की यह एक विशेषता है कि वह शरीर मे एकत्रित नहीं की जा सकती।

हमको यह जान लेना चाहिये कि इन मे से किस २ वस्तु की हमको कितने परिमाण मे प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है।

भोजन का परिमाण शरीर के कार्य पर निर्भर है

शरीर के आकार का भोजन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जलवायु और वस्त्र भी भोजन की आवश्यकता पर प्रभाव डालते है। उष्ण वायु में हमारी उष्णता कम निकलती है, अतएव उस समय हमको कम इंधन की आवश्यकता होती है। गर्मियों मे हमारी भूख स्वभावतः ही कम हो जाती है। सर्दियों में उष्णता उत्पन्न

करने वाले भोजन की अधिक आवश्यकता होती है। वस्त्र भी जितने ही अधिक पहने जावेंगे भोजन की आवश्यकता कम होगी।

पेशियों के कार्य का भोजन के परिमाण पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। अधिक शारीरिक परिश्रम करने वालों की भूख सदा ही अधिक लगा करती है। मस्तिष्क के काम का भूख पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

इन सब दशाओं में स्निग्ध पदार्थों और कारबोहाईड्रेटों का परिमाण भी बदलता रहता है। प्रोटीनों का परिमाण प्रत्येक दशा में एक सा रहता है।

एक मनुष्य की दैनिक औसत खुराक लगभग ३ सेर जल, आधी छटांक नमक, नौ छटांक शक्कर और स्टार्च, डेढ़ छटांक स्निग्ध पदार्थ और डेढ़ छटांक प्रोटीन होती है। अधिक परिश्रम करने पर प्रोटीन के अतिरिक्त सभी भोजन के परिमाण को बढ़ा देना चाहिये। उसी प्रकार बिस्तर पर पड़े रहने पर इन सब के परिमाण को घटा देना चाहिये।

बच्चे बड़ों से अधिक भोजन क्यों करते हैं?

यद्यपि शरीर के आकार से भोजन का परिमाण भी बदल जाता है, किन्तु एक छोटे से आदमी को उसी तोल के बच्चे से कम भोजन की आवश्यकता होती है। बच्चों को अपनी तोल से अधिक भोजन की आवश्यकता होती है; क्यों कि बड़े आदमी जहां केवल अपने शरीर की रक्षा करते हैं वहां बच्चे अपने शरीर को बढ़ाते रहते हैं। अतएव बच्चों को परिमाण की

अपेक्षा अधिक भोजन की ही आवश्यकता नहीं होती, वरन् उन को अधिक प्रोटीन की भी आवश्यकता होती है; क्यों कि केवल प्रोटीन ही जीवित तन्तुओ (Tissues) को बना सकती है।

बच्चों की दूसरी बड़ी आवश्यकता चूना है। अस्थियों और दांतों के लिये चूना बड़ा उपयोगी होना है।

शरीर के बचपन में बनने के कारण बच्चों को अच्छे से से अच्छा भोजन देना चाहिए। आरंभिक अवस्था मे अत्यंत कम, अत्यंत अधिक अथवा गलत भोजन देने से बच्चे का शरीर एक दम बिगड़ जाता है। बच्चो के लिये दूध सब से अधिक आवश्यक भोजन है। खेद की बात है कि भारतवर्ष मे दूध के लगातार कम होते जाने से बच्चों की मृत्यु-संख्या भी प्रतिवर्ष अधिकाधिक ही होती जाती है। बहुत से बालक असमय मे ही काल के गाल मे चले जाते हैं। बहुतों की वृद्धि रुक जाती है। वह बारह वर्ष की आयु मे ही नौ वर्ष के जैसे जंचते हैं।

किन्तु अधिक भोजन मिलने वाले स्थानों में भी बच्चों को मूर्खतापूर्ण और हानिप्रद ढग से भोजन मिलने के कारण उनके भावी जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आजकल के फैशनेबिल माता पिता बच्चों को आरभ से ही चाय आदि हानिकारक वस्तुएं देनी आरंभ कर देते हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य के साथ-साथ उनका आचरण भी खराब होता जाता है।

अठारहवां अध्याय

प्रकृति का आश्चर्यजनक भोजन—दूध

मनुष्य के भोजन में दूध गेहूं से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि गेहूँ जहां प्राय: मनुष्य के ही उपयोग मे आता है, दूध सभी स्तनपोषित-प्राणियों के उपयोग में आता है। 'स्तनपोषित' शब्द का अर्थ ही यह है कि जिनका पालन स्तनों के दुग्ध से हुआ हो। संसार मे जितने भी स्तनपोषितप्राणि हैं दूध भी उतने ही प्रकार का होता है। प्रत्येक प्रकार के दूध के अन्दर पौष्टिक तत्वों का परिमाण भी भिन्न २ ही होता है।

उदाहरणार्थ, बकरी के दूध मे स्त्री अथवा गौ के दूध से चर्बी (Fat) अधिक होती है। स्त्री के दूध से तो उसमे दुगुनी चर्बी होती है। स्त्री के दूध में गौ के दूध से शक्कर अधिक होती है। बकरी के दूध से तो उनमे कहीं अधिक शक्कर होती है। किन्तु स्त्री के दूध में क्षार बहुत कम होते हैं।

प्रत्येक प्रकार के दूध मे भिन्न २ परिमाण में प्रोटीन, शक्कर, चर्बी और भिन्न २ प्रकार के क्षार होते हैं। यहां केवल गौ के

दूध के सम्बन्ध में ही विचार किया जावेगा; क्योंकि बाहिर के दूधों में से मनुष्य गऊ के दूध का अधिक प्रयोग करता है। गौ का दूध वास्तव में प्रकृति द्वारा उसके बच्चे के लिये बनाया गया है। अत: वह जितना पूर्ण और अनुकूल गाय के बच्चे के लिए होता है, उतना मनुष्य के लिये नहीं होता। गौ के दूध में जल हमारी सुविधा से कहीं अधिक होता है। तो भी मनुष्य स्वभाव के अनुकूल गौ के दूध से अधिक और कोई भोजन नहीं होता। बड़े से बड़े रोगों के पश्चात् भी केवल गौ के दूध का ही सेवन करके स्वास्थ्य प्राप्त किया जाता है।

बच्चों को विशेषरूप से दूध पर ही रखना चाहिये। बच्चे को दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ष तक ताजा यथेष्ट दूध देना चाहिये। प्राय भारतीय स्त्री पुरुष दूध को पतला समझ कर भोजन नहीं मानते। किन्तु उनको स्मरण रखना चाहिए कि शक्कर का बड़ा भारी परिमाण भी दूध में घुल कर ला पता हो जाता है। दूध पेट में जाते ही ठोस भोजन बन जाता है।

दूध के तत्व

दूध में एक विशेष प्रकार की शक्कर होती है। यद्यपि यह सामान्य शक्कर के जैसी मीठी नहीं होती, किन्तु इस पर किसी भी प्रकार के कीटाणुओं (Microbes) का प्रभाव नहीं हो सकता। इसको दुग्ध-शर्करा (Sugar of milk) कहते हैं। दूध के क्षारों से ही अस्थियां और दांत बनते हैं। उसमें निम्नलिखित तत्व होते हैं—

पोटैशियम, सोडियम, कैलसियम, मग्न (मैगनेशियम), लोहा, स्फुर (Phosphorus) और क्लोरीन (Chlorine)। इनमें पोटैशियम का परिमाण सब से अधिक होता है, क्योंकि इसी से मासपेशिया बनती हैं। चूना भी अडे की जर्दी के अतिरिक्त दूध के जितना अन्य किसी पदार्थ में नहीं होता।

भिन्न २ प्रकार के प्राणियों के दूध में निम्न लिखित परिमाण के भिन्न २ पदार्थ होते हैं—

प्राणि	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
यूरोपियनस्त्री	१ २५	३ ५	७'०	० २	८८'०५
भारतीय स्त्री	१'२	२ ८०	५'६०	०'२४	८९ ८६
गाय	३ ५	४ ०	३'५	०'७५	८७ २५
घोड़ी	२ ०	१ २०	६ ६५	० ३६	९०.७६
गधी	२'२५	१ ६५	६ ००	० ५०	८९ ६०
बकरी	४ ३	४ ७८	४'४६	०'७५	८५ ७१
भैंस	६ ११	७ ४५	४'१७	० ८७	८१ ४०

गधी का दूध स्त्री के दूध से बहुत कुछ मिलता जुलता है। उसमें स्त्री के दूध से वसा कम होती है। जिस समय बालक को माता का दूध मुआफिक न आवे अथवा यकृत रोग के कारण उसको कम

वसा देना उचित समझा जावे तो उसको गधी का दूध पिलाना चाहिये। घोड़ी के दुग्ध मे वसा और भी कम होती है।

दुग्ध के क्षार

स्त्री के दुग्ध की राख में निम्न लिखित क्षार पाये जाते हैं—

कैल्शियम फोस्फेट	२३·८७	प्रति शतक
„ सल्फेट	२·२५	„
„ कार्बोनेट	२·२५	„
„ सिलीकेट	१·२७	„
पोटैशियम कार्बोनेट	२३·४७	„
„ क्लोराइड	१२·०५	„
„ सल्फेट	८·३३	„
मग्नेशियम कार्बोनेट	३·७७	„
सोडियम क्लोराइड	२१·७७	„
फेरिक ओक्साइड अथवा ऐल्युमीनियम	०·३७	
	१००·००	„

दूध की बनी हुई अन्य वस्तुओं में निम्न लिखित प्रतिशतक भिन्न २ पदार्थ होते हैं'—

दुग्धीय पदार्थ	प्रोटीन	वसा	शर्करा	क्षार	जल
माखन	२'००	८५ ००	०	१ ००	१२·९५
घृत	०	१०० ०	०	०	०
पनीर	१८'२१	२७ ८३	२'५०	४'८६	३६·६०
दही	२४ ०६	२ ५	०	१ १	७२'८८
तोड़ (दही का पानी)	० ८२	० २४	४ ६५	० ६५	९३·६४
* बालाई अथवा क्रीम	२ ५	२० से ६५तक	४'५	० ५	शेष
मलाई	कुछ	थोड़ी	०	थोड़े कैल्शियम मिश्रण	०

* कच्चे दूध को कुछ देर के लिये एक ठंडे स्थान मे रख देने से थोड़ी देर के पश्चात् वसा का अधिक भाग उसके ऊपर तर आवेगा। अधिक वसा वाला दूध का यह ऊपर का गाढ़ा भाग 'बालाई' अथवा 'सार' (अंग्रेजी में क्रीम-Cream) कहलाता है।

गरम दूध के ऊपर उबाल आने से पूर्व ही दूध की प्रोटीन एक पपड़ी के रूप में जम जाती है। इसको मलाई कहते है।

क्रीम में दूध की सभी वसा नहीं आ जाती । पर्याप्त प्रोटीन होने के कारण क्रीम पूर्ण भोजन न होते हुये भी बड़ा अच्छा भोजन है।

क्रीम के पश्चात माखन अच्छा भोजन है। यह बड़ी सुगमता से पच जाता है।

प्राणियों की चर्बियों और कुछ वनस्पतियों से एक प्रकार का नकली मक्खन (Margarine) बनता है। इसमें मक्खन के जितने अनुपात मे ही वसा होती है। यह भी अच्छा बना रहता है और कहीं २ मक्खन का काम दे जाता है।

पनीर को मांस से भी अधिक पौष्टिक माना जाता है।

दूध वास्तव मे सब से अच्छा भोजन है। यह अधिक मस्तिष्क वाले प्राणियों मे मस्तिष्क के विकास के लिए उत्पन्न होता है। मस्तिष्क का काम करने वालो के लिये दूध और क्रीम से अधिक उपयुक्त कोई भोजन नहीं है। इसका रंग यद्यपि श्वेत होता है किन्तु वह रक्त को लाल बनाता है। वास्तव मे रक्त को लाल करने वाला लोहा होता है और वह दूध में पर्याप्त मात्रा में होता है।

शुद्ध दूध को लेने और रखने का उपाय

सबसे अच्छा दूध मिलने का उपाय गौओं की सेवा करना, उनको निरोग रखना और उनको उत्तम चारा देना है। उनको अच्छी हवा और धूप देनी भी आवश्यक है। दूध को शुद्ध हाथों से शुद्ध बर्तन में दुहना चाहिये। दुहने वाले को अपने बालों और

कपड़ों को उबाले हुए कपड़े से बांध लेना चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में दूध को तुरन्त ठंडा करके बोतलों में भर देना चाहिये और ऊपर से डाट लगा देना चाहिये। दूध में हवा नहीं लगनी चाहिये, क्योंकि हवा लगते ही उसके सूक्ष्मजीव (Microbes) दूध में आ मिलते हैं।

आजकल हमारी असावधानी के कारण ही दूध सब कहीं क्षय रोग उत्पन्न करने का साधन बन रहा है। उष्ण देशों में तो यह बीसियों सहस्र बच्चों को मार देता है और टाइफाइड फीवर (संतत ज्वर) आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करता है। अतएव दूध के विषय में अधिक से अधिक सतर्क रहना चाहिये।

उन्नीसवां अध्याय

रोटी

दूध के पश्चात मनुष्य का दूसरा महत्वपूर्ण भोजन रोटी है। वास्तव मे रोटी के बिना मनुष्य का जीवन बड़ा क्लिष्ट हो जाता। उपनिषदों मे लिखा है कि 'अन्नं वै प्राणा:'

अर्थात् अन्न ही प्राण हैं। गेहूं हमारे भोजन का सबसे मुख्य पदार्थ है। गेहूँ के दाने मे कुछ तो छोटे पौदे के कीटाणु (Germs) होते हैं और कुछ उसमे खाद्य-सामग्री रहती है। सभी प्रकार के अन्नो मे सब से अधिक परिमाण श्वेतसार अथवा स्टार्च (Starch) का होता है। प्रोटीन और वसा तो उनमें अत्यल्प मात्रा में होती है। इसी कारण गेहूँ की रोटी को घी, पनीर, मक्खन अथवा दही से खाया जाता है।

यह आवश्यक है कि गेहूं को इस प्रकार पिसवाया जावे कि उसकी मैदा न बन कर वह दरदरा आटा ही बना रहे। इससे उसका श्वेतसार नष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त इससे रोटी भी अच्छी बनती है। पाश्चात्य देशों में रोटी बनाने की भी एक से एक उत्तम विधियां निकाली जा रही हैं। बहुत कुछ विशेषज्ञों के हाथ

का खाने के कारण भी पाश्चात्य देशों में सब घरों में रोटी नहीं बनती। वहां प्राय: होटल मे खाना खाया जाता है अथवा गरीब आदमी रोटी वालेकी दूकान से रोटी ले आते हैं।

भिन्न २ अनाजों मे निम्नलिखित प्रतिशतक परिणाम में भिन्न २ पदार्थ होते हैं।

अन्नवर्ग

नाम	प्रोटीन	वसा (स्नेह)	श्वेतसार	खनिज पदार्थ	जल
गेहूँ अथवा उसका बिना छना आटा	११'४७	२ ०४	७० ६०	३ १४	११ ८३
जौ	८ ९२	१ ९०	७६ १०	२'३	१२ ३
मक्का	९५ २	४ ४४	६८ ६	३ ७५	११ ५०
चावल	६'६२	० ५०	८१ ०७	१ ०५	११ ०५
बाजरा	८'७२	४ ७६	७३ ४०	१'५ से २'०तक	११ से १२ तक
ज्वार	७ ६७	२ ७७	६७ २६		
गेहूँ का आटा (छना हुआ)	१० ७	१ १०	७५ ४	०५	
फूल मैदा	७'६	१ ४	७६'४	०'५	
चोकर (गेहूँ की)	१६'४	३'५	४३'६	६०	१२'५

इस तालिका से प्रगट है कि बिना छने गेहूँ के आटे में छने हुए आटे और फूल मैदा की अपेक्षा अधिक प्रोटीन होती है। चोकर (गेहूं के छिलके) में प्रोटीन और क्षार दोनों ही अधिक होते हैं। अतः छने हुए आटे की अपेक्षा मोटा अथवा बिना छना आटा सदा अच्छा रहता है।

चावल पचने में बहुत अच्छा नहीं होता। उसमें श्वेतसार अधिक होता है और प्रोटीन कम होती है।

जौ बड़ा उपयोगी होता है। यदि आधे जौ और आधे गेहूँ मिला कर रोटी बनाई जावे तो वह और भी अच्छी रहती है। पाश्चात्य देशों में जौ बहुत होता है। किन्तु वहां के निवासी इसका उपयोग भोजन में करने की अपेक्षा भोजन की शत्रु—शराब के बनाने मे करते हैं।

ज्वार अमरीका मे बहुत होती है। अतएव वहां के निवासी ज्वार को ही अधिक खाते है। यह बड़ी सस्ती, पौष्टिक और पचने वाली होती है।

मक्का में वसा बहुत होती है और चावल में कम होती है। इसी लिये उत्तर के ठंडे देशों वाले चावल की अपेक्षा मक्का अधिक खाते हैं। स्काटलैंड वाले तो मक्का को विशेष रूप से पसन्द करते हैं और सम्भवतः इसी कारण वह बलवान भी अधिक होते है। किन्तु इसके कठिनता से पचने के कारण अधिक पाचन-शक्ति वाले ही इसका सेवन कर सकते हैं। मक्का के सेवन करने से ही स्काटलैण्ड वाले पृथ्वी भर मे सब से लम्बे और भारी

होते रहे हैं; यद्यपि अब वहां भी मक्का का प्रचार कम होते जाने से उनकी सन्तति उत्तरोत्तर कम लम्बी और हल्की होती जाती है।

हमारे भोजन में भी सूर्य की शक्ति ही काम करती है

हम जानते हैं कि सभी प्राणि हरी वनस्पतियों के आहार पर जीते हैं और वनस्पति सूर्य से जीते हैं। रोटी हरी नहीं होती और न अन्न ही हरा होता है। अन्न घास की हरी पत्तियों मे घास से ही बनता है। रोटी खाते समय हम इस बात को बिल्कुल भूल जाते कि हम वास्तव मे उस घास को ही खा रहे है जो धूप, वायु और उपजाऊ पृथ्वी द्वारा बनाई गई है। हम धूप की शक्ति, वायु के कर्बन तथा उपजाऊ पृथ्वी की दूसरी वस्तुओं को अपने मुख मे डालते हैं। छोटे से छोटे प्राणि अमीबा से लगा कर बड़े २ कवि, माताएं और बच्चे सभी घास खाकर ही जीते हैं। यही बात मांस खानेवालों के विषय मे भी है, क्योंकि मांस भी घास से ही बनता है।

अतएव संसार के सभी प्राणि शाकाहारी हैं और घास की उत्पत्ति प्राणियों, पौदों और जीवनदायक सूर्य से होती है।

जीवन की शत्रु—शराब

शराब का सेवन इस समय संसार के सब भागों मे किया जाता है। ठंडे देश वाले तो इसका विशेष रूप से सेवन करते हैं। अकेली ब्रिटिश जाति ही प्रति वर्ष अरबों पौण्ड की शराब पी जाती है। यह अनुमान किया जाता है कि यह जाति प्रति दिन दस लाख पौंड की शराब पी जाती है।

चिकित्सा विशेषज्ञों का कहना है कि इतने रुपये से प्रतिदिन

मृत्यु, रोग, अपराध, निर्धनता, उन्माद, बच्चों के प्रति निर्दयता, अशुभ कार्य, जीवन की शंका और राज्य की हानि मोल लेने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा हो कि इस रुपये को प्रतिदिन समुद्र मे फेंक दिया जाया करे।

इंगलैण्ड मे तारीख १ अप्रैल सन् १६०९ को एक बच्चों का का कानून (Children Act) बना था। इसके अनुसार पाँच वर्ष से कम अवस्था वाले किसी बच्चे को रोगावस्था मे डाक्टर की सम्मति के अतिरिक्त समय मे शराब नहीं दी जा सकती थी। इसके अनुसार चौदह वर्ष से कम का कोई बच्चा शराब खाने मे नहीं जा सकता था।

पाश्चात्य देशों ने अनक वर्षों तक शराब की हानियों को देख कर इसके विरुद्ध आन्दोलन करना आरंभ किया। आजकल प्रत्येक देश मे टेम्प्रेस सोसाइटियां बन गई हैं, जो मद्यपान के विरुद्ध प्रचार करती हैं।

शराब का सब से अधिक विरोधी अमरीका है। अमरीका मे बहुत वर्षों से एक कानून बना हुआ है, जिसके अनुसार वहां की भूमि पर शराब नहीं लाई जा सकती। यही नहीं, वहा चोरी से शराब लाने वाले देशी और विदेशी जहाजों को कठिन दंड भी दिया जाता था। शराब पीने में सबसे अधिक बदनाम इंगलैंड है। किन्तु वहा भी शराब के विरुद्ध बड़ा भारी आन्दोलन किया जा रहा है। बच्चों के कानून का उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है। बाद में वहा शिक्षा विभाग ने सरकारी तौर से

शराब के विरुद्ध एक ट्रैक्ट प्रकाशित करके उसको सब शिक्षा संस्थाओं में भेजा; जिससे बच्चों को शराब से अधिक से अधिक बचाया जा सके। इस ट्रैक्ट मे बड़े विस्तार से शराब से होने वाली हानियों को बतलाया गया था।

इस ट्रैक्ट मे बड़ी सफलता से यह भी सिद्ध किया गया है कि सर्दी से बचने मे भी शराब उपयोगी नहीं होती। इससे नशे के कारण नाड़ियां शून्य हो जाती हैं, जिससे सर्दी या गर्मी कुछ भी नहीं लगती। उत्तरी ध्रुव के अनेक यात्रियों ने अपनी अनेक यात्राओं मे बिलकुल शराब नहीं पी। अतः यह सोचना बिल्कुल व्यर्थ है कि शराब से सर्दी नहीं लगती।

बीसवां अध्याय

शरीर का नाड़ी-चक्र

यदि एक नाड़ी (वातरज्जु) अथवा नस को लेकर देखा जावे तो पता चलता है कि वह अनेक छोटे २ सूत्रों की बनी हुई एक रस्सी होती है। बड़ी नाड़ी में अनेक रस्सियां होती हैं, जो शरीर मे साथ २ यात्रा करती हैं।

संभवत: वनस्पति-कायिक प्राणियों के शरीर मे कोई नाड़ी नहीं होती। किन्तु उनके अतिरिक्त अन्य प्राणियों मे नाड़ियां अवश्य होती हैं। ज्यों २ उच्च कोटि के प्राणियों को देखा जाता है, उनमे नाड़ियों की संख्या बढ़ती जाती है। मनुष्य में तो उनकी संख्या और उनका महत्व बहुत ही अधिक है। मनुष्य शरीर का कोई भाग नाड़ियों से खाली नहीं है।

नाड़ी-सूत्र की परीक्षा करने पर पता चलता है कि वह बड़ा लम्बा धागा होता है, जो चारों ओर से एक विशेष प्रकार की वसा (चर्बी) के खोल से लिपटा होता है। चालक नाड़ियो और सांवेदनिक नाड़ियों के विषय मे पीछे बतलाया जा चुका है कि

वह सारे शरीर मे होती हैं। यह नाड़ियां समाचार के तार के समान होती हैं। यह समाचार को बनाती नहीं, वरन् उनको ले जाती है।

समाचार के तार मे बिजली की करेंट जाती है। जब तक तार टूटते नहीं और ठीक २ एक दूसरे से प्रथक् रहते हैं उनमे करेंट दौडती रहती है। यह स्पष्ट है कि तार जीवित नहीं होता। अतएव नाडी मे एक ऐसा भारी रहस्य है जो तार मे भी नही है।

नाडी मे उल्लेखनीय बात यह है कि वह जीवित रहते हुए ही ले जाने का कार्य कर सकती है। इस विषय मे किसी मृतक पशु की नाड़ी को निकाल कर उसका अनेक प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है। यदि उसको थोड़ा नमक मिले हुए पानी मे रख कर कुछ समय तक देखा जावे तो वह पर्याप्त समय तक जीवित रह सकती है। जब तक वह जीवित है, अपने वह एक कोने के दूसरे कोने पर कार्य की सूचना देती रहती है। किन्तु मर जाने पर वह धागे के समान कोई भी सूचना देने मे असमर्थ होजाती है। नाड़ी के जीवन और मरण के अन्तर को समझना लगभग असभव है। सूक्ष्म दर्शक यंत्र मे इस प्रकार का कोई अन्तर दिखलाई नहीं देता।

नाडी के अन्दर दौड़ने वाली वस्तु को नाड़ी की करेंट अथवा नाड़ी प्रवाह (Nerve Current) कहते हैं। करेंट अथवा प्रवाह का अर्थ ही बहना अथवा दौड़ना है।

नाड़ी-प्रवाह का रहस्य

यह बिजली नहीं है। जिस समय नाड़ी मे नाड़ी-प्रवाह होता

है तो बड़े २ विचित्र परिवर्तन होते रहते है। इन परिवर्तनों मे अनेक प्रकार के विद्युत्प्रवाह भी होते है। नाड़ी में नाड़ी-प्रवाह के होने पर एक बिजली जैसा परिवर्तन हो जाता है। इस परि-वर्तन को समझने से ही नाड़ी को समझने मे सहायता मिल सकती है। किन्तु यह समझना भूल है कि नाड़ी-प्रवाह बिजली का होता है। नाडी-प्रवाह की गति बिजली की गति की अपेक्षा अत्यंत मन्द होती है। नाड़ी-प्रवाह की लगभग वही गति होती है, जिस गति पर एक क्रिकेट की गेंद को फेंका जा सकता है। बिजली का प्रवाह उससे सैकड़ों, वरन् सहस्रों गुना तेज होता है।

टेलीग्राफ के तार के समान नाड़ी मे नाड़ी-प्रवाह होते समय किसी वस्तु से काम नही लिया जाता। अतएव नाड़ी कभी नहीं थक सकती। जब तक वह जीवित है उसमे चाहे जब तक प्रवाह (करंट) को भजा जा सकता है। किन्तु नाडी के सेलों का मामला बिल्कुल ही दूसरा है।

प्रत्येक नाडी-सूत्र (Nerve Fibre) नाड़ी सेलों (Nerve cells) में से ही बढता है। यह उस सेल का ही भाग होता है; वरन् वह उस सेल का उसके पास समाचार लाने और उसके पास समाचार पहुचाने वाला सेवक होता है। अतएव सारा रहस्य स्वयं नाडी-सेल ही है।

नाड़ी-सेल

शरीर के विकास का अध्ययन करते समय पता लगता है कि प्रत्येक नाड़ी अपने २ सेल से ही निकलती है। यह भी पता

चलता है कि यदि नाडी कट जाती है तो उसका सेल के पास का भाग बच रहता है और जो भाग सेल से प्रथक् हो जाता है वह मर जाता है। यह भी पता चलता है कि यदि किसी नाड़ी सेल को नष्ट अथवा विपाक्त कर दिया जाता है तो उसमें से निकलने वाला नाड़ी-सूत्र मर जाता है। अतएव यह शरीर के टेलीग्राफ के तार केवल जीवित ही नही है, वरन जीवित सेलों से बनाये जाते है और वह उसी के जीवित भाग होते है।

एक नाडी-सेल से एक या अधिक नाडी-सूत्र निकल सकते है। प्राय. कुछ सेल विशेष उद्देश्य के लिए होते है, जिन मे से प्रत्येक से एक २ सेल निकला हुआ होता है। एक नाडी-सेल के सूत्र प्राय. दूसरे नाड़ी-सेल के सूत्र मे मिल जाते है। किन्तु ऐसा होने पर भी उनके कार्य मे कोई बाधा नही आती।

यदि नाडी-सेलों और नाडी-सूत्रों के अस्तित्व के स्थान को मस्तिष्क मे देखा जावे तो पता चलता है कि वह बड़ा भारी गहन बन है। उनकी शाखाएं और पत्तियां एक दूसरे में यद्यपि एक दूसरे से अत्यन्त सघनता से मिली हुई हैं, किन्तु वह परस्पर जुडी नहीं होतीं।

यह विषय बड़ा भारी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इससे यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार गैस परमाणुओं का बना होता है और शरीर सेलों का बना होता है, उसी प्रकार नाड़ी-चक्र भी सेलो का ही बना होता है। यद्यपि यह सेल बड़े विचित्र प्रकार के होते हैं और इनसे एक २ इंच से लगाकर कई २ फुट तक के सेल निकले होते हैं तौ भी प्रत्येक सेल एक वास्तविक इकाई बना रहता है।

मधु-मक्खी और बर्र का मस्तिष्क कैसा होता है ?

नाडी-सेल और नाड़ियों वाले सब से नीचे के प्राणियों में इनकी सख्या तो बहुत कम होती ही है, प्रबध भी बडा सरल होता है। प्राणि मे यह प्राय भावों को बाहिर से अंदर लाते हैं। किन्तु ज्यों २ अधिकाधिक उच्च प्राणियों को देखा जाता है नाड़ी-सेल और नाडियों की संख्या बढ़ती जाती है। उनमे से कभी २ तो कई २ नाड़ी-सूत्र मिलकर गेंद के समान हो जाते हैं। ऐसी प्रत्येक गेंद एक प्रकार की नाडी-केन्द्र—बहुत कुछ टेलीफोन एक्सचेंज के समान होती है।

जब नाडी-सेलों के यह संग्रह बहुत बडे हो जाते हैं तो उनमे मस्तिष्क (Brain) नाम वाली वस्तु बनती है। इसी प्रकार का मस्तिष्क मधुमक्खी अथवा बर्र का होता है। नाड़ी-सेलो और नाडी-सूत्रों के सारे प्रबंध को नाड़ी-संस्थान (Nervous System) कहा जाता है।

सब से पहिले मेरुदंड (Backbone) के बनने के समय अनेक नये २ नाडी-सेल और नाड़ी-सूत्र भी बने। इस नये नाड़ी-चक्र का केन्द्रीय घर मेरुदंड मे था। कीड़ों मकौडों के जैसा पुराना नाडी-संस्थान भी बना रहा और पुराने तथा नये मे आवागमन के साधन बन गए।

मेरुदंड वाले सभी प्राणियो मे यह दोनों नाड़ी-चक्र मिलते हैं। इनमें से पुराना नाड़ी-चक्र—जो हमको मेरुदंड से पूर्व के समय से मिला हुआ है—शरीर के प्राचीन जीवन को बतलाता है।

मस्तिष्क का साधन नवीन नाड़ी-चक्र है। मेरुदंड का लम्बा खोखला भाग ऊपर की ओर खोखले कपाल में खुलता है। यही बड़ा होकर मस्तिष्क बन जाता है।

मस्तिष्क और सुषुम्ना नाडी (Spinal Cord) मिल कर ही केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान (Central Nervous System) कहलाते हैं। खोपरी तथा मेरुदड के छिद्रो मे से अनेक नाड़ियां निकल-निकल कर उसका शरीर के प्रत्येक भाग से सम्बन्ध करती हैं।

यह सदा ही स्पष्ट हो जाता है कि चाहे तो केवल बालों के बनाने वाले सेलों के समूह को लिया जावे अथवा अन्य भागो के बनाने वालों को उनके सदा ही केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान से दो-दो सम्बन्ध होते है। मस्तिष्क अथवा सुषुम्ना नाड़ी अथवा दोनों ही उसके पास संदेश भेज सकते हैं—और उन्हीं पर जीवन निर्भर है—और उधर वह भी उनको संदेश दे सकता है।

केन्द्रीय नाड़ी-सस्थान के अध्ययन से पता लगता है कि उससे सारे शरीर का इसी प्रकार का सम्बन्ध है। इसी कारण शरीर के असख्य भेद और भाग होते हुए भी वह पूर्णतया एक दिखलाई देता है। किसी भी नगर मे उसके सब भागों को इतनी पूर्णता से एक केन्द्रीय स्थान मे अभी तक नहीं जोड़ा जा सका है।

नाड़ियों का शरीर के प्रत्येक भाग में विस्तार

यदि केवल यह समझ लिया जावे कि हृदय की रेखाएं, एक शिरा की दीवार, नाखून की तली, प्रत्येक पेशी-सूत्र और शरीर के अन्य सभी भाग केन्द्रीय-नाड़ी-संस्थान से दो रूप मे संबन्धित
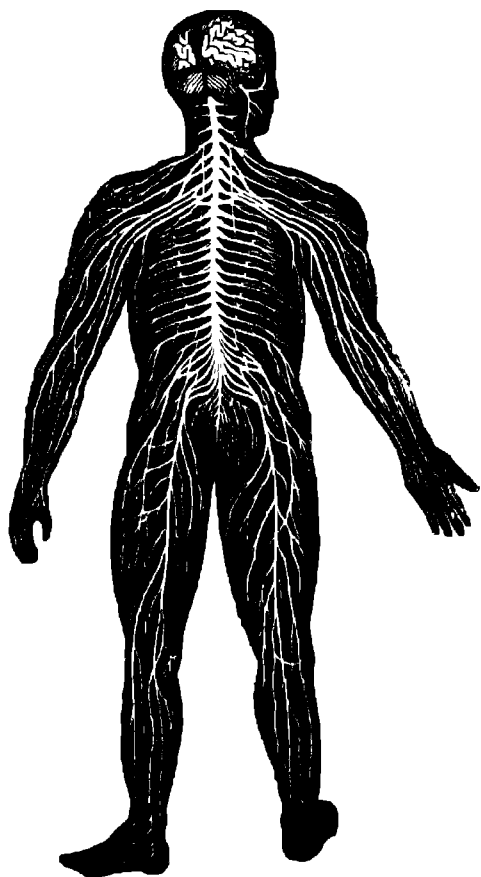
शरीर का नाड़ीचक्र

(पृ० २४६, २४७)

हैं, तो यह पूछने की आवश्यकता नहीं रहती कि यह नाड़ियां कहां को और कैसे जाती हैं; यद्यपि इसी विषय का अध्ययन करने मे डाक्टरी के विद्यार्थियों को वर्षों लग जाते हैं। अब केन्द्रीय-नाड़ी-संस्थान और मस्तिष्क का वर्णन किया जाता है।

मस्तिष्क

मस्तिष्क के अन्दर अनेक तहें होती हैं। प्राणियों के शरीर जितने ही अधिक आश्चर्यजनक बनते गए पुरानी तहों पर नई तहें एकत्रित होती गईं। प्रत्येक नई तह अपने नीचे की तह की अधिपति होती है। इस प्रकार से मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी का कार्य समझ मे आ सकता है।

मस्तिष्क की भंडारी—सुषुम्ना नाड़ी

सुषुम्ना नाडी प्राचीन है। उसका कार्य पेट आदि नीचे के अंगों के उन कार्यों की ओर ध्यान देना है जो मस्तिष्क के ध्यान के नीचे हैं। मनुष्य के घर मे यह एक प्रकार का बड़ा भारी विश्वसनीय और उत्तरदायी भंडारी (खानसामा) है। दूसरे भंडारियों के समान यह छोटो से छोटी बातों का भी केवल स्वयं प्रबन्ध ही नहीं करता, वरन अपने स्वामी के संदेश (Communication) का साधन भी है। नियमानुसार स्वामी भंडारी को आज्ञा देता है और भंडारी शेष कार्य को स्वयं पूर्ण कर लेता है।

इसके अतिरिक्त व्यापारियों को जब कोई बात कहनी होती है तो वह भी मालिक के पास सीधे न जाकर भण्डारी से ही कहते हैं; और वह मालिक को संदेश दे देता है। सुषुम्ना नाडी

भी इसी प्रकार कार्य करती है। हाथ बन्द करते समय स्वामी मस्तिष्क-पेशियों को सीधी आज्ञा नहीं देता। मस्तिष्क से हाथ की पेशियों में कोई नाडी-सूत्र सीधे नहीं आते। किन्तु नाड़ी-सूत्र मस्तिष्क मे से सुषुम्ना नाडी—शरीर के भण्डारी में जाते हैं। वह सुषुम्ना नाडी के कुछ विशेष नाड़ी-सेलों को आज्ञा देते हैं; और उन नाड़ी-सेलों मे से नाड़ी-सूत्र हाथ की पेशियों को जाते हैं। उसी प्रकार शरीर के चर्म मे खाज आने पर उसका संदेश सीधा मस्तिष्क को नहीं जाता। वह संदेश पहिले सुषुम्ना नाडी के वात-सेलों मे जाता है और वहां से उसकी सूचना मस्तिष्क को मिलती है।

यदि सुषुम्ना नाड़ी को काट कर उसमे से एक बहुत पतले टुकड़े को लेकर उसको रंगो में रक्खा जावे तो उसके बनने के ढंग को जाना जा सकता है। तब पता चलता है कि उसकी रचना बिल्कुल उसके कर्तव्यों के अनुसार होती है। उसमे सूत्र और सेल मिलते हैं। इनमे से कुछ सूत्र मस्तिष्क से आते हैं और कुछ मस्तिष्क को जाते है। उनमें से बहुत से सुषुम्ना नाड़ी के सेलो मे से निकल कर उसके दूसरे भागों मे जाकर वहीं समाप्त हो जाते हैं। यदि सुषुम्ना नाड़ी को एक बड़े दफ्तर का टेलीफोन एक्सचेंज समझा जावे तो सूत्र उन तारों के समान हैं जो घर मे ही रहते है। वह न तो कहीं से आते हैं और न कहीं को जाते हैं, वरन दफ्तर के ही एक भाग को दूसरे से जोड़ते हैं।

केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का आश्चर्य जनक संदूक

सुषुम्ना नाड़ी का सब से बड़ा उपयोग यही है कि वह शरीर

के प्रत्येक भाग की सूचना रखती हुई इस सारे प्रबन्ध को ठीक २ इस प्रकार चलाती रहे कि सब अंग एक दूसरे से मेल रखते हुए काम करते रहें।

यदि शरीर के केन्द्रीय नाड़ी चक्र को मनुष्य शरीर के ऊपर से खाल की चादर और चर्बी की रजाई को हटा कर देखा जावे तो सुषुम्ना नाड़ी ऊपर की ओर क्रमश थोड़ी मोटी होती हुई दिखलाई देगी। अन्त मे यह मोटे आकार की बत्ती (Bulb) हो जाती है। मस्तिष्क के इस भाग का नाम ही सेतु, बत्ती या बल्ब है। इसमे श्वास का नियंत्रण करने वाली नाड़ियों के सेल हैं। इसके नष्ट होने से मनुष्य की तुरत मृत्यु हो जावे। नाड़ी-सेलों का एक और संग्रह यहां हृदय पर शासन करता है। एक और संग्रह रक्तकोषो (Blood vessels) के आकार पर शासन करता है। एक और सग्रह चूसने और निगलने के कार्य पर शासन करता है। एक और संग्रह पसीने पर शासन करता है। संभवत: वहां इससे भी अधिक संग्रह हैं। नाड़ी-तन्तुओं के यह सब संग्रह अ गूठे जितने छोटे से भाग मे हैं। इस बल्ब अथवा सेतु के ऊपर बड़ी भारी गड़बड़ है। यदि किसी बड़े मनुष्य के मस्तिष्क का वर्णन किया जावे तो उसकी चाबी कभी न मिलेगी। किन्तु उसके विकास का वर्णन करना सुगम है। हमारे मस्तिष्क में एक नीचे का भाग होता है। यह सब का सब गड्डमगड्डा और सब एक साथ दबा हुआ है। इसके ऊपर कुछ और वस्तु उग आई है, जिसके कारण यह बिल्कुल दिखलाई नहीं देता। उस

पुरानी वस्तु को पुराना मस्तिष्क (Old brain) कहते हैं। आरंभ में यही मस्तिष्क था। इसमें असंख्य नाडी-सेल प्रथक् २ कर्त्तव्यों के संग्रह मे लगाये गये हैं। इसका सम्बन्ध अधिकतर शरीर की गति से है। छोटे प्राणियों मे इसी में सुनने, देखने और छूने के स्थान होते हैं। मनुष्य शरीर में यह देखने मे आता है कि कुछ इन्द्रियां इतनी नाजुक और आश्चर्यजनक हैं कि उनको नये यंत्रों की आवश्यकता है। पुराने केन्द्र, जो हलके प्राणियों के लिये पर्याप्त रूप मे अच्छे थे, अब भी मनुष्य-शरीर मे है, किन्तु वह मस्तिष्क से नीचे हैं।

पुराने मस्तिष्क के पीछे नाडी-तन्तुओं का बडा महत्वपूर्ण भाग है। इस को लघु मस्तिष्क (Cerebellum) नाम दिया गया है। उच्च कोटि के प्राणियों मे यह अधिकाधिक बड़ा होता गया है। किन्तु सम्भवत. इसका अनुभव करने से कोई सम्बन्ध नहीं है। यहा पर सुनने, देखने अथवा गति करने के स्थान भी नहीं हैं। उसमें निश्चय करने और सोचने की शक्ति भी नहीं है। यह शरीर को मनुष्य की इच्छा के अनुसार बनाने का बड़ा भारी साधन है। उसमे शरीर की संतुलन शक्ति (Balancing power) रहती है। शराबी आदमी के लड़खड़ाने का कारण यही है कि वह अपने लघु मस्तिष्क को विषाक्त कर लेता है। उलझन-दार और नाजुक कामों मे पेशियों के संतुलन का कार्य भी यहीं से होता है। चित्रकारी, बाजा बजाना आदि लघुमस्तिष्क के शासन पर ही निर्भर हैं। यह कहा जा सकता है कि यह कार्य कुछ

प्रशसनीय नहीं हैं। इस लिये यह आश्चर्य किया जा सकता है कि उच्च कोटि के प्राणियो मे यह मस्तिष्क अधिकाधिक बड़ा क्यों होता जाता है? किन्तु हम संसार में अपने शरीर और उनसे बाहिर की वस्तुओं को गति करा सकते हैं। इस गति की शक्ति मे ही हमारे मस्तिष्क जीवित रहते हुए कार्य कर सकते हैं। अतएव यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हमारे शरीर की गति का शासन बिल्कुल ठीक-ठीक हो।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि उच्च कोटि के प्राणियों म क्रमशः नाजुकपना और गति का ठीक-ठीक नियन्त्रण अधिकाधिक होता जाता है। ऊपर के प्राणिय मे चढ़ते हुए यह पता चलता है कि लघुमस्तिष्क की वृद्धि के साथ-साथ फुर्ती आती जाती है और ऐसा समय आता है जब मुख भी—जिससे काम लेने में कुत्ते, बिल्ली, शेर, और समुद्री शेर भी अत्यंत चतुर होते हैं—सबसे ऊंचे और सबसे अधिक चक्करदार मस्तिष्क का साधन नहीं रहता।

उस समय किसी उससे भी अच्छी वस्तु की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मुख्य प्राणियों के वृद्धिगत क्रम में हम को पता चलता है कि प्राचीन काल के बंदरों में लेमर (Lemur) नाम के प्राणि अपने हाथों से पकड़ने और चलने का भी काम लेते हैं, यद्यपि वह अपने मुख से काम लेना ही अधिक उत्तम समझते हैं। उन को दाना डालते समय इस बात को बखूबी देखा जा सकता है। किन्तु सबसे उच्च कोटि के लगूरों में हम देखते हैं

कि वह वस्तु को ले लेते हैं और उसकी परीक्षा करते हैं। वह अपने भोजन को हाथ से उठाकर मुख में दे सकते है। अगले हाथ, जो लाखों वर्ष से केवल चलने का ही काम देते हैं, अब अपना विशेष कार्य बना लेते है और प्रत्येक अंगुली का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है।

मनुष्य आधे खड़े होने वाले लंगूरों से भी अधिक चतुर होता है। वह बचपन में गुटलियों चलने के पश्चात अपने हाथों से चलने का काम बिलकुल नहीं लेता। वह प्रत्येक अङ्गली से टाइप राइटर और प्यानो के उपयोग के समान प्रथक २ काम लेना सीख जाता है। इस समय मनुष्य बहुत अधिक फुर्तीला हो जाता है, यद्यपि उसमें ताकत निश्चय से ही कम हो जाती है और उसके साथ ही लघु मस्तिष्क की उन्नति भी रुक जाती है।

यह विषय अधिक रुचिपूर्ण इस कारण है कि इससे केवल मस्तिष्क को समझने मे ही सहायता नहीं मिलती, वरन् बच्चों को समझने मे भी सहायता मिलती है। बच्चों का संसार की उस जाति से सम्बन्ध है, जो सब प्रकार की चतुरता से ही रहती है। इसी कारण बच्चे सदा अपनी फुर्ती से काम लिया करते हैं। इसी कारण बच्चों को फुर्ती के खेल अच्छे लगते है और इसी कारण बच्चों को गेंद का शौक होता है। खेल बच्चे के कार्य का आवश्यक भाग होता है।

इक्कीसवां अध्याय

मस्तिष्क का रहस्य

नया मस्तिष्क (Cerebrum) ही मनुष्य के नाड़ी-संस्थान का सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग है। यह इतना बड़ा और सब ओर को इतना अधिक बढ़ा हुआ है कि नाडी-संस्थान के सब पुराने भाग इसी के नीचे छिप गए। जब कभी भी मनुष्य के मस्तिष्क के सम्बन्ध में बातचीत की जाती है तो वह इसी के सम्बन्ध में की जाती है। इसी को बृहन मस्तिष्क भी कहते हैं।

बृहन मस्तिष्क को पहिली पहल देखने पर पता चलता है कि यह दोहरी इंद्रिय है। इसके दो भाग हैं—दक्षिणार्द्ध और वामार्द्ध। यह दोनों एक दूसरे के समान ही हैं। अर्थात् दो हाथों के ही समान हमारे मस्तिष्क भी दो हैं। मनुष्य का सारा शरीर ही इस प्रकार दो आधे भागों के सिद्धांत पर बना हुआ है।

यदि बृहत मस्तिष्क के दोनों भागों को हल्के से प्रथक् २ करके देखा जाव तो बीच मे नाडी तन्तुओं का ढेर का ढेर दिखलाई देता है जो एक भाग से दूसरे भाग मे जाता है। मस्तिष्क के दोनों भागों के बीच मे यह पुल है और इसी के द्वारा वह दोनों एक होकर काम करते रहते है। मस्तिष्क के तल को देखने पर पता चलता है कि उसमें भी अनेक झुर्रियां और लपेट है। सारे मस्तिष्क के ऊपर गहरी २ घटियां हैं। उनको गहराई और लम्बाई भिन्न २ प्रकार की होती है। किन्तु उनका एक निश्चित रूप होता है। यही रूप दोनों ओर के मस्तिष्क मे होता है। सब मनुष्यों का मस्तिष्क मुख्य रूप से एकसा ही होता है। उनके अन्दर की सब घाटियों और उभारों के विशेष नाम रख लिये गए हैं।

इन लपेटो का यह प्रयोजन है कि इनसे मस्तिष्क अन्दर ही अन्दर लिपटता हुआ बढ़ सकता है और उसको अधिक स्थान की आवश्यकता नहीं होती। मस्तिष्क का ऊपर का भाग बड़ा महत्वपूर्ण होता है। अनेक युगो से प्राणियों के मस्तिष्क अधिकाधिक बडे होते जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मस्तिष्क को अधिक स्थान की भी आवश्यकता पडती रही है, जिससे खोपरी भी अधिकाधिक बड़ी ही होती जाती है। शेष शरीर की तुलना में खोपरी का आकार बहुत बड़ा होता है।

शरीर की अपेक्षा मनुष्य का मस्तिष्क अधिक शीघ्रता से बढ़ जाता है। वह बाहिर की अपेक्षा अन्दर अधिक स्थान

घेरे रहता है। दूसरे प्राणियों के मस्तिष्कों को देख कर इस बात का पता सुगमता से लग सकता है। प्राणि जितने-जितने ही अधिक चतुर होकर शक्ति की अपेक्षा मस्तिष्क पर अधिक विश्वास करते गए मस्तिष्क का तल भी अधिकाधिक लिपटता गया। विशेष अध्ययन वाला व्यक्ति किसी मस्तिष्क को देख कर ही यह बतला सकता है कि उक्त मस्तिष्क किस युग के विकास का है और उसमे कितनी बुद्धि है।

अधिक बुद्धिमान् का मस्तिष्क

प्रसिद्ध २ व्यक्तियो के बहुत से मस्तिष्कों की परीक्षा करने पर पता चला कि वह बहुत अधिक गहराइयों और लपेटो वाले है। अफरीका के जगली आदमियो के मस्तिष्क से तो यह मस्तिष्क अत्यन्त ही भिन्न होते हैं। इसका यह अभिप्राय है कि यदि हम सभी मस्तिष्कों को खोल कर पृथ्वी पर फैला सकते तो सब से चतुर मस्तिष्क सब से अधिक स्थान को घेरते।

खोपरी के आकार, परिमाण और उभार से मस्तिष्क के लपेटो का कुछ भी पता नहीं चलता। तो भी लपेटो की दृष्टि से खोपरी और मस्तिष्क का आकार बहुत कुछ मिलता जुलता है। किन्तु खोपरी की मोटाई सब मनुष्यों की एकसी न होने से उसके आकार की भी मस्तिष्क से तुलना नही की जा सकती।

मस्तिष्क की आश्चर्यजनक रचना

लगभग सौ वर्ष पूर्व जब मस्तिष्क के विषय मे कुछ ज्ञान नही था मनुष्यों का यह विश्वास था कि कपाल को नापने से

मस्तिष्क के विषय में बहुत कुछ जाना जा सकता है। किन्तु वर्तमान विज्ञान बतलाता है कि यह सोचना बिल्कुल गलत है। क्योंकि अन्दर के कार्य का कपाल पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

हमको मस्तिष्क-तल के महत्व के कारण को समझ लेना चाहिये। यदि किसी उच्च कोटि के प्राणि के वृहत् मस्तिष्क को काटा जावे तो पता चलता है कि उसका रंग बाहर से धूसर (Grey) और अन्दर से सफेद होता है। सम्पूर्ण मस्तिष्क को ढकने वाली यह धूसर तह मस्तिष्क के लपेटों में सदा नीचे को हो जाती है। इसको प्राय वल्क (Mantle) कहा जाता है।

यह वल्क ही वास्तविक मस्तिष्क है। यह मस्तिष्क मे सब कहीं होता है। मनुष्य के मस्तिष्क मे सबसे अधिक आश्चर्य-जनक यही है। इसके धूसर वर्ण होने का कारण यह है कि वह नाड़ी-सूत्रों (वातसूत्रों) से न बन कर नाड़ी-सेलों से बना होता है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क का शेष भाग नाड़ी-सूत्रों अथवा नाड़ियों से बना होता है। इसी कारण अंग की अन्य नाड़ियों के समान उसका रग श्वेत होता है। धूसर वल्क मे थोड़े से ही नाड़ी-सूत्र होते है, जो उनके भिन्न-भिन्न भागों को थोड़ा बहुत जोड़ते है।

करोड़ों सेलों से बना हुआ मस्तिष्क

धूसर वल्क करोड़ों नाड़ी-सेलों का बना होता है। यह नाड़ी-सेल सुषुम्ना नाड़ी के नाड़ी-सेलों से भी अधिक आश्चर्यजनक होते हैं। धूसर वल्क की परीक्षा करने पर पता लगा है कि

उसमें सेलों की लगभग पांच तहें होती हैं। किन्तु मस्तिष्क के प्रथक्-प्रथक् भागों मे सेल भी भिन्न-भिन्न प्रकार के ही होते हैं। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों के मस्तिष्क में भी उन-उन भागों में सेलों की तहें उसी प्रकार की होती हैं।

मस्तिष्क के इन सेलों की सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा परीक्षा की जाने पर भी यह कहना कठिन होगा कि उक्त सेल किस प्राणि के मस्तिष्क के हैं। अलबत्ता यह अवश्य कहा जा सकता है कि उक्त सेल मस्तिष्क के अमुक कार्य कराने वाले भाग के हैं। पेशियों को गति कराने, गन्ध का ज्ञान कराने, देखने का ज्ञान कराने और श्रवण शक्ति का उपयोग कराने वाले सेल तुरंत ही प्रथक् २ पहचाने जा सकते हैं।

मस्तिष्क के सभी भागो को नाप लिया गया है। इस समय पेशियों की गति, छूने, देखने, सुनन, चखने और सूंघने के केन्द्रों को भली प्रकार पहिचाना जा सकता है। तो भी यह पता चलता है कि मस्तिष्क के एक बड़े भाग को अभी तक नहीं छुआ जा सका है। इसके विषय में यही जान पड़ता है कि इस भाग के जिम्मे कोई कार्य नहीं है। अभी वैज्ञानिक लोग इसके किसी कार्य को नहीं बतला सके हैं।

भिन्न २ प्रकार के प्राणियों के मस्तिष्कों की परीक्षा करने पर लगभग बीस प्रकार के ऐसे मस्तिष्क मिलते हैं, जिन को छोटे से छोटे प्राणि से लेकर आगे उन्नति करने वाले प्राणियों में होते हुए मनुष्य तक के मस्तिष्क की उन्नति के विकास-क्रम से

रक्खा जा सकता है। इस प्रकार तुलना करने से एक बड़ी आश्चर्यजनक बात का पता लगता है। वह यह है कि जितने ही नीचे प्राणियों के मस्तिष्क को देखा जाता है उनमें उपरोक्त भिन्न भिन्न ज्ञान-केन्द्र उतने ही पास-पास हैं।

अत्यन्त नीचे जाने पर मस्तिष्क मे केवल यही ज्ञानकेन्द्र रह जाते हैं—गति, देखना आदि। यह सब ज्ञानकेन्द्र एक दूसरे के पास-पास होते हैं। इन्हीं से मस्तिष्क बनता है। किन्तु ज्यों-ज्यों मस्तिष्क का विकास होता है और वह बडा होता जाता है त्यों-त्यों यह ज्ञानकेन्द्र केवल अधिकाधिक बड़े ही नहीं होते जाते, वरन यह एक दूसरे से अधिकाधिक दूर भी होते जाते हैं। उनके बीच मे मस्तिष्क का अन्य भाग आ जाता है। यहां तक कि उन्नति होते २ मनुष्य के मस्तिष्क मे भिन्न २ ज्ञानकेन्द्र—जो पहिले सब एक साथ रह कर मस्तिष्क को बनाते थे—अब केवल एक प्रकार की ऐसी झुर्रियां बन जाते है, जो मनुष्य के मस्तिष्क में यत्र तत्र बन जाती है।

यदि इन भागों के नाड़ी-सेलों मे से आने वाले नाड़ी-सूत्रों का अध्ययन किया जावे तो इन झुर्रियों का अभिप्राय सुगमता से समझ मे आ सकता है।

सूत्र सेलों में से निकल कर विशेष ज्ञानकेन्द्रों मे उसी स्थान पर आते हैं, जहां हम आशा करते हैं। सूत्र देखने के ज्ञानकेन्द्र से सीधे आंख मे आते हैं। सुनने के ज्ञान-केन्द्र के सूत्र कान से जुड़े हुए हैं। गति के केन्द्र सुषुम्ना नाड़ी मे आकर उन नाड़ियों

मनुष्य के मस्तिष्क की अन्य प्राणियों के मस्तिष्क से तुलना
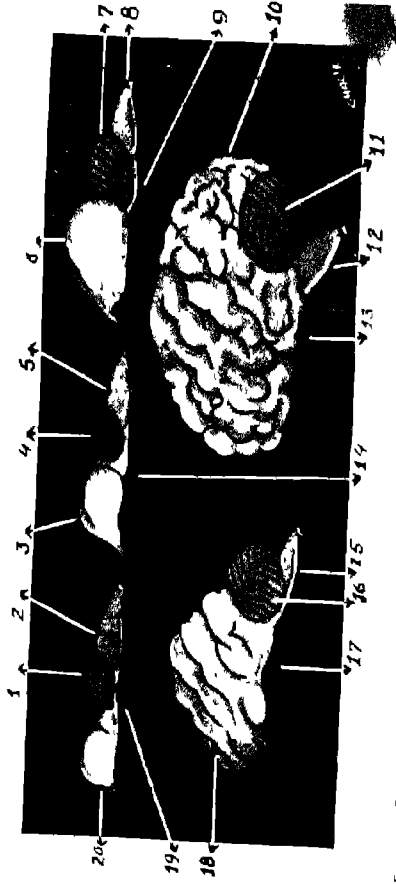
19 मछली का मस्तिष्क	14 सरीसृप का मस्तिष्क	9 पक्षी का मस्तिष्क	17 पशु का मस्तिष्क	13 मनुष्य का मस्तिष्क
20 बृहत मस्तिष्क	3. बृहत मस्तिष्क	6 बृहत मस्तिष्क	18 बृहत मस्तिष्क	10 बृहत मस्तिष्क
1 लघु मस्तिष्क	4 लघु मस्तिष्क	7 लघु मस्तिष्क	16 लघु मस्तिष्क	11 लघु मस्तिष्क
2. प्राचीन मस्तिष्क अथवा सेतु	5 प्राचीन मस्तिष्क या सेतु	8 प्राचीन मस्तिष्क या सेतु	15. प्राचीन मस्तिष्क या सेतु	12. प्राचीन मस्तिष्क या सेतु

(५० ७४६)

से जुड़े हुए हैं, जो पेशियों में जाती हैं। इन घटनाओं से इन ज्ञानकेन्द्रों के कार्यों को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। यदि मस्तिष्क के शांत भाग से जाने वाली नाड़ियों के गन्तव्य स्थान का पता भी लग जावे तो मूर्ख और बुद्धिमान् प्राणियों के अन्तर को अच्छी तरह बतलाया जा सकता है।

नाडी-सूत्र इन केन्द्रों से निश्चित समूहों में निश्चित ढंग पर निकल-निकल कर मस्तिष्क के ही दूसरे भागों में जाते हैं। यह नाड़ीसूत्र मस्तिष्क के भागों को एक दूसरे के साथ जोड़ते हैं।

मनुष्य और पशु के मस्तिष्क का बड़ा भारी भेद

यदि एक कुत्ते के मेरुदण्ड अथवा प्राचीन मस्तिष्क (Bulb) की मनुष्य के मेरुदण्ड अथवा प्राचीन मस्तिष्क से तुलना की जावे तो उनमें कोई बड़ा भेद नहीं मिलता। किन्तु यदि मनुष्य और कुत्ते के नये मस्तिष्क की तुलना की जावे तो सूत्रों और सेलों के मिश्रण में भेद मिलता है। दोनों के दृष्टिकेन्द्र मस्तिष्क के उसी भाग में होते हैं और उनमें एक ही प्रकार के सेल होते हैं।

प्रधान अन्तर यह है कि मनुष्य का धूसर वल्क (Mantle) अधिक मोटा होता है। उसके अधिक मोटे होने के कारण की जांच करने पर पता चलता है कि उसमें संयोजक सूत्रों (Association Fibres) की संख्या बहुत अधिक होती है। साधारणतया एक उच्च मस्तिष्क और नीचे मस्तिष्क में यही अन्तर होता है कि उच्च मस्तिष्क के विशेष केन्द्रों में धूसर वल्क मोटा होता है, क्यों कि

वह संयोजक सूत्रों से ठसाठस भरा होता है। इसके अतिरिक्त उच्च मस्तिष्क में विशेष केन्द्र एक दूसरे से दूर-दूर होते हैं और उनके बीच मे नये-नये भाग मस्तिष्क के विशेष केन्द्रों को एक दूसरे से सम्बन्धित करते रहते हैं।

विशेष केन्द्रों मे दृष्टि और श्रवण के केन्द्र मनुष्य मे अधिक विकसित होते हैं। स्वाद और गध के केन्द्र मनुष्य की अपेक्षा पशुओं मे अधिक विकसित होते हैं।

गन्ध-शक्ति पशुओं में मनुष्यों से अधिक होती है

भिन्न २ प्राणियों के मस्तिष्क मे गंध के भाग की परीक्षा करने पर पता चलता है कि यह भाग अनेक युग पूर्व ही पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। सम्भवतः उस समय दृष्टि और श्रवण शक्ति का अस्तित्व भी न था। किन्तु आज कल दृष्टि का महत्व सूंघने से कहीं अधिक है। क्यो कि उससे न केवल अधिक दूरी के पदार्थ का ही ज्ञान होता है, वरन् वह गन्ध की अपेक्षा सहस्रों गुनी अधिक सूचनाएं देती है।

प्राणि-विकास के इतिहास का यह एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है कि दृष्टि ने विकसित होकर गंध के स्थान को बहुत कुछ ग्रहण कर लिया। उच्च कोटि के प्राणियों में मनुष्य और बन्दर के पश्चात् कुत्ते का स्थान है। इस बात को सभी जानते हैं कि कुत्ते की गन्ध-शक्ति कितनी उत्तम होती है। मनुष्य के मस्तिष्क के गन्ध का केन्द्र बहुत कुछ निर्बल पड़ते २ बहुत छोटा पड़ गया है, जब कि कुत्ते का दृष्टि का भाग बहुत बड़ा हो गया है।

मनुष्य का दृष्टि केन्द्र बृहत् मस्तिष्क के पिछले भाग मे दोनों ओर होता है। उसके विकसित होने से मनुष्य के मस्तिष्क के पीछे का भाग बड़ा होता है। अर्थात् हमारे वास्तविक नेत्र हमारे सिर के पिछले भाग मे होते हैं। यह पीछे बतलाया जा चुका है कि मनुष्य का लघुमस्तिष्क भी बड़ा होता है। किन्तु बृहत् मस्तिष्क का दृष्टि-केन्द्र इतना बड़ा हो गया है कि लघु मस्तिष्क उसके नीचे पूर्ण रूप से छिप जाता है।

भिन्न २ प्रकार की इन्द्रियों में अन्तर

यह जान पड़ता है कि इस विषय मे थोड़ी गलती होगई है। अनेक शिकारी पक्षियों की दृष्टि मनुष्य की अपेक्षा कहीं तेज अधिक होती है। गिद्ध मरुभूमि मे पड़े हुए एक अनाज के कण को भी बहुत दूरी से देख सकता है। किन्तु क्या गिद्ध किसी सुन्दर दृश्य का अनुभव कर सकता है? क्या वह सूर्योदय और सूर्यास्त के समय के सुहावने दृश्य से आनन्दित हो उठता है? अतएव दृष्टि का उच्चपन लम्बी दूर तक देखने में न होकर देखे हुए पदार्थ के विषय मे अधिक ज्ञान प्राप्त करने मे है। मनुष्य के दृष्टि-केन्द्र की अपेक्षा किसी भी प्राणि के दृष्टि केन्द्र मे अधिक गहराई नहीं होती।

यह बतलाया जा चुका है कि मनुष्य में गंध और स्वाद अधिक महत्वपूर्ण नहीं होते। यह कल्पना की जा सकती है कि स्पर्श भी मनुष्य में अधिक विकसित नहीं होता होगा। किन्तु यह सोचना भूल है।

पक्षियों मे सब से अधिक बुद्धिमान् तोता होता है। इस बात

का उसके केवल मनुष्य-शब्द की नकल करने से ही नहीं, वरन् और भी कई बातों से पता चलता है। तोते की स्पर्शन इन्द्रिय अन्य पक्षियों की अपेक्षा अधिक तेज होती है। वह अपने पंजों से अंगुलियों के समान अच्छी तरह काम ले सकता है। वह थपथपा कर और छूकर वस्तु को पहिचान लेता है।

वास्तव में सब से अधिक तेज स्पर्शन इन्द्रिय वाला पक्षि ही सब से अधिक बुद्धिमान् होता है। स्पर्शन इन्द्रिय सब इन्द्रियों की माता होती है। इसी का अध्ययन करने से सब इन्द्रियों का अध्ययन हो जाता है। अधिक बुद्धिमान् बच्चा भी अपनी अंगुलियों से ही अधिक काम लेता है। स्वस्थ बच्चा हाथ पैर अधिक चलाता है। मनुष्य के मस्तिष्क का स्पर्श वाला भाग बड़ा शानदार होता है। मनुष्य की स्पर्शनेन्द्रिय सब प्राणियोंसे अधिक विकसित होती है। सहस्र वर्ष मे भी किसी प्राणि को अंगुलियों से पढ़ना नहीं सिखलाया जा सकता।

मनुष्य के मस्तिष्क मे स्पर्शन-केन्द्र का पता बहुत समय तक नहीं लगाया जा सका। यह मनुष्य के नेत्रों के थोड़ा ही नीचे होता है। मस्तिष्क के दोनों ओर धूसर वल्क का बहुत बड़ा भाग ऐच्छिक गति का केन्द्र होता है। यहीं पर मनुष्य की इच्छाशक्ति आज्ञा देती है। इसको बहुत वर्षों से चालक केन्द्र(Motor Centre) कहा जाता था। वास्तव मे इच्छाशक्ति और गति का केन्द्र ही स्पर्शन का केन्द्र है। यह दोनों पास पास ही हैं। इनसे अधिक पास-पास और कोई केन्द्र नही है।

सुनने की इन्द्रिय मस्तिष्क मे नीचे की ओर होती है । यही इन्द्रिय संगीत आदि को ग्रहण करती है। मनुष्य मे मस्तिष्क का श्रवण-केन्द्र बहुत बड़ा होता है। इसका मामला भी बहुत कुछ दृष्टि के जैसा ही है। यद्यपि कुछ पशु हमारी अपेक्षा अधिक मन्द शब्द को सुन सकते हैं, किन्तु यह श्रवण शक्ति की उत्तमता की परीक्षा नहीं है। अच्छे और बुरे सगीत के अंतर को कोई पशु नहीं जानता, न कोई पशु गा ही सकता है। यह जान पड़ता है कि संगीत के लिये मस्तिष्क मे साधारण श्रवण से प्रथक् ही स्थान है। यह सामने की ओर होता है, यद्यपि इसके विषय मे अभी बहुत कुछ पता नहीं चला है।

बाईसवां अध्याय

मस्तिष्क का बायां और दाहिना भाग

प्राय: सभी मनुष्य दाहिने हाथ से काम करते हैं। थोड़े से बाएं हाथ से भी काम करते हैं। यद्यपि सभी मनुष्यों को दोनों हाथों से कार्य करना पड़ता है, किन्तु दोनों हाथों से समान रूप से कोई भी कार्य नहीं कर सकता। बेला अथवा सारंगी बजाने वाले को एक हाथ से एक प्रकार के और दूसरे हाथ से दूसरे प्रकार के कार्य को करने का अभ्यास करना पड़ता है, यद्यपि दोनों ही कार्य अत्यन्त कठिन और भिन्न २ प्रकार के होते हैं। मजदूर को दोनों हाथों से एक ही प्रकार का कार्य करने का अभ्यास करना पड़ता है

इस विषय को न जानने वाले व्यक्ति समझते हैं कि दोनों हाथों में कुछ न कुछ स्वाभाविक अंतर अवश्य होता है। किन्तु यह विचार ठीक नहीं है। यह सारा प्रश्न मस्तिष्क का है। मस्तिष्क के दोनो भागों मे परस्पर कोई अंतर नहीं होता।

शरीर में मस्तिष्क का आनुपातिक स्थान

(इसमें मस्तिष्क की सिलवटें स्पष्ट दिखलाई दे रही हैं।)
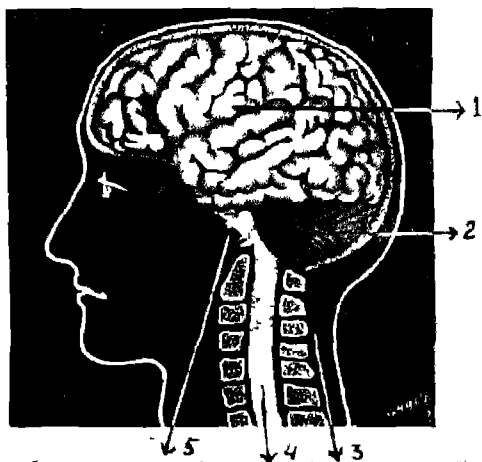
1. बृहत् मस्तिष्क 2. लघु मस्तिष्क 3. प्राचीन मस्तिष्क या सेतु 4. सुषुम्ना नाड़ी (Spinal cord), 5. कशेरुकाएँ (Vertebrae)

(पृ० २६५)

हाथ और मस्तिष्क के सम्बन्ध को जांचने से बड़ी २ विचित्र बातों का पता लगता है। मस्तिष्क मे बायीं ओर मनुष्य की ऐच्छिक गतियों के शासन का बड़ा भारी केन्द्र है। उसके नाड़ी-सेलों मे से बहुत से सूत्र निकल २ कर गड्डमगड्डा होकर एक बंडल बन गए हैं। यह सूत्र ही इच्छा अथवा निश्चय के मार्ग हैं। यह बंडल मस्तिष्क में बायीं ओर चलता हुआ क्रमशः मस्तिष्क की मध्य रेखा पर आ जाता है। इसके पश्चात् यह सबका सब दाहिनी ओर आता है। यह कार्य पुराने मस्तिष्क अथवा सेतु (Bulb) में होता है। इसका परिणाम यह होता है कि मस्तिष्क का बाया भाग दाहिने अंग का स्वामी बन जाता है।

यदि किसी पुरुष को दाहिने हाथ से काम करने वाला कहा जाता है तो इसका यह अभिप्राय है कि उसका मस्तिष्क बायीं ओर है। बायीं ओर से काम करने वाले का मस्तिष्क दाहिनी ओर होता। मस्तिष्क की क्रिया का प्रभाव हाथों के अतिरिक्त अन्य अंगों पर भी पड़ता है।

यह देख लिया गया है कि जन्म के समय दोनों ओर का मस्तिष्क बिल्कुल एक सा होता है। कुछ अधिक अवस्था होने पर भी दाहिनी और बायीं ओर के मस्तिष्क में कोई अंतर दिखलाई नहीं देता। तब कुछ आदमी दाहिने और कुछ बाएं हाथ से क्यों काम करते हैं? दाहिने हाथ वालों की संख्या बाएं हाथ वालों की अपेक्षा इतनी अधिक क्यों होती है? हमारे दोनों हाथों से कार्य न करने में कार्य-शक्ति की मितव्ययिता है। जीवन नष्ट

होना नहीं चाहता। यदि एक वस्तु से ही काम चल जाता है तो प्रकृति दो वस्तुओं से काम लेना नहीं चाहती। मस्तिष्क की शिक्षा में भी यही नियम काम करता है। जब मस्तिष्क के एक ओर का भाग ही शिक्षा ग्रहण कर सकता है तो दोनों भागों पर शिक्षा का बोझ क्यों डाला जावे। प्रकृति एक अध्यापक के समान है, जिसके पास मस्तिष्क के रूप में दो विद्यार्थी हैं। यह अध्यापक सदा एक को ही अच्छी शिक्षा देता है।

मस्तिष्क के एक भाग को ही क्यों शिक्षा मिलनी चाहिये ?

मस्तिष्क के दोनों भागों को एक सी शिक्षा पाने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक ओर के मस्तिष्क की शिक्षा पहिले प्रारम्भ हो जाती है। जिसकी शिक्षा का प्रारम्भ पहिले होगा, वही अधिक शिक्षित होगा। किन्तु कम शिक्षा प्राप्त मस्तिष्क भी अधिक शिक्षित से कम नहीं होता। इस प्रकार दोनों मस्तिष्क मे एक आगे और दूसरा पीछे रह जाता है।

एक सत्तर वर्ष के वृद्ध पुरुष के दुर्घटनावश ऐसी चोट लगती है कि उसका दाहिना हाथ अथवा बायां मस्तिष्क बेकार हो जाता है। उस पुरुष का दाहिनी ओर का मस्तिष्क अब भी स्वस्थ है; यद्यपि वह इतना शिक्षित नहीं है। अब वह दाहिना मस्तिष्क ही काम सीखना आरम्भ करता है। वह पुरुष अपने बायें हाथ से बहुत कुछ काम निकाल लेता है; किन्तु उसमें दाहिने हाथ के जैसी पूर्णता नहीं आती। इसका कारण यह है कि शिक्षा के

लिये वृद्धावस्था ठीक न होकर युवावस्था अथवा बाल्यावस्था ही सब से अच्छा समय है।

दुर्घटना की क्षति को मस्तिष्क किस प्रकार पूर्ण करता है ?

अब एक पांच वर्ष के बालक को ले लीजिये। वह बात-चीत कर सकता है और थोडा बहुत लिख पढ़ भी लेता है।

किसी दुर्घटनावश उसका बायीं ओर का मस्तिष्क उपरोक्त वृद्ध के समान असमर्थ हो जाता है। किन्तु इन दोनो मे बड़ा भारी अन्तर है। अब बच्चे का दाहिना मस्तिष्क काम करने लगता है। यह अवश्य है कि उसको नये सिरे से एक दम दुधमुंहे बच्चे के समान सीखना होगा। किन्तु उसके बच्चा होने के कारण उन्नतिशील होने से वह दो एक वर्ष मे ही सारी कमी को इस प्रकार पूरी कर लेगा, जैसे कोई दुर्घटना हुई ही नहीं।

किन्तु इस प्रश्न के हल हो जाने पर भी यह प्रश्न शेष रह ही जाता है कि दाहिने हाथ से काम करने वालों की ही अधिक संख्या क्यों होती है।

इस का सब से बड़ा कारण तो संस्कार है। हम बच्चे को होश लेते ही दाहिने हाथ से काम करना सिखलाते हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। वह यह कि दाहिने हाथ से काम करने वाले माता पिताओं के बच्चे भी प्राय: दाहिने हाथ से काम करने वाले ही होते हैं।

रक्त के संचार का भी इस पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। कुछ व्यक्तियों का विश्वास है कि दाहिनी ओर की अपेक्षा

मस्तिष्क मे बायीं ओर अधिक रक्त आता है। शरीर विज्ञान से भी इसी सिद्धांत की पुष्टि होती है। फुफ्फुसों में धमनियां (Arteries) इस प्रकार निकली हुई हैं कि दाहिनी ओर की अपेक्षा बायी ओर को रक्त का संचार अधिक सीधा होता है। किन्तु मस्तिष्क की परीक्षा करने पर इस पक्षपात का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

गत बीस तीस वर्षों में इस बात का अनुभव किया गया है कि दाहिने हाथ से काम करने वालों का बायां मस्तिष्क केवल अधिक फुर्तीला ही नहीं होता, वरन बोलने, लिखने, पढ़ने और संगीत सुनने आदि के कार्य भी उस बाये मस्तिष्क द्वारा ही किये जाते हैं। बायें हाथ से काम करने वाले इन सब कार्यों को दाहिनी ओर के मस्तिष्क से करते है।

अब तनिक सुनने के विषय को ले लीजिये। प्रत्येक स्वस्थ पुरुष दोनों ओर के श्रवण केन्द्रों से ठीक २ सुनता है। किन्तु कुछ विशेष भाषाओं को समझने की शक्ति एक ओर ही होती है।

दाहिने हाथ से काम करने वाले बायीं ओर से शब्दों को समझते हैं। शब्दों के समझने का कार्य मस्तिष्क के एक विशेष भाग को करना पड़ता है। उसको शब्द श्रवण केन्द्र (Word hearing centre) कहते हैं। यदि यह केन्द्र बिगड़ जावे तो कान सुनेगा तो अवश्य, किन्तु केवल बच्चे के समान बिना समझे हुए सुनेगा। अथवा इस प्रकार सुनेगा, जैसे हम किसी अज्ञात भाषा को सुनते हों। जो व्यक्ति एक से अधिक भाषाओं को जानते हैं उनके मस्तिष्क में उस २ भाषा का केन्द्र पृथक् २ होता

है। वह केन्द्र श्रवण-केन्द्र के पास ही होता है। उसका भी क्रमिक विकास होता है।

किसी-किसी समय ध्यान अन्यत्र होने के कारण हम सुन तो लेते हैं, किन्तु समझ नहीं पाते। तब पूछना पड़ता है कि "आपने क्या कहा ?' और अपने मित्र के उसको दुबारा कहने से पूर्व ही हम कभी २ समझ भी जाते हैं। शब्द मस्तिष्क के श्रवण भाग मे सुन कर भर लिए गए थे, किन्तु उनको न समझने का कारण यह था कि उन शब्दों को समझने वाले केन्द्र ने ग्रहण नहीं किया था। किन्तु एक क्षण क पश्चात ही श्रवण-केन्द्र की ओर ध्यान देते ही शब्द समझ मे आ गए। इस उदाहरण से केवल मस्तिष्क की कार्यशैली का ही पता नहीं चलता, वरन 'अवधानता' का अर्थ भी समझ में आ जाता है।

यह बतलाया जा चुका है कि संगीत के लिये भी मस्तिष्क के श्रवण केन्द्र के समीप एक प्रथक् केन्द्र है। इस भाग की भी अधिक से अधिक उन्नति हो जाती है।

अब देखने के विषय को लेना चाहिये। मस्तिष्क के दोनों भागों से प्रत्येक वस्तु ठीक २ देखी जाती है। किन्तु दाहिने हाथ से काम करने वालों मे देखे हुए को समझने का केन्द्र मस्तिष्क के बायें भाग मे ही होता है। यदि देखे हुए को समझने का केन्द्र बिगड़ जावे तो मनुष्य किसी वस्तु को ठीक २ देखते हुए भी समझ नहीं सकता। यहा तक कि वह एक देखी हुई वस्तु का नक्शा बना सकता है, किन्तु उसको एक बच्चे के समान समझ नहीं सकता

मस्तिष्क का देखने का केन्द्र बहुत समय से विकसित हो रहा है। इसका विकास प्रत्येक मनुष्य मे उसके ज्ञान के अनुसार होता है। किसी मनुष्य के मस्तिष्क की परीक्षा करके उसके देखने की अधिक से अधिक शक्ति को बतलाया जा सकता है।

मस्तिष्क के विकास के समय बोलने के केन्द्र के पश्चात् सब से प्रथम सुनने का केन्द्र ही विकसित होता है। इन दोनों केन्द्रों का एक युगल होता है। जिनको लिखना और पढ़ना सिखलाया जाता है, उनमे एक और युगल विकसित होता है। यह युगल पढ़ने अथवा शब्द के देखने और लिखने के केन्द्र का होता है। अब हमको वाणी के केन्द्र का अध्ययन करना है।

वाणी मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषताओं में से है

मनुष्य के मस्तिष्क में वाणी का केन्द्र सब से अधिक आश्चर्य-जनक और महत्वपूर्ण है। लिखना और पढ़ना भी कम महत्व-पूर्ण नही है, किन्तु वास्तव मे वह भी नये प्रकार की वाणी ही है। मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषताओं मे से वाणी अथवा भाषा भी एक है। इसी के कारण मनुष्य अन्य प्राणियो की अपेक्षा अधिक आश्चर्यजनक प्राणि है।

मनुष्य के मस्तिष्क के विशेष केन्द्रों में पहिली पहल वाणी के केन्द्र का ही आविष्कार हुआ था। संभवतः मनुष्य मे विकास भी पहिली पहल इसी का हुआ था। इसका आविष्कार उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ब्रोका नाम के एक फ्रांसीसी विद्वान् ने किया था। वाणी का केन्द्र मस्तिष्क के उसी भाग में है, जो ओष्ठ को

मस्तिष्क के अंदर का चित्र

इसमें भिन्न २ ज्ञान केन्द्रों की नाड़ियों तथा अन्य महत्वपूर्ण अङ्गों को इस प्रकार दिखलाया गया है कि सबसे ऊपर ललाट, फिर सिलवटों वाला बृहत् मस्तिष्क, नीचे गमले में पौधे जैसे भाग के बीच का भाग प्राचीन मस्तिष्क और उसके चारों ओर का गोलाई वाला भाग लघु मस्तिष्क है। चित्र में दोनों ओर दोनों कान सिर की बाह्य रेखा को स्पष्ट बतला रहे हैं। ज्ञान केन्द्रों को रेखाओं द्वारा बतलाया गया है।
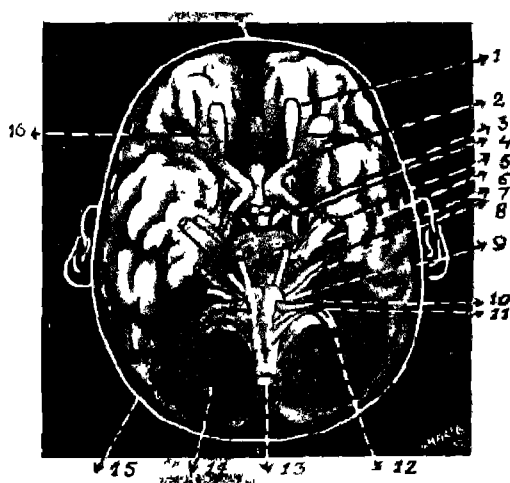
1 गन्ध केन्द्र, 2 दृष्टिनाड़ी, 3 नेत्र को घुमाने वाली नाड़ी, 4 नेत्र-नाड़िया, 5 चेहरे और जबड़ा की नाड़ी का मार्ग, 6 नेत्र नाड़िया, 7 चेहरे की नाड़ी, 8 श्रवण केन्द्र, 9 स्वाद केन्द्र, 10–11 जिह्वा की नाड़ियों का मार्ग, 12 फुप्फुसों यकृत, हृदय, उदर और स्वर-यंत्र की नाड़ियों का मार्ग, 13 सुषुम्ना नाड़ी का ऊपर का भाग, 14 लघु मस्तिष्क 15, सिर की बाह्य रेखा, 16, बृहत् मस्तिष्क

(पृ० २७०)

पेशियों, जिव्हा और जबड़ों का शासन करता है। जिन पेशियों से बोलने में काम लिया जाता है उन सब का सम्बन्ध मस्तिष्क मे दोनों ओर है। किन्तु उनको चलाना एक काम है और उनसे बोलना बिल्कुल दूसरा काम है। यदि किसी प्रकार वाणी का केन्द्र बिगड़ जावे तो हम बोल तो अवश्य सकेंगे, किन्तु तोते के समान गूंगे होकर बोलेंगे।

मस्तिष्क के विषय में हर्बर्ट स्पेंसर के विचार

हर्बर्ट स्पेंसर नाम के प्रसिद्ध दार्शनिक ने एक बार विचार प्रगट किया था कि सम्भवत अच्छा विचार करने वालों का मस्तिष्क दोनों ओर से कार्य करता है और वह साधारण मनुष्यों के मस्तिष्क से बहुत भिन्न होता है। यदि मस्तिष्क के एक भाग से दूसरे भाग को जोडने वाले "महासंयोजक" नाम के सूत्रों के बंडलों को देखा-जावे तो इस बात का मूल्य समझ मे आ सकता है। किसी दिन यह सिद्ध किया जा सकेगा कि हर्बर्ट स्पेंसर का सिद्धान्त सोचने में ही नहीं, वरन् समझने, पुस्तक बनाने, कविता करने और चित्र बनाने आदि के विषय मे भी ठीक है। एक बडा भारी प्रश्न यह है कि शक्ति को बिना नष्ट किये और बिना दोनों ओर की शिक्षा सम्बन्धी योग्यता को कम किये शिक्षा किस प्रकार दोनों ओर के मस्तिष्क को विकसित कर सकती है। इसका उत्तर केवल यह है कि विशेष कार्यों की शिक्षा दोनों ओर के मस्तिष्कों को दी जा सकती है। यदि एक ओर का मस्तिष्क अयोग्य हो जावे तो दूसरी ओर का मस्तिष्क उतनी ही तत्परता से कार्य करेगा।

तेईसवां अध्याय

हमारी आश्चर्य जनक ग्रन्थियां

ग्रन्थि (Glands) शब्द आज कल सर्व सामान्य हो गया है। कभीर गर्दन की ग्रंथियां सूज कर हमारे ध्यान को अपनी ओर हठात् आकर्षित कर लेती हैं। तौ भी इस शब्द की परिभाषा करना कठिन है।

वास्तव में ग्रंथि उस अंग अथवा यंत्र को कहते हैं, जिसका कार्य किसी रस बनाने का होता है। बनने के पश्चात् यह रस उस स्थान मे पहुंच जाता है, जहां इसकी आवश्यकता होती है। वास्तव में हमारा सारा शरीर एक रसायनिक प्रयोगशाला (Chemical Laboratory) है। शरीर के सभी सेल उसको बनाते हैं। उसकी नाड़ियां, चर्म, पेशियां और रक्तकोष रसायनिक पदार्थों को बना-बना कर रक्त मे मिलाते हैं और सेलों पर भी अपना प्रभाव डालते हैं।

किन्तु शरीर के बहुत से सेलों का कार्य उनके रसायनिक कार्य से भी अधिक महत्वपूर्ण और भिन्न है। उनके द्वारा जो रसायनिक पदार्थ बनते हैं उनका महत्व उसी प्रकार कुछ कम होता है, जिस प्रकार नाड़ी-सेलों का मुख्य कार्य पेशियों में गति उत्पन्न करना, सोचना अथवा अनुभव करना; चर्म के सेलों का मुख्य कार्य अधिक गहराई की रचना की रक्षा करना, संयोजक तन्तुओं के सेलों (Connecting-tissue-cells) का कार्य सूत्रों को बनाना, पेशियों के सेलों का मुख्य कार्य अंगों में गति कराना और रक्त को घुमाना तथा लाल रक्त-सेलों (Red blood cells) का कार्य ओषजन को ले जाना है।

इन सब के विरुद्ध ग्रंथियों का रसायनिक कार्य उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए पदार्थ से प्रथक् पहिचाना जाता है। थूक वाली ग्रंथियां थूक (Saliva) निकालती हैं। लसीका वाली ग्रंथियां लसीका (Lymph) निकालती हैं। आमाशायिक रस वाली ग्रंथिया आमाशयिक रस (Gastric Juice) निकालती हैं। क्लोम रस वाली ग्रन्थियां क्लोम (Pancreatic Juice) निकालती हैं। यकृत और दुग्ध की ग्रन्थियां पित्त निकालती हैं; और पसीने की ग्रंथियाँ पसीना (Sweat) निकालती हैं। यह सभी पदार्थ शरीर के स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

यदि ग्रन्थि के रस की आवश्यकता उसके समीप न होकर ग्रन्थि से दूर होती है तो उस ग्रन्थि से आवश्यकता के स्थान तक एक नली लगी होती है। यह नली उस विशेष रस की पनाली

(Duct) कहलाती है। यकृत और क्षुद्र अंत्र के बीच में पित्त-प्रणाली लगी हुई है। अंड से शुक्र-प्रणाली और वृक्क (Kidneys) से मूत्र-प्रणाली लगी रहती है। परन्तु जब रस किसी विशेष स्थान के लिये नहीं बनता, प्रत्युत सम्पूर्ण शरीर के लिये बनता है तब किसी प्रणाली की आवश्यकता नहीं होती। यह रस ग्रन्थि के लसीका या रक्त मे मिल जाता है और रक्त द्वारा शरीर के सब अगों मे पहुंचता है। अतएव प्रणालियों के हिसाब से ग्रन्थियां दो प्रकार की होती हैं—

१. प्रणाली वाली ग्रन्थियां (Glands with duct)

२. प्रणाली रहित ग्रन्थिया (Ductless Glands)

प्रत्येक ग्रन्थि के स्राव की रसायनिक परीक्षा की जा सकती है। आंसू की ग्रन्थिया आसू गिराती है। उनमे मिले हुए क्षार को निकाल कर चखा जा सकता है। दुग्ध की ग्रन्थियां दुग्ध देती हैं। उसको भी एकत्रित करके उसकी रसायनिक परीक्षा की जा सकती है।

प्रणाली रहित ग्रन्थियों के कार्यों का पता बहुत दिनों तक नहीं चला। ऐसी ग्रन्थियों में चुल्लिका (Thyroid), उपचुल्लिका (Parathyroid), थाइमस (Thymus), पीनियल (Pineal) और पिट्युट्री (Pituitary) ग्रन्थिया मुख्य है।

यह ग्रन्थियां बहुत छोटी हैं। बहुत समय तक इनके महत्व का पता बिल्कुल नहीं लगा। किन्तु इस बात का पता लग गया है कि शरीर मे इनका कार्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इनमें संभवत: सबसे अधिक कौतुक पूर्ण चुल्लिका ग्रन्थि है। विज्ञान ने पहिली पहल इसी का पता लगाया था। यह हलक के ठीक सामने होती है। इसी के बढ़ जाने को "घेघा" (Goitre) कहते हैं। यह बढ़ने पर सुगमता से देखी जा सकती है। यद्यपि यह तोल मे लगभग ढाई तोला ही होती है, किन्तु सारे शरीर का स्वास्थ्य इसी के ऊपर निर्भर है। यदि बाल्यावस्था मे इसका स्राव कम हो तो शरीर और मन दोनों का विकास रुक जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य मूर्ख सा ही रह जाता है। सन १८७४ मे फ्रास मे ऐसे मूर्खों की सख्या १२२,७०० थी और भारत मे तो यह संख्या लाखों मे है। यदि यह ग्रन्थि अपना कार्य न करे तो कैसा ही अच्छा भोजन दिया जाने पर भी बच्चा बौना और मूर्ख ही रह जाता है।

मूर्ख अथवा बुद्धिमान् बनाने वाली चुल्लिका ग्रन्थि

यह ग्रन्थि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा कुछ बड़ी होती है। उसका भार ३० माशे के लगभग होता है और रग पीलाहट लिये हुए भूरा। जब स्त्री रजस्वला अथवा गर्भवती होती है तब उसका परिमाण कुछ बढ़ जाया करता है।

चुल्लिका ग्रन्थि हमारे स्वास्थ्य का एक परमावश्यक अंग है। इसका बढ़ना या छोटा हो जाना; इसका कम काम करना या आवश्यकता से अधिक काम करना—दोनों ही बातें बुरी हैं। जब यह अंग ठीक २ काम नहीं करता तब स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

चुल्लिका ग्रन्थि मे जो वस्तु बनती है उसके कम बनने या बिल्कुल न बनने से एक प्रकार का मूर्खपन हो जाता है। कुछ बालक बचपन से ही मन्द-बुद्धि होते हैं। उनके दांत देर मे निकलते हैं और जब निकलते है तो देर तक स्थायी नहीं होते, वरन् शीघ्र गल जाते हैं। उनका पेट फूला रहता है, हाथ-पैर छोटे और टांगें भारी होजानी है। चेहरा पीला सा रहता है। कर्पर के विवर समय पर बंद नहीं होते। पेशिया कमजोर होजाती हैं। बच्चा अपने सहारे खड़ा नहीं हो सकता, बुद्धि बहुत कम होती है। यदि यह बच्चे जीते हैं तो आयु के बढ़ने के साथ २ उनके अंग नहीं बढ़ते। उनकी बुद्धि भी विकसित न होकर छोटे बच्चों के जैसी ही रह जाती है। उनमे यौवन के चिह्न भी प्रगट नहीं होते।

चुल्लिका ग्रन्थि के विकृत होने से और भी रोग हो जाते है। स्त्रियों मे इसके रोग अधिक पाए जाते हैं। इसके विकृत होने से स्त्री स्थूल हो जाती है, उसकी त्वचा भारी पड जाती है और उसमे रूखापन आ जाता है। बाल गिरने लगते हैं, चेहरा फूल जाता है, ओष्ठ मोटे हो जाते हैं, नकुने चौड़े और मोट पड़ जाते हैं, विचार और स्मरण शक्तियां कम हो जाती हैं, चाल सुस्त हो जाती है, शरीर का तापक्रम कम रहता है और मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता है। इसका रोगी दिन-ब-दिन अधिकाधिक वहमी होता जाता है। यदि यह रोग बढ़ता जावे तो एक प्रकार का पागलपन हो जाता है।

इस ग्रन्थि के आवश्यकता से अधिक काम करने पर भी

स्वास्थ्य खराब रहता है। ऐसी दशा में हृदय की चाल तेज हो जाती है। धमनी-स्पंदन (नाड़ी की गति) जो साधारणत: ७०-७५ बार प्रति मिनट होता है अब प्रति मिनट ६०, १००, १४० या १६० बार तक होने लगता है। अंगुलियों की छोटी-छोटी धमनियों की फड़क भी सुगमता से प्रतीत होने लगती है। आखें आगे को निकल आती हैं। पलक आखों को अच्छी तरह नहीं ढक सकते। ग्रन्थि का परिमाण बढ़ जाता है। हाथ कांपने लगते हैं। इन बातों के अतिरिक्त रक्तहीनता, दुबलापन और कमजोरी बढ़ती जाती है और अंत मे मन्द ज्वर भी रहने लगता है।

इसकी परीक्षा करने पर पता लगा है कि इसके आकार की तुलना मे इसको रक्त बहुत अधिक मिलता है। इसमे छै बड़ी २ धमनियां रक्त लाती हैं और बड़ी २ शिराएं इसमें से रक्त को ले जाती है। शरीर का सभी रक्त इसमें से होकर बहुत थोड़े समय मे निकल सकता है।

सौभाग्यवश इस ग्रन्थि के रोगो की चिकित्सा का भी आविष्कार हो गया है। पुर्तगाल के दो डाक्टरों ने पता लगाया है कि यदि भेड़ की चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid Gland) को मनुष्य मे लगा दिया जावे तो वह ठीक २ काम करेगी। उसके पश्चात न्यू कैसिल के डाक्टर जार्ज मरे ने पता लगाया कि भेड़ की चुल्लिका ग्रन्थि का इंजेक्शन (Injection) भी इसमे लाभप्रद होता है। इसके बाद यह भी पता लगा कि उक्त चुल्लिका ग्रन्थि के सार (Extract) का मुख द्वारा सेवन करने से भी लाभ होता है।

इस चिकित्सा से शरीर और मन दोनों को ही पर्याप्त लाभ देखने में आया है।

चुल्लिका ग्रन्थि को शरीर की धौंकनी का स्थानापन्न समझा जा सकता है।

उपचुल्लिका ग्रन्थियां

चुल्लिका ग्रन्थि के पीछे चार मटर के आकार की उपचुल्लिका ग्रन्थियां (Parothyroids) होती हैं। इनका आविष्कार सन १८८० में हुआ था। शरीर के लिये यह भी बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इनके निकाल देने से पेशियां सिकुड़ जाती हैं। इनके कारण ही बचपन मे मरोड़ा तथा अन्य रोग हो जाते हैं।

थाइमस ग्रन्थि

इस ग्रन्थि का कुछ भाग वक्ष मे उरोस्थि के पीछे और कुछ ग्रीवा के नीचे के भाग में होता है। यह लगभग दो इंच लम्बी होती है। दूसरे वर्ष मे यह पूरी बढ़ कर चौदहवे वर्ष मे बिल्कुल गायब हो जाती है। यह ग्रन्थि भी बडी महत्त्वपूर्ण होती है। यदि इसको एक बच्चे में से निकाल लिया जावे तो अस्थियां ठीक २ नहीं बढ़ेंगी। उनमें चूना कम रह जावेगा और प्राणि की उन्नति रुक जावेगी। बचपन मे इसके ठीक काम न करने से बच्चा बौना ही रह जाता है। इसके अतिरिक्त वह मोटा और कमज़ोर हो जाता है। उसको एक प्रकार का श्वास रोग भी हो जाता है।

उपवृक्क

इन सब ग्रन्थियों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उपवृक्क (Supra-

renal) ग्रन्थियां होती हैं। यह ग्रन्थियां उदर में दोनों वृक्क (गुर्दों) के ऊपर के सिरे पर टोपी के समान होती है। दाहिना उपवृक्क बाएं से कुछ छोटा और त्रिकोणाकार होता है। बायां उपवृक्क अर्धचन्द्राकार होता है । यह ग्रथिन्यां रक्त में अत्यंत आवश्यक पदार्थ डालती हैं। यदि किसी प्राणि मे से इन ग्रन्थियो को निकाल दिया जावे तो वह निर्बल होकर प्राय: मर जाता है। उनमे स्राव कम होने से पेशिया निर्बल रह जाती हैं । रक्त का दाब (Blood-Pressure) अथवा रक्त-चाप कम हो जाता है और नाडी सम्बन्धी रोग हो जाते है। इसका स्राव मात्रा से अधिक होने से रक्त-चाप भी अत्यधिक होने लगता है।

संभवत यह ग्रन्थियां रक्तावर्त का शासन करती हैं। नाड़ियों से इनका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध होता है। भय अथवा क्रोध का इनके स्राव पर तुरत प्रभाव पडता है। इसका स्राव रक्त मे से शर्करा को दूर करके उसकी गति कराता है। शर्करा पेशियों का आहार है। इसी के स्राव से हृदय की धड़कन भी धीरे २ अथवा देर से होती है।

भय के समय मनुष्य पीला क्यों हो जाता है

जब मनुष्य भय के उपस्थित होने पर पीला हो जाता है और उसका हृदय जोर से धड़कने लगता है तो इसका यह आवश्यक अर्थ नहीं है कि वह भयभीत है। इसका यह अभिप्राय है कि उसकी उपवृक्क ग्रन्थि ने रक्त में स्राव मिला दिया है, जिससे उसके चर्म के रक्तकोष सुकड़ गये हैं । मनुष्य क्रोध से

पीला होने पर लाल होने की अपेक्षा अधिक भयानक होता है।

रोमाञ्च भी उपवृक्क के कारण ही होता है। शरीर के प्रत्येक रोमकूप के नीचे उससे सम्बन्धित एक पेशी होती है। उस पेशी के सुकड़ने पर बाल खड़े हो जाते हैं। रोमाञ्च के समय उपवृक्क का स्राव इन पेशियों मे पहुच जाता है।

लज्जा से लाल होना और रोना भी उपवृक्क के ही कार्य हैं।

इस ग्रन्थि से स्राव को खींचना सुगम है। इस स्राव का नाम औषधियों मे ऐड्रेनैलिन (Adrenalin) होता है। यह पेशियों को संकुचित करके रक्त स्राव के रोकने मे काम आती है। उससे रक्त-चाप भी बढ़ता है। इसको कोकीन के साथ मिला कर इससे बिना कष्ट के दांतों को भी उखाड़ा जाता है।

ग्रन्थि बना हुआ मस्तिष्क का लुप्त चक्षु—पीनियल ग्रन्थि

पीनियल ग्रन्थि बादाम जितनी बड़ी होती है। यह मस्तिष्क की तली मे होती है। यह ग्रन्थि उपवृक्क अथवा चुल्लिका ग्रन्थियों के समान महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इसके विषय मे महत्त्वपूर्ण बात इसका इतिहास है। वास्तव मे यह आंख का अवशेष है। अन्धे कीड़े मे यह अब भी आंख के समान ही मिलती है। इसके द्वारा कीड़ा कुछ देख भी सकता है। प्राचीन काल मे इस ग्रन्थि में दृष्टि शक्ति थी। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों मे अब इसका देखने से कोई सम्बन्ध न रह कर यह केवल एक ग्रन्थि मात्र ही रह गई है।

अनुमान है कि इस ग्रन्थि का कार्य लैंगिक चिन्हों को शीघ्र

उत्पन्न न होने देना है। एक छै वर्ष की कन्या एक जवान स्त्री के समान मालूम होती थी। उसके कक्षतल में और विटप देश में बाल उग आये थे; उसको मासिक स्राव होता था और उसकी छाती भी खूब बड़ी थीं। मृत्यु के पश्चात् पता चला कि एक गुल्म के कारण उसकी पीनियल ग्रन्थि जाती रही थी। उसका रस शरीर में वसा को एकत्रित होने मे सहायता देता है। शिशुओं का मोटापन पीनियल और थाइमस द्वारा होता है।

यह बात बड़ी कौतुकपूर्ण है कि डेस्कारटीज (Descartes) नामक प्रसिद्ध फ्रांसीसी वैज्ञानिक और दर्शनिक पीनियल ग्रन्थि में ही जीवात्मा का निवास मानता था।

पिट्युट्री ग्रन्थि

मस्तिष्क के नीचे पीनियल ग्रन्थि के ही पास पिट्युट्री ग्रन्थि है। इसके दो खण्ड होते हैं; अगला और पिछला। इसका एक भाग नाक और हलक के तन्तुओं से निकला है तथा दूसरा मस्तिष्क से निकला है। इन दोनों ही भागों के कार्य प्रथक् २ हैं। एक तो रक्त के दबाव (Blood pressure) पर प्रभाव डालता है और दूसरा कंकाल के यथाप्रमाण बढ़ने पर।

इसके एक भाग का इंजेक्शन रक्त कोषों मे देने से रक्त का प्रेशर (दाब या चाप) बहुत बढ़ जाता है।

गर्भावस्था मे इसके अग्रखण्ड के अधिक कार्य करने से 'देव-पन' उत्पन्न होता है। आयर्लैंड के प्रसिद्ध देव कोरनिलियस मैकग्राथ (८ फुट ६ इंच) और चार्ल्स बाइर्न (८ फुट २ इंच) दोनों को

यही रोग था। रूस के प्रसिद्ध देव फेडर मैकनो (९ फुट ३ इंच) के हाथ २४ इंच लम्बे है।

इस प्रकार मस्तिष्क के अन्दर की इस ग्रंथि में देव बनाने की शक्ति है। सन १९२३ मे एक और प्रणाली रहित ग्रन्थि का पता लगा। इसका अविष्कार शरीर विज्ञान (Physiology) के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है।

मनुष्य के सब से भयकर रोगों मे मधुमेह (Diabetes) भी एक है। इस रोग के कारण पाचन क्रिया में शर्करा से काम नहीं लिया जा सकता। अतएव शर्करा रक्त में सीधी मिल कर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न किया करती है।

मधुमेह और क्लोम ग्रंथि

अभी तक यह रोग एक रहस्य ही बना हुआ था; किन्तु इस बात का अभी २ पता चला है कि क्लोम (Pancreas) ग्रंथि का इससे कुछ न कुछ अवश्य सम्बन्ध है। क्यों कि यह रोग क्लोम ग्रंथि की रुग्णावस्था मे और उसके निकाल देने पर हुआ।

क्लोम ग्रन्थि पाचन कार्य को करती है। यह क्लोम रस (Pancreatic Juice) को उत्पन्न करती है। यह रस पाचन क्रिया में बडा महत्वपूर्ण कार्य करता है। किन्तु यह विचार किया गया है कि यह ग्रंथि कुछ स्राव को रक्त मे सीधे मिला देती है, जिससे जीवित सेल शर्करा का सेवन करते हैं। इसी सिद्धांत पर कार्य करते हुए स्वस्थ क्लोम ग्रंथि के सार के इंजेक्शन मधुमेह में दिए गए; किन्तु यह सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। तब

यह सोचा गया कि संभवतः प्रबल पाचन रस अन्दर के दूसरे स्रावों को नष्ट कर देते थे।

किन्तु कुछ लोगों ने यह देखा कि क्लोम प्रणाली के रुक जाने पर क्लोम ग्रंथि के कुछ टुकडों के अतिरिक्त सभी सेल मर गये। यह भी पता लगा कि इन टुकड़ों के रहते हुये मधुमेह नहीं हुआ। अतएव यह विश्वास करना पड़ा कि यह टुकडे प्रणाली-रहित वह ग्रंथिया थीं, जिनमे शर्करा के सम्बन्ध का स्राव निकलता था। अन्त मे इन टुकडों से इन्स्युलीन (Insulin) नामक पदार्थ निकाला गया। इसका इजेक्शन रक्त मे करने से रक्त की शर्करा दूर हो जाती है। यह अविष्कार वास्तव मे बड़ा भारी महत्वपूर्ण था, यद्यपि इससे भी कई एक को लाभ नहीं हुआ।

क्या बन्दर की ग्रंथियों से युवावस्था फिर आ सकती है?

इन प्रणाली रहित ग्रन्थियों के सार से अनेक रोगों को लाभ होता है। अनेक रोगों मे दो २ ग्रंथियों के सार का सेवन किया जाता है। कुछ का तो यहां तक विश्वास है कि युवक पशुओं की ग्रंथियो के सार का सेवन करने से फिर युवावस्था प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह बात इतनी सुगम नहीं है। क्यों कि एक दो ग्रंथि के हेर फेर से कभी युवावस्था नहीं आ सकती। युवावस्था शरीर की सारी ग्रन्थियों के बदलने से ही आ सकती है। यह कार्य ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार घड़ी के एक या दो पहियों को तेल देकर उनको चलाने की आशा रखना। आज कल बन्दर की ग्रंथियों के द्वारा युवा बनाने के अनेक विदेशी

विज्ञापन देखने में आते हैं। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि वह सब कोरी ठगविद्या है।

प्लीहा (Spleen)

प्रणाली विहीन ग्रंथियों में प्लीहा (तिल्ली) को भारतवर्ष मे सब कोई जानते हैं। इसका रंग बैजनी होता है। भार मे यह ३ छटांक के लगभग और लम्बाई में ४ या ५ इंच होती है। मलेरिया आदि ज्वरों में प्लीहा का परिमाण बढ़ जाता है। प्लीहा के किसी विशेष कार्य का अभी तक पूरी तौर से पता नहीं चला है। यदि किसी व्यक्ति के शरीर में से प्लीहा निकाल ली जावे तो उस व्यक्ति के स्वास्थ्य मे अभी तक कोई अन्तर देखने मे नहीं आया। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह ग्रंथि रक्त के उन लाल कणों को नष्ट करती है, जो अपना काम कर चुके है और जिनकी आयु पूरी हो चुकी है। यह ग्रंथि श्वेत कणों को बनाती भी है। संभवत: यह ग्रंथि किसी प्रकार शरीर की रोगाणुओं से रक्षा भी करती है।

अंड और डिम्ब ग्रंथियां

जनन ग्रंथिया (पुरुष में अण्ड और स्त्री में डिम्ब ग्रंथि) ही शरीर मे ऐसी ग्रंथिया हैं जो खटिक सम्मिश्रणो के शरीर मे जमा होने को कम करके कंकाल के अधिक बढ़ने को रोकती हैं। यदि इन ग्रन्थियों को बचपन मे निकाल दिया जावे तो सम्पूर्ण कंकाल लम्बा हो जाता है।

यदि दोनों अण्ड निकाल दिये जावें तो नपुसकता हो जाती

है। नपुंसक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकता, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह मैथुन भी न कर सके।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति में दोनों प्रकार के लैंगिक चिन्ह होते हैं। अण्ड और डिम्ब ग्रंथियों का काम है कि वह एक प्रकार के चिन्हों को दबा दें, जिससे व्यक्ति में एक ही प्रकार के लैंगिक चिन्ह प्रधान रहें (नर या नारी)। अण्ड का काम नारी चिन्हों को दबाना और नर चिन्हों को उभारना है; डिम्ब ग्रंथि का काम है नारी चिन्हो को उभारना और नर चिन्हों को दबाना।

प्रणाली वाली ग्रंथियां

प्रणाली सहित ग्रंथियों मे भी कुछ ग्रन्थियां ऐसी हैं, जो दोनों प्रकार की वस्तुए बनाती है। एक वह, जिसकी विशेष स्थान मे आवश्यकता होती है, दूसरी वह, जो रक्त के द्वारा सम्पूर्ण शरीर मे भ्रमण करती है। ग्रंथि वास्तव मे सेल समूह होता है।

यकृत् (जिगर)

प्रणाली सहित ग्रंथियों मे यकृत् (Lever) सब से बड़ा होता है। यह ग्रंथि वक्ष-उदर-मध्यस्थ-पेशी के नीचे रहती है। इसका अधिक भाग दाहिनीं ओर रहता है। इस मे पित्त (Bile) बनता है, जो पित्तप्रणाली द्वारा शुद्ध अन्त्र के पक्वाशय नामक भाग में पहुच कर भोजन को पचाता है। इस ग्रंथि का भार डेढ़ सेर के लगभग होता है।

क्लोम (Pancreas)

यह ग्रंथि उदर में मेरुदण्ड के सामने आमाशय और अन्त्र के पीछे रहती है। इसका रस एक नली द्वारा पक्वाशय में जाता है और भोजन को पचाता है। इसका वजन डेढ छटांक के लगभग होता है।

अंड या शुक्र ग्रंथियां

यह दो होते है और केवल पुरुष मे ही होते हैं; स्त्री मे नहीं। इन मे शुक्र या वीर्य बनता है। शुक्र पहिले शुक्र प्रणाली द्वारा शुक्राशय मे जाता है और वहा से मैथुन के समय मूत्र-मार्ग मे (शिश्न द्वारा) होकर बाहिर निकलता है।

दुग्ध ग्रंथि अथवा स्तन

स्तन स्त्री और पुरुष दोनों मे होते हैं, परन्तु दुग्ध केवल स्त्री मे ही बनता है। स्त्री के स्तन पुरुषो से अधिक बड़े होते हैं।

लाला ग्रंथियां अथवा थूक की ग्रंथियां

यह प्रत्येक मनुष्य मे छै होती है। तीन दाहिनी ओर तीन बायीं ओर। इनमे थूक बनता है, जो एक प्रकार का पाचक रस है। यह नलियो द्वारा मुह मे जाता है।

डिम्ब ग्रंथियां

यह दो ग्रंथिया स्त्रियों मे ही होती हैं। इनमे डिम्ब या अंडे बनते हैं, जो डिम्ब प्रणाली द्वारा गर्भाशय मे चले जाते हैं। इन ग्रंथियों से एक ऐसी चीज भी बनती है जो सीधी रक्त मे चली जाती है।

लसीका ग्रन्थि

जब रक्त केशिकाओं (Cappillaries) मे बहता है तो उनकी पतली-पतली दीवारों मे से उसका कुछ तरल भाग चू कर बाहिर निकल जाता है। इस चुए हुए तरल का नाम लसीका है। रक्त लसीका द्वारा ही सेलों का पोषण करता है।

कक्षतल, वंक्षण (Groin) और ग्रीवा मे गुठलियों जैसी अनेक ग्रन्थियां होती हैं। यह ग्रन्थियां वक्ष और उदर मे भी रहती है। यही लसीका ग्रन्थियां है। रोग की दशा में यह बढकर बड़ी या सख्त हो जाने पर सहज मे टटोली जा सकती है। स्थानीय लसीका वाहनियां (Lymphatic) इन ग्रन्थियो मे से होकर जाया करती है। महामारी (प्लेग) मे इन्ही ग्रन्थियों का प्रदाह होता है। इनके सूजने या पक जाने को ही बद या गिलटी का निकलना कहते हैं। पैर या टाग मे फोड़ा बनने से जॅघासे (वंक्षण) की गिलटिया फूल जाया करती हैं। हाथ मे जख्म या फोड़ा होने से कोहनी और कक्षतल की गिलटिया फूल जाया करती है। कान मे दर्द होने से कभी २ कान के सामने की गिलटी फूल जाती है। उन्हीं को सूजी हुई दशा में प्रथक् २ स्थानो मे उलम्बा, कनफेड़, गण्डमाला, बद, गिलटी और गदूद आदि कहते हैं। आतशक मे समस्त शरीर की लसीका-ग्रन्थियां बड़ी हो जाती है। अब यह छूने से कड़ी और सख्त मालूम होती हैं।

चौबीसवां अध्याय

कर्ण—श्रवणेन्द्रिय

मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी के विषय मे हम बहुत कुछ जान गए हैं। यह दोनो मिलकर ही केन्द्रीय नाड़ी चक्र कहलाते हैं। किन्तु केन्द्रीय नाडी चक्र के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि उसका पहिला कार्य बाहिर से समाचार मंगवाना है। इन समाचार ग्रहण करने वाले अंगों को ही इन्द्रियां कहा जाता है। भारतीय दर्शनों मे इन्हीं को ज्ञानेन्द्रिय कहा गया है।

इन्द्रियां पांच होती हैं—स्पर्शन (Touch), रसना (Taste), घ्राण (Smell), चक्षु (Seeing), और कर्ण (Hearing)।

किन्तु वर्तमान विज्ञान से सिद्ध हुआ है कि स्पर्शन नाम की कोई एक इन्द्रिय नहीं है। क्यों कि उष्णता, शीत और कष्ट को सहन करने वाली इन्द्रियां पृथक् २ हैं।

यह सब इन्द्रियां शरीर का बाह्य जगत् के साथ सम्बन्ध करती हैं। यह पेशियों, सन्धियों (Joints) और कुछ अन्दर की नलियों से बनती हैं।

अब प्रत्येक इन्द्रिय का प्रथक्-प्रथक् वर्णन करने के लिए प्रथम कर्ण का वर्णन किया जाता है।

यह पहिले बतलाया जा चुका है कि मस्तिष्क में सुनने का स्थान प्रथक् होता है। 'कर्ण' शब्द का अर्थ सुनने वाली इंद्रिय है। अत: वास्तविक कर्ण मस्तिष्क का श्रवण-केंद्र ही है। जैन दर्शन मे भी विज्ञान के इस आशय को पहिले से ही दिखलाया जा चुका है। उसके अनुसार बाहिर की इंद्रिय और उसकी रचना उपकरण है, तथा अंदर की इंद्रिय निर्वृति है। अत. हमको कान के चिन्हों को कर्णोपकरण तथा उसकी श्रवण प्रणाली और श्रवण केन्द्र को कर्ण-निर्वृति कहना चाहिये। संगीत सुनने वाली कर्णनिर्वृति दाहिने हाथ से काम करने वाले मनुष्यों में बाईं ओर और बाए हाथ से काम करने वालो मे दाहिनी ओर होती है। बड़े २ संगीतज्ञों मे सम्भवत: यह केन्द्र मस्तिष्क में दोनों ओर विकसित हो जाता है।

किन्तु शब्द को कान के द्वारा मस्तिष्क मे सीधे नहीं सुना जा सकता। यदि मस्तिष्क के स्पर्शन-केन्द्र को छुवा जावे तो उसको कुछ भी अनुभव न होगा। यही नियम अन्य सब इन्द्रियों के विषय में भी है। उदाहरणार्थ, आंख में सुरमा लगाने से वह आंख को दिखलाई नहीं देता। मस्तिष्क इंद्रिय ज्ञान को तभी ग्रहण कर सकता है, जब वह ज्ञान उसके पास इंद्रियों के उपयुक्त मार्गों में से होता हुआ आवे। अतएव यहां उस मार्ग का अध्ययन करना है, जो कान के बाहिर से मस्तिष्क के अन्दर तक आता है।

छोटी-छोटी ग्रंथियां होती हैं। इन ग्रंथियों में वह वस्तु बनती है, जिस को साधारण बोल चाल मे कान का मैल कहते हैं। कान के मैल को ही कर्णगूथ कहते हैं। यह बहुत थोड़ा बनता है और पतला होता है। कभी-कभी वह अधिक बनने लगता है और नली मे एकत्रित हो जाता है। यह वस्तु पानी लगने पर फूल जाती है। कान में पानी गिरने से जो कर्णशूल हो जाया करता है, उसका एक कारण इस मैल का खूब फूल जाना भी है।

हम इस कर्णगूथ को बुरा समझते हैं। किन्तु कान की स्वच्छता और रक्षा का यह बड़ा भारी साधन है।

कर्णाञ्जलि बिल्कुल सीधी नहीं होती और इसी कारण बाहिर से उसके सब भाग दिखलाई नहीं देते। कर्ण-शष्कुली को ऊपर और नीचे खींचने पर कर्णाञ्जलि पूरी की पूरी देखी जा सकती है।

कर्णपटह

कर्णाञ्जलि को कर्ण-दर्शक-यंत्र द्वारा यथाविधि देखने से उसके अन्त पर एक धूसर-श्वेत चमकदार पर्दा लगा हुआ दिखलाई देगा। इस पर्दे को कर्ण-पटह (Tympanum) कहते हैं।

श्रवण कार्य मे कर्ण पटह का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह बड़ा कोमल होता है। इसमें कुछ भी हानि होने से श्रवण शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। इसको अंदर अथवा बाहिर कहीं से भी हानि पहुंच सकती है। कभी २ छोटे-छोटे बच्चे अपने कानों में छोटे दाने अथवा मटर डाल लेते हैं। किन्तु अपनी इस मूर्खता के लिये बच्चे को जीवन भर पश्चात्ताप करना पड़ता है।

ऐसा होने पर दाने को स्वयं न निकाल कर डाक्टर को तुरन्त बुलाना चाहिये।

कर्णपटह को अन्दर से भी हानि पहुंच सकती है; इसी कारण कान मे दर्द हो जाया करता है। कान की हानि को कान के अन्दर की अन्य रचना को देखने से सुगमता पूर्वक समझा जा सकेगा।

कर्ण पटह बाह्य कर्ण को मध्यकर्ण से प्रथक् करता है। कर्ण पटह के मध्य भाग मे एक गढा सा दिखाई देता है। उसे पटह नाभि (Umbo) कहते हैं। परदे का यह भाग मध्यकर्ण की ओर दबा हुआ है। परदे के मध्य मे एक तिरछी रेखा दिखलाई देती है। यह रेखा ऊपर से नाभि तक रहती है। यह रेखा वास्तव मे मध्यकर्ण की मुद्गर (Hammer) नामक अस्थि के प्रवर्द्धन (मुद्गर दण्ड) की छाया है। कभी-कभी मुद्गरास्थि (Hammer) के पीछे नेहानी अस्थि (Anvil) का लघु प्रवर्द्धन भी दिखलाई दिया करता है। पटह के अगले और नीचे के भाग मे एक तिकोना चमकीला स्थान देख पड़ता है। इसे प्रकाश शंकु (Cone of light) कहते हैं। इसका कारण प्रकाश की किरणों का परावर्तन है। कर्णपटह पर और भी कई चीजें दिखलाई देती हैं, किन्तु उनमे छिद्र कोई नहीं होता।

मध्य कर्ण

यह एक छोटी सी कोठरी है, जो शंखास्थि के भीतर रहती है। इस कोठरी की चौड़ाई चौथाई इंच और लम्बाई अथवा ऊंचाई आधे इंच से कुछ ही अधिक होती है। इसकी बाहिरी

दीवार कर्णपटह से बनती है। भीतरी दीवार से अन्तःस्थ कर्ण का आरंभ होता है। इस दीवार मे दो छिद्र होते हैं। एक अण्डाकार दूसरा गोल। शेष दीवारें, छत और फर्श शंखास्थि से बनते हैं। उसकी सामने की दीवार में एक नली का मुख होता है। इस नली द्वारा मध्यकर्ण का कंठ से संबन्ध रहता है। इस नली को कण्ठ-कर्ण-नाली कहते हैं। नाक और मुख के छिद्रों के बन्द करने पर श्वास इसी नली के द्वारा कान मे जाने लगता है, जिसके शब्द को उस समय सुगमता से सुना जा सकता है। इस वायु के दबाव से कर्ण पटह कुछ बाहिर को जाने लगता है।

मध्यकर्ण वायु से भरा होता है, जो उसमे कण्ठ-कर्ण-नाली के द्वारा आती है। दोनों कानों मे वायु का दबाव एकसा रहने से ही स्वास्थ्य को लाभ होता है।

सिर को सर्दी लगने से बहरापन होने का कारण

यदि मध्य कर्ण के अन्दर की वायु का दबाव बाहिर की वायु से कम हो तो कर्णपटह अन्दर को जावेगा और उस पर जोर पड़ेगा। कभी कण्ठ और नाक के मैल से इस नाली के बंद हो जाने पर कानों मे वायु का जाना बन्द हो जाता है। किसी कोयले की खान मे नीचे को उतरते समय कई-कई बार वायु को अन्दर निगलने की सी क्रिया करनी चाहिये। क्योंकि निगलने से कण्ठ-कर्ण-नाली खुल जाती है। नीचे को उतरते समय बाहिर की

वायु का दबाव बढ़ जाता है। अतएव उक्त नाली को बिना खोले हुए उस पर ज़ोर पड़ना संभव है।

इस बात को सब कोई जानते हैं कि कान मे सर्दी लग जाने से प्रायः बहरापन हो जाता है। इसका कारण यह है कि सर्दी के कंठ-कर्ण-नाली मे पहुंच जाने पर नाली मे सूजन आ जाती है; जिससे वह निर्बल हो जाती है। अब वह मध्य-कर्ण और बाहिर की वायु के दबाव को एकसा रखने मे असमर्थ होजाता है। अतएव कर्ण-पटह पर जोर पड़ता है और वह अपने स्वभाव के अनुसार स्पंदन (Vibration) नहीं कर सकता। अन्य अनेक प्रकार के रोगों में भी कर्णपटह पर इतना जोर पडता है कि वह फट जाता है और मनुष्य जन्म भर के लिये बहरा हो जाता है।

मध्य-कर्ण की अस्थियां

मध्य कर्ण मे तीन छोटी-छोटी अस्थिया होती है। यह आपस में बंधनों द्वारा बंधी होती हैं। इनके बीच मे चल संधियां होती हैं। कर्णपटह के पास की अस्थि को मुद्गर (Hammer) कहते हैं। बीच की अस्थि को नेहाई अथवा निहानी (Anvil) कहते हैं। तीसरी अस्थि अन्तःस्थ कर्ण के पास होती है। इसका नाम रकाब (Stirrup) है। इन अस्थियों के नाम इनके आकार के अनुसार ही रखे गये हैं।

यह अस्थिया मध्य-कर्ण मे मे शब्द की तरंगों को ले जाती हैं। इनके इस कार्य के वास्ते ही मध्य कर्ण मे वायु भरी होती है। वायु न होने की दशा मे यह अस्थियां स्वतंत्रता से नहीं हिल

सकती। शब्द की तरंग कान मे जब २ आती है तो कर्णपटह हिलता है। कर्णपटह के हिलने से उससे लगी हुई मुदगरास्थि भी हिलती है। मुद्गरास्थि के हिलने से बाकी दोनो अस्थियां भी हिलती हैं और इस गति का प्रभाव अंत.स्थ कर्ण पर भी पडता है। जब तक अस्थियां अच्छी तरह चलती हैं तभी तक हम अच्छी तरह सुन सकते हैं। वृद्धावस्था मे इनकी संधियो के बिगड़ जाने से इनकी गति मे भी अ'तर आ जाता है, जिससे उस अवस्था मे शक्ति कम हो जाती है।

मध्य कर्ण मे दो पेशिया भी होती हैं। यह दोनों ही उक्त अस्थियों की सहायता से श्रवण शक्ति को अधिक तेज करती है।

अन्तःस्थ कर्ण

अन्त.स्थकर्ण यद्यपि अस्थियो से ही बना होता है किन्तु वह अत्यंत कोमल होता है। इसके अन्दर एक तरल पदार्थ भरा होता

कर्ण इन्द्रिय
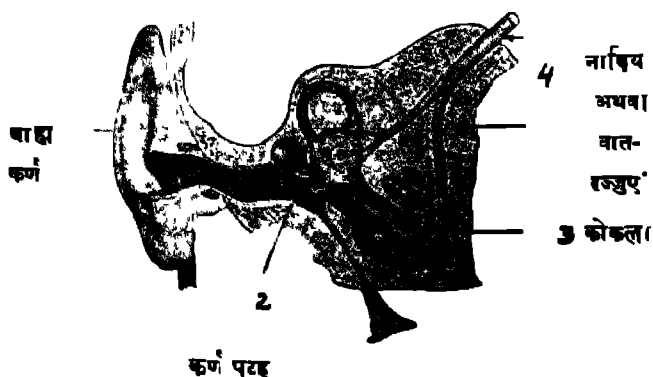
है। जिस समय शब्द की तरंग से रकाबास्थि की जड मे कम्प उत्पन्न होता है, तो उसके साथ ही वह झिल्ली भी हिलती है, जिसमे रकाबास्थि लगी होती है। अतएव झिल्ली के दूसरी ओर अंत:स्थ कर्ण का तरल पदार्थ लगातार बराबर थपथपाया जाता है और इस प्रकार उत्पन्न हुई शब्द तरंगें इस कुण्डलाकार: लच्छे मे को घूम कर आती हैं।

कर्ण का वास्तविक महत्त्वपूर्ण भाग यही होता है।

अन्त:स्थ कर्ण के तीन भाग हैं। मध्य कर्ण के सम्मुख एक कोठरी होती है। वह बीच का भाग है। इसको बीच की कोठरी अथवा कर्णकुटी कहते है। इस कोठरी के पिछले भाग से तीन अर्द्धचक्राकार नालिया (Semi-Circular canals) जुडी होती हैं, इन से अन्त:स्थ कर्ण का पिछला भाग बनता है। कोठरी के सामने घडी की कमानी के समान मुड़ा हुआ एक भाग होता है। इसकी शकल कोकला नामक शंख से बहुत कुछ मिलती है। इस कारण इसको कोकला (Cochlea) कहते हैं। इस प्रकार अन्त:स्थ कर्ण के निम्नलिखित तीन भाग होते हैं:—

१-तीन मुड़ी नालिया अथवा अर्द्धचक्राकार नालियां।

२-बीच की कोठरी अथवा कर्णकुटी॥

३-कोकला (Cochlea or Spiral canal)।

यह सब अस्थि की ही होती है। अन्त:स्थ कर्ण के अंदर सब कहीं अस्थियों के ऊपर कोमल २ सूत्रों की एक झिल्ली बिछी होती है। उन सूत्रों की संख्या कई लाख होती है।

कोकला के सिरे पर पहुंचते २ नाली तंग होती जाती है। अतएव यह सूत्र भी आगे आगे छोटे होते जाते हैं। इन सूत्रों के ऊपर छोटे २ आश्चर्यजनक सेल होते हैं। यह उनके ऊपर छोटे २ रोंहे के जैसे जान पड़ते हैं। यह सेल कोकला के अंदर के तरल पदार्थ में डूबे रहते हैं। सभवत· उस तरल पदार्थ की लहरों को यह रोंहें जैसे सेल ही ग्रहण करते हैं। उन लहरों को ग्रहण करने के पश्चात सेलों मे कुछ क्रिया होती है।

शब्द तरंग की बाह्य जगत् से मस्तिष्क तक की यात्रा

इन सेलों के नीचे के भाग की परीक्षा करने पर पता चलता है कि मस्तिष्क से इस भाग को आने वाली श्रावण-नाड़ी (Nerve of hearing) के कुछ सूत्र यहा आकर इन सेलों की तली पर समाप्त हो जाते हैं। उक्त सूत्र सेलों में नहीं आते, वरन् सेल ही-नाडी सूत्रों के किनारे पर लगे रहते है।

इस प्रकार यह देख लिया गया कि शब्द-तरंग बाह्य कर्ण मे से होती हुई वायु से भरी हुई मध्य कर्ण की नाली मे तीन अस्थियों के द्वारा आती है। इसके पश्चात् वह तरल की नाली मे आकर अंत मे उसके रोंहों जैसे सेलों मे आती है।

इन सेलों में आकर यह शब्द तरंग समाप्त हो जाती है। उस समय इसके स्थान मे एक और नाड़ी-तरग (Nerve current) बनती है, जो मस्तिष्क में जाती है। इस नाड़ी-तरंग से मस्तिष्क के श्रवण सेल (Hearing cell) भड़क जाते हैं और तब हम को शब्द सुनाई देता है।

ज्ञान कराने वाली नाड़ी-तरंगें

केवल कान के विषय मे ही यह बात नहीं है, बल्कि यह बात सभी इन्द्रियो के विषय मे है । आंख मे प्रकाश का प्रतिबिम्ब मस्तिष्क मे न जाकर केवल नाड़ी तरंग ही जाती है। इसके विरुद्ध मस्तिष्क के दर्शन-केन्द्र वाले स्थान मे तो अत्यंत गुप अंधेरा है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के विषय मे भी समझ लेना चाहिये।

साम्य-स्थिति रखने की शक्ति

यह पहिले बतलाया जा चुका है कि अन्तस्थ कर्ण मे ऊपर की ओर तीन अर्द्धचक्राकार नालिया होती हैं। दोनों कानो की नालियो को मिलाने स प्रत्येक मनुष्य मे छै नालिया होती है। इनके अन्दर भी झिल्ली होती है; जिसमे तरल के अन्दर लोमश सेल होते हैं।

जिस प्रकार दृष्टि-नाड़ी नेत्र मे और श्रावण नाडी कान मे आती है, उसी प्रकार साम्यस्थिति (Balance) नाड़ी इन अर्धचक्राकार नालियो मे आती है। साम्यस्थिति नाड़ी इन नालियों स चलकर लघु मस्तिष्क मे मिलती है। चलते, फिरते, कूदते, छलांग मारते, करवट बदलते अथवा हिडोले मे चक्कर खाते समय इन नालियों के अंदर का तरल भी हिलता है और लोमश बालों के सेलों से टकराता है। इस तरल के दबाव से जो प्रभाव इन लोमश सेलों पर पड़ता है, उसकी सूचना नाड़ी-सूत्रों द्वारा लघु मस्तिष्क को मिलती है। इन नाड़ियों द्वारा लघु मस्तिष्क को इस बात की सूचना मिलती है कि हम किस दिशा में जा रहे हैं और हमारे शरीर की क्या स्थिति है। अर्थात् हम

खड़े हैं या पड़े हैं, उलटे हैं अथवा चक्कर खा रहे हैं। इस सूचना से लघु मस्तिष्क को शरीर में साम्यस्थिति रखने मे सहायता मिलती है। इन नालियों मे रोग हो जाने से शरीर की साम्यस्थिति में भी अन्तर आ जाता है। उस समय यदि रोगी सीधा खड़ा होना चाहे तो ऐसा करने मे उसको बड़ी कठिनता होगी और चक्कर आने लगेंगे।

अर्द्धचक्राकार नालियों का इतिहास

इन नालियों का इतिहास बडा कुतूहल जनक है। मेरुदंड वाले प्राणियों में सबसे अधिक निम्न-श्रेणि की प्राणि मछली होती है। किन्तु उसमे यह नालियां नहीं होतीं। तो भी मछली अपनी साम्यस्थिति को बनाये रखने मे बड़ी चतुर होती है। इसका कारण यह है कि मछली के ऊपर पानी का अत्यधिक बोझ होने से मछली उस बोझ की सूचना अपने चर्म द्वारा इतने अधिक परिमाण मे पाती है कि उतनी सूचना हमको नालियां भी नहीं देतीं।

मछली से ऊपर के प्राणियों में चढ़ते समय इन नालियों के आविर्भाव के चिह्न क्रमशः मिलते जाते हैं; यद्यपि यह चिह्न एकदम ही प्रगट नही होते। संभवतः यह नालियां पक्षियों में पूर्णतया विकसित होती हैं, क्यों कि पक्षियों को इस शक्ति की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। पक्षि के पश्चात् मनुष्य मे तो इसके विकास मे कोई संदेह ही नहीं है।

इस प्रकार शरीर मे कान की रचना सबसे अधिक आश्चर्य-जनक, रहस्यमय और पेचीली है।

पच्चीसवां अध्याय

स्वर यन्त्र

स्वरयंत्र (Larynx) केवल बोलने और गाने के ही काम नहीं आता; इसका श्वास लेने जैसे महत्वपूर्ण कार्य मे भी उपयोग किया जाता है।

अत्यन्त प्राचीन काल मे फुफ्फुसों का विकास होने के समय से ही स्वरयंत्र का मार्ग उस मार्ग के सामने है जो कंठ में से भोजन नली के अंदर जाता है। अतएव भोजन की जाने वाली प्रत्येक वस्तु स्वरयंत्र को लांघ कर भोजन नली में इस प्रकार जाती है कि स्वरयंत्र में ज़रा भी नहीं घुसती। इस प्रकार स्वर-यन्त्र का कार्य शब्द उत्पन्न करने के अतिरिक्त श्वास मार्ग पर ध्यान रखना भी है; क्यों कि प्रत्येक बार भोजन करते समय वायु-मार्गों की रक्षा वही करता है।

स्वरयन्त्र नौ कार्टिलेजों से बना होता है। यह पीछे

बतलाया जा चुका है कि कारटिलेज (Cartilage) एक हड्डी जैसा उससे नम्र पदार्थ होता है। कारटिलेज ही बाद मे सख्त होकर अस्थि कहलाने लगती है।

स्वरयन्त्र का कार्य दोनों स्वर-रज्जुओं को सहायता देना और उनके कार्य को अपने आधीन रखना है।

हमारे श्वास की सभी वायु दोनों स्वर-रज्जुओं के बीच के स्थान मे से हो कर जाती है। उनके एक साथ अथवा प्रथक् करने का प्रबन्ध बिल्कुल सरल है। वह श्वास के प्रत्येक बार अन्दर जाते समय प्रथक् हो जाती है। इनके प्रथक् न हो सकने की दशा मे दम घटने लगता है। किन्तु इन रज्जुओं को स्वर उत्पन्न करने के लिये इससे बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है। यह संभव होना चाहिये कि उनको तंगी से फैला हुआ रक्खा जा सके; जिससे उनके विरुद्ध वायु के जोर करने पर उनमे कम्प उत्पन्न हो जावे और उनको भिन्न २ परिमाणों मे फैलाना सुगम हो सके। शब्द का अध्ययन करते समय यह बतलाया जावेगा कि गायन के स्वर का उतार चढ़ाव किसी कांपती हुई वस्तु से उत्पन्न किया जाता है और वह उसकी लम्बाई, तंगी तथा बोझ आदि अनेक वस्तुओं पर निर्भर करता है।

प्यानो मे जब हम भिन्न २ स्वरों को निकालते हैं तो उसमें भिन्न २ लम्बाई के अनेक तारो को पास-पास रक्खा हुआ पाते हैं। हम उसमें से किसी एक पर अंगुली रख कर आवश्यक स्वर निकाल सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनमे से कुछ तार अनेक हल्की-

भारी धातुओं के बने होते हैं। बेले (Voilin) के तारों की सख्या यद्यपि बहुत कम होती है किन्तु उसमे तारों को अंगुली द्वारा रोकने से सभी स्वरों को बजाया जा सकता और इस प्रकार तार की लंबाई को इच्छानुसार कम-बढ़ती किया जा सकता है। उसके तार भी भिन्न २ वजन और मोटाई के बने होते हैं।

किन्तु स्वरयन्त्र मे केवल दो ही तार होते हैं और वह भी सदा एक साथ ही कार्य करते है, क्योंकि उनमे से केवल एक से आवाज निकालना बिल्कुल असंभव है। इसके अतिरिक्त उन दोनो का वजन और नाप (लम्बाई) भी एक ही होता है। मानव-शरीर के बाहिर एक तार वाला कोई बाजा ऐसा नहीं होता, जिसको बेले के तार के समान भिन्न २ बिन्दुओं पर रोकने की आवश्यकता न पड़ते हुए भी वह अनेक प्रकार का शब्द निकाल सके। भिन्न २ प्रकार का शब्द केवल उसके कसाव को बदलने से ही निकल सकता है। संभवत यह कहना बिल्कुल ठीक है कि जीवित स्वरयन्त्र के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा वाद्य-यन्त्र नहीं है जो संगीत की आवश्यकता के अनुसार इस प्रकार भिन्न २ परिमाणों पर कसा हुआ हो और तार को कोई स्थायी हानि भी न पहुंचने दे।

गवैये की स्वर पर आश्चर्यजनक शक्ति

एक अच्छा गवैया मन्द्र और मध्य सप्तक मे बड़ी सुगमता से गा सकता है। अनेक गवैये तो तार सप्तक में भी गा सकते

स्वर यन्त्र के अन्दर का भाग

हैं। शरीर के बाहिर मनुष्यकण्ठ की इस प्रकृति-प्रदत्त शक्ति की कोई वस्तु तुलना नहीं कर सकती।

स्वर-रज्जुओं को ऐसा तंग तथा ढीला किस प्रकार कर लिया जाता है कि उनसे इच्छानुसार स्वर निकाला जा सके ? मुख फैला कर देखने से दोनों स्वर-रज्जुएं (Voice cords) स्वर-यन्त्र के सबसे बडी कारटिलेज मे लगी हुई दिखलाई देती हैं। किन्तु पीछे की ओर यही स्वररज्जु बड़ी कोमल २ छोटी-छोटी कारटिलेजों की गोलियों में इस प्रकार लगी हुई हैं कि उनको इच्छानुसार तुरन्त ही चाहे जिस दिशा मे झुकाया जा सकता है।

गाते समय कारटिलेजों की यह गोलियां पीछे की ओर को झुक जाती हैं। अतएव मनुष्य की वाणी के स्वर मे चढ़ते समय स्वररज्जुएं तंग हो जाती हैं। स्वर के उतार के समय यह गोलियां आगे को झुक जाती हैं।

वाद्ययंत्रों से मनुष्य-स्वर अधिक आश्चर्यजनक है

उच्च कोटि के संगीत को गाते समय उस गवैये की रज्जुएं इतनी तंग रहती हैं कि हल्के से हल्के स्वर मे भी उनको चार-चार बार कांपना पड़ता है। प्रकृति की सारी रचना में गवैये के अपने स्वरयंत्र पर पूर्ण शासन से अधिक कोमल कोई वस्तु नहीं है।

यह कल्पना भी नहीं करनी चाहिये कि गाने वाला प्यानो

अथवा हारमोनियम के दो सप्तकों मे ही सीमित रहता है। गाने वाला प्यानो अथवा हामोनियम के किसी भी स्वर मे अपने स्वर को मिला सकता है। चतुर गवैये प्यानो और हारमोनियम के स्वरो के बीच के स्वर (अर्द्धस्वर) भी निकाल सकते हैं।

यह बतलाया जा चुका है कि यह सब कार्य स्वर-रज्जुओं के तंग रहने पर निर्भर है; और यह तंगी उस शक्ति पर निर्भर है, जिस से कुछ छोटी २ पेशिया स्वर-रज्जुओं मे लगी कारटिलेजों को खींचती हैं। यह भी मस्तिष्क मे लगे हुए नाड़ी-सेलों द्वारा नाड़ियों मे भेजे हुए नाडी-प्रवाह के वेग पर निर्भर है। अतएव इस यंत्र की अविरोधी कोमलता का स्थान भी वास्तव में मस्तिष्क का नाड़ी-केन्द्र ही है।

शरीर मे निर्दोष स्वरयंत्र का अस्तित्व होना और उस से गायन के स्वर निकाल सकना दो बिल्कुल प्रथक् २ बातें हैं। किसी स्वर का अनुकरण करना भी बड़ा आश्चर्य जनक कार्य है। इसका अभिप्राय दूसरे के मस्तिष्क के सेलों के साथ २ अपने मस्तिष्क के सेलों से भी काम कराना है।

जिस सगीत को गायक ने कभी न सुना अथवा गाया हो उसका गाना तो उससे भी कठिन होता है।

स्वर यंत्र से निकले हुए संगीत मे जादू की सी शक्ति हो सकती है। वह हंसते हुए मनुष्य को रुला सकता है, रोते हुए को हँसा सकता है और बड़े २ आश्चर्य के कार्य कर सकता है।

छब्बीसवां अध्याय

आंख की कहानी

आंख सब से अधिक उच्चकोटि की इंद्रिय है। उसका इतिहास भी अत्यन्त रोचक है।

प्रकाश का थोड़ा बहुत ज्ञान होने का प्रमाण निम्न से निम्न कोटि के प्राणियो मे भी मिलता है; क्यों कि उन में से कुछ तो प्रकाश से छाया में आ जाते हैं और कुछ छाया से प्रकाश मे आ जाते हैं।

नेत्र के चिन्ह सब मे प्रथम उन प्राणियों मे मिलते हैं, जिनका चर्म ही प्रकाश को अच्छी तरह ग्रहण कर लेता है। ऐसे प्राणियों का रंग प्रकाश से छाया मे बदल जाता है। ऐसे प्राणियों के चर्म की सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र (Microscope) से परीक्षा करने पर पता चलता है कि उनके चर्म मे रंगे हुए उपादान के बहुत से सेल होते हैं।

इस उपदान को रोगन (Pigment) कहते हैं। यह रोगन के सेल प्रकाश को तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं। अपने ऊपर प्रकाश पड़ते ही सभी रोगन सेलों के शरीर में चिपचिपाहट के साथ

एकत्रित हो जाता है। किन्तु प्रकाश के दूर होते ही यह रोगन सेल-केन्द्रों में से निकल २ कर समस्त शरीर मे फैल जाता है।

उक्त प्राणि के शरीर का रग प्रकाश में बदल जाता है और इस प्रकार उक्त प्राणि प्रकाश के भेद को समझ जाता है।

यह बात निश्चित रूप से नहीं बतलाई जा सकती कि रोगन के सेलों पर प्रकाश का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है। किन्तु यह बात निश्चित है कि उक्त क्रिया रसायनिक है। फोटोग्राफी के विषय मे तनिक भी जानने वाला व्यक्ति इस बात को जानता है कि प्रकाश की क्रिया रसायनिक होती है। फोटो के प्लेट के चारों पर तो उसका रसायनिक प्रभाव अवश्य ही पड़ता है।

नेत्र के इतिहास का द्वितीय चरण यह है कि शरीर पर बिखरे हुए रोगन के सेल अब किसी २ स्थान पर विशेष रूप से एकत्रित हो जाते हैं। यह सेल बिल्कुल चर्म पर ही नहीं होते; वरन् उपचर्म (बाह्यचर्म) के नीचे भी होते हैं। यह रोगन-सेल जिस स्थान पर एकत्रित होते हैं, वहा का उपचर्म मोटा होकर थोड़ा ऊपर को उभर आता है। यह बात इस लिये महत्वपूर्ण है कि यदि प्रकाश तिरछे तल पर से रोगन-सेलों के ऊपर जाता है तो उसका लेन्स बनकर अन्दर फोकस पड़ता है।

शरीर के अन्य भागों के समान इन रोगन-सेलों का भी नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क से सम्बन्ध रहता है। इस प्रकार हम उस दर्जे पर पहुंच जाते हैं, जब प्रकाश के फोकस के लिये शरीर मे लन्स बन जाता है। ग्राहक-सेलों पर जब प्रभाव पड़ता है तो उनमें

एक प्रकार की रसायनिक क्रिया होती है। नाड़ियां इन परिवर्तनों का समाचार मस्तिष्क को दे देती हैं, जो इस प्रकार देखने मे समर्थ होता है। इस प्रकार यहा एक विशेष प्रकार की आंख होती है।

बिना मेरुदंड वाले प्राणियों के नेत्र इस प्रकार की आंख के कुछ विकसित रूप होते है। ऐसे प्राणियों के नेत्र सदा चर्म से ही विकसित होते हैं।

मेरुदंड वाले प्राणियों के नेत्र इनकी अपेक्षा उच्च कोटि के होते है। किन्तु बिना-मेरुदंड-वाले प्राणियों की शक्ति भी कम नहीं होती। कुछ कीड़ो मकोडों की आखें तो अत्यन्त तेज होती है। किन्तु मेरुदंड वाले प्राणियों के नेत्र अत्यन्त उत्तम ढंग के होते हैं। यह उत्तमता नेत्र की रचना के परिवर्तन पर निर्भर है, जब कि बिना मेरुदण्ड वाले प्राणियों के नेत्र बिल्कुल चर्म मे ही बने होते हैं। उच्च कोटि के नेत्र मस्तिष्क मे से विकसित होते है।

उच्च कोटि के नेत्रों का सामने का भाग यद्यपि चर्म से बनता है, किन्तु आंख के पीछे का पर्दा मस्तिष्क से ही बनता है; बल्कि यह कहना चाहिये कि यह पर्दा वास्तव मे मस्तिष्क का ही भाग है। यह भाग विकास के समय मस्तिष्क मे से उभर आया है।

मेरुदंड वाले प्राणियों की आंख के पर्दे अथवा सांवेदनिक पटल(Retina) के इतने अधिक शक्तिशाली होने का कारण यही है कि यह सांवेदनिक पटल स्वयं मस्तिष्क का ही भाग होता है। दृष्टि (Vision) इतनी महत्त्वपूर्ण है कि मस्तिष्क प्रकाश की

किरणों को ग्रहण करने के कार्य को किसी ऐसे अंग पर नहीं छोड़ सकता था, जो चर्म से विकसित हुआ हो। उसने इस कार्य के लिये स्वयं अपने ही एक भाग को भेजने का निश्चय किया, जिससे देखने का कार्य यथासंभव अच्छे से अच्छा हो।

नेत्र की परीक्षा करने पर पहली बात यह देखने में आती है कि उसका सामने का भाग पारदर्शी है। इस पारदर्शी भाग का नाम कनीनिका (Cornea) है।

कनीनिका का कार्य पूर्णतया पारदर्शी होना है। अतएव इसमें रक्त-कोष (Blood Vessels) नहीं होते। उसमें प्रकाश के मार्ग में बाधा डालने वाले रक्त या श्वेत कोई भी रक्त-सेल नहीं होते। किन्तु कनीनिका जीवित होता है और उसको भोजन मिलना ही चाहिये। उसको भोजन उसके किनारे के चारों ओर के छोटे रक्त कोषों की दीवार के अंदर से आने वाली सामग्री से मिलता है। कनीनिका में नाडियां बहुत सी होती हैं। उनमें से लगभग सभी उसके सामने के तल में जाती हैं, जिससे वह अधिक से अधिक ग्राहक हो।

यह इसलिये भी आवश्यक है कि जिससे धूल के छोटे से छोटे कण अथवा आंख को हानि पहुंचाने वाली किसी अन्य वस्तु का पता लग जावे और पलकें उसको आंसुओं के द्वारा धोकर निकाल दें। हमको दिखलाई देने वाला सभी प्रकाश कनीनिका (Cornea) में को होकर ही जाता है। तो भी कनीनिका एक जीवित अंग है और उसमें जीवित वस्तु की आवश्यक सभी

थोड़ा खुला हुआ नेत्र-गोलक

वस्तुएं हैं भी । यद्यपि वह पलकों, पलक के बालों, भौंहों और चारों ओर अस्थि से घिरी होती है, तो भी बहुत खुली रहती है।

आंख की रचना

नेत्रगोलक (Eyeball) एक दृढ़ तथा मोटे पदार्थ का बना हुआ सफ़ेद गेंद होता है। इसके अगले भाग को कनीनिका कहते हैं।

नेत्रगोलक की दीवार तीन तहों अथवा पटलो से बनती है। इन तीनों तहों का ही रंग पृथक् र होता है। सामान्य रूप से देखने पर नेत्रगोलक का अगला भाग काला दिखाई देता है और पिछला श्वेत। किन्तु आंख का सबसे बाहिरी पटल श्वेत होता है। आंख का श्वेत भाग इसी से बनता है। इस श्वेत बाह्य पटल के भीतर

मध्य पटल होता है, जिसका रंग काला होता है। मध्य पटल के भीतर उससे अंतरीय पटल लगा रहता है। इस अन्तरीय पटल का रंग नील लोहित होता है।

आंख का बाह्य श्वेत पटल अत्यंत दृढ़ होता है। यह पर्याप्त बोझ को संभाल सकता है।

आंख का अगला भाग काला (कुछ जातियों मे नीला) दिखलाई देता है। ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि यह काली वस्तु ऊपर न होकर आंख के भीतर है और एक कांच जैसी स्वच्छ वस्तु मे से चमकती हुई दिखलाई देती है। यह स्वच्छ वस्तु आंख के अगले भाग की दीवार है। यह पीछे जाकर श्वेत पटल से मिल गई है। वास्तव मे यह समझना चाहिये कि आंख का बाह्य या श्वेत पटल आगे जाकर स्वच्छ और विवर्ण हो गया है। इस स्वच्छ भाग को कनीनिका अथवा सफेद पुतली कहते हैं। कनीनिका मे से चमकता हुआ एक काला परदा दिखलाई देता है। कुछ जातियों मे यह भूरा अथवा नीला दिखलाई देता है। यह परदा मध्य पटल का अगला भाग है। इस परदे के बीच मे एक गोल छिद्र होता है, जो फैलता और सिकुड़ता हुआ दिखलाई देता है। जब किसी अंधेरी कोठरी की दीवार मे कोई छिद्र होता है तो वह दूर से काला ही दिखलाई देता है और ऐसा जान पड़ता है कि वह एक काला धब्बा है। इसी प्रकार आंख मे भी यह छिद्र काला-काला ही दिखलाई देता है। इस छिद्र को पुतली या तारा (Pupil) कहते हैं। जिस परदे मे यह

छिद्र होता है उसको उपतारा (Iris) कहते हैं। यह पेशी का छल्ला होता है।

आंख के पिछले $\frac{5}{6}$ भाग मे काला (मध्य) पटल श्वेत (बाह्य) पटल से बिल्कुल मिला रहता है; अगले $\frac{1}{6}$ भाग मे यह मध्य पटल कनीनिका से (जो वास्तव मे बाह्य पटल का ही भाग है) अलग हो जाता है और उसके पीछे उससे कुछ दूरी पर रहता है। कनीनिका के पीछे, किन्तु उससे कुछ दूरी पर रहने वाले मध्य पटल के भाग को ही उपतारा कहते हैं।

नील लोहित पटल ज्यों ज्यों आगे को आता है पतला होता जाता है। यह उपतारा के पास पहुंच कर अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। यह सूक्ष्म भाग उपतारा के पिछले पृष्ठ मे लगा रहता है।

उपतारा के पीछे आख का ताल (Lens) रहता है। इसका वही काम है, जो छाया-चित्रण-यंत्र (फोटे के कैमरे) के ताल का होता है। यद्यपि ताल स्वच्छ होता है, किन्तु वृद्धावस्था मे यह अस्वच्छ अथवा धुंधला हो जाता है। ताल के धुंधले हो जाने को ही मोतियाबिन्द कहते हैं।

किनारों से कटे हुये नेत्र को देखने से पता चलता है कि कनीनिका और उपतारा के अगले भाग के बीच में पर्याप्त खाली जगह होती है। यह स्थान एक प्रकार के तरल से भरा होता है। प्रकाश तारे (Pupil) पर पहुंचने से पूर्व इस तरल मे से होकर निकलता है।

उपतारा (Iris) का कार्य तारा (Pupil) के परिमाण को नियम मे रखना है। प्रकाश जितना ही कम होगा, पुतली उतनी ही बड़ी हो जावेगी। इसी कारण जिस समय कोई व्यक्ति अंधकार से प्रकाश में जाता है अथवा जब नेत्र प्रकाश मे खोले जाते हैं तो इस बात को कोई भी देख सकता है कि तारा (Pupil) छोटा हो जाता है। यदि कोई पुरुष किसी दूर की वस्तु से दृष्टि को हटा कर किसी पास की वस्तु को देखता है तो भी तारा छोटा हो जाता है।

नेत्र के रंग का कारण उपतारा (Iris) होता है। उपतारा के आगे और पीछे दोनों ओर सेलों (Cells) की एक तह होती है। उसमे रोगन या रंग (Pigment) रहता है। यह रोगन भिन्न २ मनुष्यों मे भिन्न २ परिमाण मे होता है। उपतारा में रक्त-कोशिकाओं और नाड़ियों के घने जाल होते हैं। उपतारा का रंग सब जातियों मे एकसा नहीं होता। जब उपतारा के सब भागों के सेलों मे रंग रहता है तब वह स्याही मायल दिखलाई दिया करता है (जैसे भारतवासियों में)।

कुछ नेत्रों के उपतारे के सामने के सेलों मे भूरा रोगन होता है और कुछ मे नही होता। इससे नेत्र दो प्रकार के हो जाते हैं— एक तो सामने भूरे रोगन वाले, दूसरे बिना भूरे रोगन के। यह थोड़े बहुत नीले दिखलाई देते हैं। यह अवश्य है कि नीले और भूरे नेत्र भी कई २ प्रकार के होते हैं। कुछ नेत्र तो ऐसे होते हैं कि उनको भूरा या नीला कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

किन्तु यह बात बडी विचित्र है कि सन्तान की आंखें अपने माता पिता की आंखों के ही समान होती हैं। नीले नेत्र वालों के तो भूरे नेत्रों की सन्तान कभी भी देखने मे नहीं आई। यदि माता पिताओं मे से एक की आखे नीली और दूसरे की भूरी होती हैं तो अधिकांश सन्तानों की आखें भूरी ही होंगी। आज कल इंगलैंड मे नीले नेत्र कम और भूरे नेत्र अधिक होते जाते है।

यह बतलाया जा चुका है कि उपताग (Iris) मे ताल (Lens) नाम की सुन्दर और पारदर्शक वस्तु होती है। यह ताल मौलिक होता है। यह ताल दोनों ओर मे एकसा ही होता है। यह नेत्र मे घुसने वाली प्रकाश की किरणों को कनीनिका के समान झुकने मे महायता देता है। यह मनुष्य द्वारा बनाये हुए सभी तालो से अधिक कार्य करता है; क्यों कि यह स्थिति-स्थापक (Elastic) है और अपने आकार को बदल सकता है।

ताल मसूर के दाने की तरह गोल होता है। उसके दोनों पृष्ठ (सामने और पीछे के) उभरे होते हैं। अगला पृष्ठ पिछले से कम उभरा हुआ होता है। ताल का बाहिरी भाग भीतर के (केन्द्रिक) भाग से अधिक मुलायम होता है। ताल का भार सामान्यत. दो रत्ती के लगभग होता है।

ताल के ऊपर एक पतला गिलाफ चढ़ा रहता है, इसको तालकोष कहते हैं। यह गिलाफ चारों ओर सूत्रों से बंधा होता

है। आंख के अन्दर की दानेदार छोटी २ पेशिया इन सूत्रों को खेंच सकती हैं। जब यह सूत्र खेंचे जाते हैं तो उनके अन्दर का ताल बड़ा और चपटा हो जाता है। जब पेशियां काम करना बन्द कर देती हैं और खिचना बन्द हो जाता है तो ताल फिर अपने पूर्व आकार पर आ जाता है। ताल की इस शक्ति से ही मनुष्य दूर और पास की वस्तुओं को देख सकता है।

ताल के पीछे आंख का बडा कोष्ठ है। इसमें एक गाढ़ा कुछ लसदार स्वच्छ अर्द्ध तरल द्रव्य भरा रहता है। इस स्फटिकोपम वस्तु का काम चक्षु के आकार को स्थिर रखना है। यदि इस कोष्ठ में कुछ न होता तो आख जरा से दबाव से पिचक जाया करती। इस द्रव्य के दबाव से आंख के तीनों पटल भी एक दूसरे से मिले रहते हैं। इस वस्तु मे ९८॥ प्रतिशतक जल होता है।

नेत्र-गोलक का आकार बड़ा महत्वपूर्ण होता है। उसका स्थितिस्थापकता का गुण तो बड़ा भारी कीमती होता है। नेत्र-गोलक पीछे से आगे तक लम्बा हो सकता है। उस समय ताल रेटीना (Retina) अथवा सांवेदनिक पटल अथवा दृष्टि-पटल से दूर होता है। नेत्रगोलक पीछे से आगे तक छोटा भी हो सकता है। उस समय ताल रेटीना के कुछ समीप हो जाता है। यदि दोनों दशाओं में ताल का आकार वही होता है तो एक या दोनों ताल निश्चय से ही इस उद्देश्य के उपयुक्त न होंगे। इस प्रकार नेत्रगोलकों (Eyeballs) का परिमाण भिन्न २ प्रकार का होने से कनीनिका के टेढ़ेपन और ताल के आकार में

भी भिन्नता आ जाती है। बहुत से व्यक्तियों के नेत्र सभी कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं होते।

इस प्रश्न का नेत्र के स्वास्थ्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। प्रकाश की किरणों के झुकने को रिफ्रैक्शन (Refraction) कहते है। जहां कहीं नेत्र की दूर-दृष्टि अथवा समीप-दृष्टि में कोई अन्तर होता है अथवा नेत्र मे इसी प्रकार की कोई अन्य त्रुटि होती है तो उसको रिफ्रैक्शन की त्रुटि कहते है।

कनीनिका नियमित रूप मे निरछी नही होती। वह न्यूनाधिक रूप मे एक ओर को फूली रहती है। इसका यह अभिप्राय है कि यदि हम एक क्रास [+] की ओर को देखे तो उसका एक भाग दूसरे की अपेक्षा शीघ्रता से दिखलाई नहीं देगा। वास्तव में कनीनिका की यह त्रुटि इतनी छोटी होती है कि इसके विषय मे अधिक झंझट मे पड़ने की आवश्यकता नहीं है। यह त्रुटिया चश्मा लगाने से बड़ी सुगमता से दूर हो जाती है।

जब नेत्रगोलक पीछे से आगे तक अत्यंत लम्बा होता है तो पास की वस्तु कम दिखलाई देती है। रिफ्रैक्शन की इस त्रुटि का आशय यह है कि रेटीना पर पहुचने से पूर्व ही प्रकाश का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। उक्त प्रतिबिम्ब जब रेटीना पर पहुंचता है तो उसका चित्र धुंधला आता है। किसी २ समय कनीनिका के अत्यंत टेढ़ी होने से भी पास का पदार्थ कम दिखलाई दिया करता है।

हमारे नेत्र को रचना इस प्रकार की है कि जितनी वस्तुएं आंख से २० फुट या २० फुट से अधिक दूरी पर हैं उनका

प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल (रेटीना) पर पडता है। परन्तु जितनी वस्तुएं आंख से २० फुट से कम दूरी पर हैं उनका प्रतिबिम्ब ताल का आकार स्थिर रहते हुए दृष्टिपटल पर नहीं पड़ेगा । इस कारण २० फुट से कम दूरी की चीजों को देखने के लिये ताल का उन्नतोदर (Convex) पना अधिक करना पडता है । सामान्यत: हम ८, ९,इंच से अधिक समीप की वस्तुओं को साफ-साफ नहीं देख सकते, क्योंकि ताल का उन्नतोदरत्व उतना नहीं हो सकता जिससे इन वस्तुओं का प्रतिबिम्ब दृष्टि-पटल पर पड सके ।

जब आंख दूर की चीजें न देख सके तब यह रोग दूरदर्शना-सामर्थ्य अथवा 'निकट दृष्टि' (Short-sight) रोग कहलाता है। ऐसे मनुष्य समीप की वस्तुओं को खूब देख सकते हैं ।

कुछ मनुष्यों की आंख की रचना इस प्रकार की होती है कि उनको दूर की चीजें देखने में आम तौर से कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु वह समीप की वस्तुओं को साफ २ और सुगमता से नहीं देख पाते। उनको पढ़ने लिखने में कष्ट होता है, उनकी आंखें शीघ्र थक जाती हैं और उनके माथे तथा आंखों में दर्द होने लगता है। यह निकट-दर्शनासामर्थ्य अथवा 'दूर दृष्टि' (Long-sight) रोग कहलाता है। यह दोष चश्मे (युगलोन्नतोदर तालों) से दूर हो जाता है ।

'निकट दृष्टि' होना कोई रोग नहीं है। यह दशा शरीर के स्वाभाविक परिवर्तनों से होती है ।

चालीस पैंतासीस वर्ष की आयु के पश्चात् नेत्र धीरे २ दूर-दृष्टि वाले अथवा कम समीप दृष्टि वाले हो जाते हैं। छोटे बच्चे तो लगभग सब के सब 'दूर दृष्टि' वाले होते हैं।

अधिक अवस्था होने पर दूर दृष्टि वाला होने का कारण नेत्र के ताल मे होने वाले परिवर्तन है। उस समय तालों की स्थिति-स्थापकता (Elasticity) कम हो जाती है और वह पहिले के समान शीघ्रता से नहीं फूलता। उस समय निश्चय से ही वह पहिले से अधिक चपटा हो जाता है। अधिक वृद्धावस्था मे तालों (Lens) की स्थिति-स्थापकता इतनी कम हो जाती है कि उसके आकार को बदलना असभव हो जाता है।

वृद्धावस्था मे और कभी २ उससे पूर्व नेत्र का ताल इतना धुंधला हो जाता है कि उसका पारदर्शीपना बिलकुल नष्ट हो जाता है। नेत्र के इस रोग को मोतियाबिन्द (Cataract) कहते हैं। इससे मनुष्य अन्धा हो जाता है। एक समय इस भयकर रोग की कोई चिकित्सा नहीं थी, किन्तु इस समय यह बिना कष्ट के एक हल्के आपेरेशन से ही दूर हो सकता है।

रेटीना अथवा दृष्टि-पटल

इस पटल का वही काम है जो फ़ोटो के कैमरे मे मसाला चढ़े हुये प्लेट का होता है। यह पटल नेत्र के सबसे पिछले भाग मे होता है और मस्तिष्क से ही विकसित होकर बनता है। यह पटल नाड़ी-सूत्रों और विशेष प्रकार के नाड़ी-सेलों से बनता है। इसमे सेलों की कई तहें होती हैं।

इसमें शरीर के अन्य भागों के समान थोड़ा सहायक तन्तु (Supporting Tissue) भी होता है। रेटीना का यह सहायक तन्तु उन्हीं विशेष प्रकार के सेलों से बना होता है, जो मस्तिष्क में रहते हुए वहां के सहायक तन्तु को बनाते हैं।

यह भी एक कारण है कि मेरुदंड वाले प्राणियों के रेटीना को मस्तिष्क से विकसित हुआ समझा जाता है।

रेटीना अपने भिन्न २ भागों में प्राय. दस तहों का बना होता है। कुछ भागों मे सेल होते है और कुछ मे नाड़ी-सूत्र होते है। जिस तह पर प्रतिबिम्ब पड़ता है वह सामने से नौवीं है; क्योंकि इसी तह मे देखने के सेल होते है। यह सभी तहे अत्यन्त पतली और कोमल होती हैं। यह केवल अत्यन्त शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा ही दिखलाई दे सकती है।

चक्षु के पाश्चात्य ध्रुव पर इस पटल के भीतरी पृष्ठ में एक गोल या अण्डाकार पीला धब्बा होता है, इसको पीत बिन्दु (Macula Lutea) कहते हैं। पीतबिन्दु का व्यास $\frac{१}{२४}$ से $\frac{१}{१२}$ इंच तक होता है। उसके बीच में गढ़ा होता है। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो नेत्र-गोलक इस प्रकार गति करता है कि यह स्थान उस वस्तु के सम्मुख आ जावे, जिससे प्रतिबिम्ब का कुछ भाग उस पर भी पड़े।

अन्य स्थानों की अपेक्षा पीतबिन्दु मे देखने की शक्ति अधिक होती है।

पीतबिन्दु से $\frac{1}{8}$ इंच नासिका की ओर हट कर वह स्थान है, जहां से दृष्टि-नाड़ी (Optic Nerve) का आरंभ होता है। इसको चाक्षुष बिम्ब कहते हैं। चाक्षुष बिम्ब के केन्द्र मे बहुधा एक गढा रहा करता है, जिसको बिम्बनाभि (Physiological Cup) कहते है। बिम्ब नाभि से अन्तरीय पटल का पोषण करने वाली रक्त वाहनियां निकलती हुई दिखलाई देती है। चाक्षुष बिम्ब अन्तरीय पटल का असांवेदनिक स्थान है। यहां पर वह सेल नहीं होते, जिनके द्वारा हमको प्रकाश का ज्ञान होता है।

दृष्टि-नाड़ी

यह नेत्र के पिछले भाग से आरंभ होती है। जिन तारो से यह नाड़ी बनती है वह अन्तरीय पटल मे रहने वाले नाडी-सेलो से निकलते है। यह तार सावेदनिक और केन्द्रगामी है। यह एकत्रित होकर चाक्षुष बिम्ब से मध्य और बाह्य पटलों में से होकर बाहर निकलते हैं। जब अंधेरे कमरे मे लैम्प के प्रकाश की सहायता से चक्षुदर्शक यंत्र द्वारा चक्षु की परीक्षा की जाती है तब चाक्षुष बिम्ब पूर्णिमा के चन्द्र के समान अति सुन्दर और चमकदार दिखलाई देता है। कई रोगों मे चाक्षुष बिम्ब का रूप, रंग और आकार बदल जाता है।

अनुमान है कि दृष्टि नाड़ी में लगभग पांच लाख तार होते हैं। अक्षिखात (Orbital Fossa) के पिछले भाग से दृष्टि-छिद्र में से होकर यह नाड़ी कपाल के भीतर पहुचती है।

रेटीना मस्तिष्क का भाग है

मस्तिष्क के अंदर का भाग पोला होता है। उसमे सेल पंक्तिबद्ध लगे होते हैं। नेत्र का मस्तिष्क-भाग मस्तिष्क से एक पोले उभार के द्वारा बनता है। वह उभार ही रेटीना का रूप धारण कर लेता है। दृष्टि के सेल रेटीना के सामने न होकर उसके ठीक पीछे उससे सटे होते हैं। यह वही सेल होते हैं जो मस्तिष्क के गड्ढों (Cavity) मे पंक्तिबद्ध लगे होते है; जब मस्तिष्क अपने पुराने भाग को नेत्र बनाने के लिए अग्रसर करता है तो यह सेल उस पुराने भाग (Bulb) मे ही लग जाते हैं।

दृष्टि के सेल दो प्रकार के होते हैं। वह अपने २ आकार के अनुसार डडे (Rods) और सूची (Cones) कहलाते हैं। यह सेल नियमित रूप से बाढ़ के दंडों के आकार मे लगे होते है। यदि दिखलाई देने वाला पदार्थ ठीक सामने हो तो उसके प्रकाश का प्रतिबिम्ब रेटीना पर ठीक पड़ता है। नेत्र मे सूचियों की अपेक्षा दंडे कहीं कहीं अधिक होते हैं; यद्यपि अधिक महत्त्वपूर्ण सूचिया ही होती है।

प्रत्येक रेटीना मे दो धब्बे होते है, जो अवशिष्ट रेटीना से भिन्न प्रकार के होते है। उनमें से एक वह स्थान है, जहां से रेटीना को बनाने के लिए दृष्टि-नाड़ी (Optic Nerve) निकलती है। उस धब्बे पर डंडे या सूचियां कुछ भी नहीं होतीं। अतएव वह अन्धा अथवा काला है। उस स्थान पर पड़ने वाला प्रकाश दिखलाई नहीं देता।
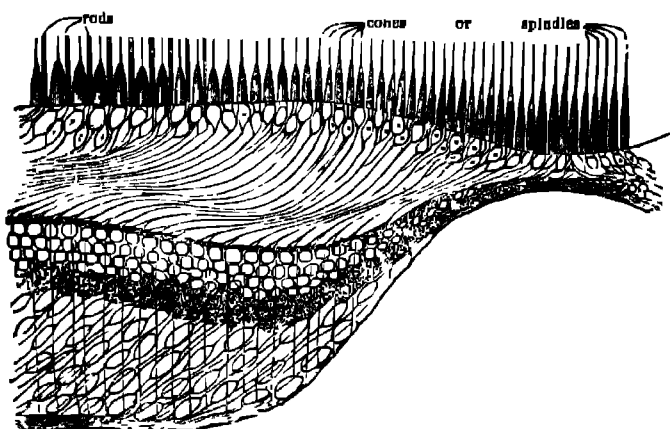
संवेदनिक पटल (Retina) के दंड (Rods) और सूचियाँ (Cones)
(अत्यंत अधिक बढ़ा कर दिखलाए हुए।)

पीत-बिंदु

इस काले धब्बे के पास ही एक गोल या अंडाकार पीला धब्बा होता है। इसको पीत बिंदु कहते हैं। देखने की क्रिया का अधिक से अधिक कार्य रेटीना के इसी भाग मे किया जाता है। यह भाग सूचियों से भरा होता है, अन्य किसी वस्तु से नहीं। इसी कारण सूचियों को दंडों से अधिक महत्त्वपूर्ण कहा जाता है। इस धब्बे को पीला इस कारण कहते हैं कि इसके सेलों के सहायक सूत्रों में कुछ पीत सामग्री होती है। इस धब्बे में अपने चारों ओर के भाग से कम रोगन होता है।

इस पीत-बिंदु का अध्ययन करने से पता चलता है कि इसमें अधिक से अधिक उत्तम दिखलाई देने का सब प्रकार से प्रबंध

किया गया है। सूचियों के सामने की आठ तहें—जो रेटीना में सब कहीं दृष्टि के सेलों के सामने होती हैं—इस स्थान में सबसे पतली होती हैं। उनमे से कोई २ तो बिल्कुल ही नहीं मिलतीं। इस धब्बे में प्रकाश के मार्ग को रोकने वाले बड़े २ रक्त-कोष भी नहीं हैं। वहां केवल अत्यन्त छोटी २ केशिकाएं ही होती हैं। देखने का सबसे अच्छा और अधिक कार्य इसी धब्बे के द्वारा किया जाता है। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो नेत्र-गोलक इस प्रकार गति करता है कि जिससे यह स्थान उस वस्तु के सम्मुख आ जावे और उसकाप्रकाश पीले धब्बे पर पड़े।

डंडों की अपेक्षा सूचियां मेरुदण्ड वाले प्राणियों के इतिहास मे बहुत बाद मे प्रगट होती हैं। पीले धब्बे की सूचियां केवल उच्च कोटि के मेरुदण्ड वालों, पक्षियों और स्तनपोषित प्राणियो मे ही होती हैं। यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि संपूर्ण रेटीना में, विशेष कर पीले धब्बे के आसपास, रंगों के देखने में क्रमिक उन्नति होती रही है। यह उन्नति इन सूचियो ने ही की है।

आंख का विशेष अध्ययन करने पर पता लगा है कि रेटीना की प्रत्येक सूची के लिए दृष्टिनाड़ी मे एक विशेष मार्ग और कम से कम एक विशेष सेल होता है, जब कि मस्तिष्क के दृष्टि केन्द्र मे ऐसे सहस्रों सेल होते हैं।

नेत्र के दंडे मन्द प्रकाश में देखने में सहायता देते हैं

रेटीना के दण्डे मनुष्य को मन्द प्रकाश मे भी देखने में सहायता देते है। सूचियां ऐसे प्रकाश मे नहीं देख सकतीं। सामान्य

धूप इतनी चमकीली होती है कि दण्डे उससे थक कर व्यर्थ हो जाते है। अतएव ऐसे प्रकाश मे हम सूचियो से ही देख सकते हैं। किन्तु यदि दण्डों को चमकीले प्रकाश से थोड़ा ही बचा लिया जावे तो मामला बदल जाता है। ऐसा होने पर वह अपने काम योग्य रसायनिक पदार्थ स्वयं बना लेते और काम कर सकते हैं।

यदि हम एक मन्द प्रकाश वाले कमरे में जाते है अथवा अधिक प्रकाश वाले स्थान से आते है तो पहिले तो कुछ दिखलाई नहीं देता, किन्तु थोड़ी ही देर के पश्चात् हमको दिखलाई देने लगता है। इसका मुख्य कारण यह है कि दण्डे तो अधिक चमकीले प्रकाश से थक जाते है और सूचिया मन्द प्रकाश मे देख नहीं सकतीं। कुछ मिनट के पश्चात दण्डों को फिर शक्ति मिल जाती है, क्यों कि रक्त रेटीना मे सदा ही अत्यन्त वेग से बहता रहता है। उसमे वह विशेष पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा मे होता है, जिससे दडे उस विशेष रसायनिक पदार्थ को बनाते है, जिस पर हमारे देखने के समय प्रकाश काम करता है।

रेटीना की दसवीं तह को बनाने वाले महत्वपूर्ण सेल

यह बतलाया जा चुका है कि रेटीना की नौवी तह दंडों और सूचियों से बनती है। उसके नीचे दसवी तह है। वह भी सेलों से ही बनी होती है। इन सेलों मे अन्धेरी धूसर (भूरी) सामग्री भरी होती है।

यह जान पड़ता है कि यह सेल अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी होते है। प्रकाश के प्रभाव से इन सेलो का रोगन नौवी तह मे आकर प्रत्येक दण्डे और सूची के चारों ओर एक अन्धेरा गिलाफ

चढ़ा देता है। इसी कारण दृष्टि के सब सेल बिना एक दूसरे में मिश्रित हुए काम कर सकते हैं। जब तक दृष्टि के सेलों, दंडों और सूचियों को वह सामग्री नहीं दी जाती उनकी शक्ति नष्ट होजाती है।

रंग का ज्ञान कराने वाली ईथर की लहरें

हमार विश्वास है कि कुछ लहरों की क्रियाएं नेत्रों पर पड़ कर प्रकाश उत्पन्न करती है। प्रकृति की वस्तुओ मे नेत्र के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं देखती। नेत्र पर एक सेकिंड मे ही प्रभाव डालने वाले ईथर (Ether) के प्रकम्पों (Vibrations) को गिना जा सकता है।

हम प्रति सेकिंड कम से कम लगभग ८०० खरब प्रकम्पों को देखते हैं। इनको देखने में हमको लाल रंग का भान होता है। हम अधिक से अधिक प्रति सैकिंड ८०० खरब प्रकम्पो को देख भी सकते हैं। इनको देखने मे हमको बैंजनी रंग का भान होता है।

हम रगो को रेटीना की सूचियों से पहिचानते हैं। जिन वस्तुओं का प्रतिबिम्ब रेटीना के बाहिर के भागो पर पड़ता है, उनका रंग हम नहीं पहचान सकते, क्योंकि वहां सूचियां नही होती। इसके अतिरिक्त नेत्र अपने भिन्न २ भागों से रगो को भिन्न २ परिमाण मे ग्रहण करते हैं।

रंगों में चमक से ही भेद होता है। रंग की चमक उस परिमाण पर निर्भर है, जितना वह मस्तिष्क पर प्रभाव डालता है।

प्रकाश को बनाने वाले सात रंग

दृष्टि की अपेक्षा रंगों का प्रश्न शब्द की लहरों के समान

अत्यन्त सुगम है। एक सेकिंड में दस प्रकम्प का अर्थ एक ध्वनि है। ग्यारह का अर्थ दूसरी ध्वनि, बारह का अर्थ अन्य ध्वनि आदि है। उसी प्रकार ४०० खरब प्रति सेकिंड से लगा कर ८०० खरब प्रति सेकिंड तक बहुत से रंग होते हैं।

यदि श्वेत प्रकाश को लेकर एक तिकोने शीशे के अदर से निकाला जावे तो उसमें से बहुत से रग निकलते हैं। किन्तु उस को ध्यान से देखने पर उसमे कुछ निश्चित रंग ही दिखलाई देते हैं। यह रंग सात होते हैं। इनमें से कुछ रंग मौलिक होते हैं और कुछ मिश्रित। उदाहरणार्थ जामुनी (Purple) रंग नीले और लाल रग को मिलाने से बनता है। नारंगी रंग लाल और पीले को मिलाने से बनता है।

इनमे से लाल, हरा और बनफ़शी (Violet) मौलिक रंग हैं। शेष रंग इन्हीं को मिलाने से बनते हैं।

नेत्र के दण्ड भूरे रग को देखते हैं तथा सूचियां शेष रंगों को देखती हैं। वर्तमान विज्ञान इसके आगे अभी तक नहीं जा सका है।

सत्ताईसवां अध्याय

घ्राण इन्द्रिय

घ्राण और रसना इन्द्रियों को प्राय: रसायनिक इन्द्रियां कहा है। कर्ण और नेत्र के समान यह ईथर अथवा वायु की लहरों पर निर्भर नहीं रहतीं। इन दोनों इन्द्रियों का एक दूसरी से बडा घनिष्ट सम्बन्ध है। कार्य भी यह बहुत कुछ मिल-जुल कर ही करती हैं।

हम नासिका के सारे के सारे प्रदेश से नहीं सूंघते। सूक्ष्म दर्शक-यंत्र द्वारा ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता है कि हम केवल ऊपर के भाग से ही सूंघते हैं। अवशिष्ट नासिका में बहुत से सेल लगे हुए हैं, जिनमे आगे तथा पीछे को निकले हुए अनेक प्रवर्द्धन (उभार) हैं, जो नासिका की नाली को साफ रखते हैं। नासिका के गन्ध प्रदेश में गंध के सेल लगे होते हैं। प्रत्येक सेल

एक अपने नाड़ी-सूत्र से सम्बन्धित होता है। यह छोटा सा नाड़ी-सूत्र वास्तव मे गंध के मेल से ही निकलता है।

नासिका मे मस्तिष्क से नाड़ियों के दो युगल आते हैं। उन दोनों का कार्य एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र होता है। इनमे से एक का सम्बन्ध तो गंध से बिल्कुल ही नही होता। यह नाड़िया केवल नाक में स्पर्श, पीड़ा तथा छेदन आदि को ही बतलाती है। इन नाड़ियों पर गंध का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

गंध नाडियां
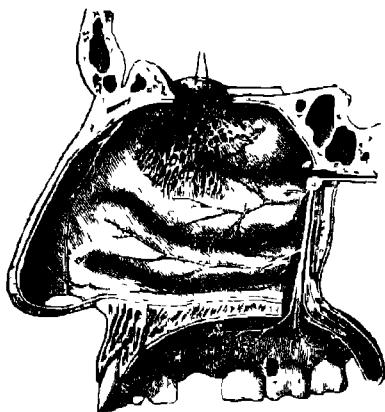
नाक के अन्दर गन्ध की नाड़ियों को दिखलाया गया ह।

मस्तिष्क से नासिका मे आने वाला नाड़ियों का दूसरा युगल गंध-नाड़ियो का है। वृद्धावस्था मे यह नाड़ियां निर्बल पड़ जाती हैं। अतएव उस समय गंध-शक्ति प्राय. कम हो जाया

करती है। गंध के इतने अनेक प्रकार हैं कि उनको गिनना प्रायः असम्भव है। अतएव भारतीय दार्शनिकों ने उनको सुविधा के अनुसार दो भागों में ही विभक्त किया है—सुगन्ध और दुर्गन्ध।

घ्राण प्रदेश का रंग पीला सा होता है। यहां दो प्रकार के सेल होते हैं—

१ साधारण सेल, जिनका ऊपर का भाग स्तंभाकार होता है और नीचे का पतला तथा नोकीला। इन सेलों के सहारे वहां अन्य विशेष सेल भी होते हैं।

२ गन्धज्ञ सेल (घ्राण सेल)। यह सेल बीच मे से मोटे होते है और दोनो सिरों पर पतले। जो सिरा पृष्ठ पर होता है उसमे बाल जैसे कई सख्त तार निकले रहते हैं। दूसरे सिरे से एक पतला और लम्बा तार निकलता है। सेलों के इन पतले और लम्बे तारों से घ्राण नाड़िया बनती हैं। ऊपर के तार को घ्राणाकुर (Olfactory Hairs) कहते हैं।

वस्तुओं की गन्ध तभी मालूम हो सकती है, जब वह वायव्य दशा मे घ्राण-सेलों के घ्राणाकुरों से टकरावें। जब गंधवत् द्रव्यों के अणु घ्राणाकुरों से टकराते हैं तो घ्राण-सेलों पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। घ्राण-नाड़ियों द्वारा यह प्रभाव मस्तिष्क के घ्राण-केन्द्रों में पहुंचता है, जिससे हमको गन्ध का बोध होता है।

घ्राण-नाड़िया घ्राण प्रदेश से नासा-गुहा की छत के छिद्रों मे से होकर कपाल में घुस जाती हैं। कपाल में पहुचते ही यह घ्राण-पिंड में घुस जाती हैं और यहीं इनका अन्त हो जाता है।

श्वास मार्ग

नासिका का दूसरा कार्य श्वास लेना है।

उच्छ्‌वास क्रिया से वायु नासारंध्रों द्वारा नासिका में प्रवेश करता है। वायु मध्य और अधो सुरंगों में होता हुआ पश्चिम द्वारों से कण्ठ में पहुंचता है। वह कंठ से स्वर-यंत्र और टेंटुवे में से होकर फुफ्फुसों में जाता है। प्रश्वास क्रिया में अशुद्ध वायु टेंटुवे, स्वर-यंत्र और कंठ में होता हुआ नासिका में पहुचता है। वहां से वह नासारंध्रों द्वारा बाहिर आता है। जब मुंह से श्वास लिया जाता है तो वायु सीधा मुंह से कंठ में चला जाता है और कंठ से मुंह में होकर बाहिर आ जाता है।

अट्ठाईसवां अध्याय

रसना इन्द्रिय

भोजन का स्वाद जिह्वा द्वारा ही जाना जाता है। रस अथवा स्वाद को पहिचानने के अतिरिक्त जिह्वा और भी कई कार्य करती है। उसी की सहायता से बोला जाता है। भोजन को भली प्रकार चबाने और उसको निगलने के लिए भी उसकी बड़ी आवश्यकता है। दांतों में फंसी हुई वस्तु को भी जिह्वा ही निकालती है। इसमे भोजन की वस्तुओं का तापक्रम जानने की शक्ति भी है।

जिह्वा की रचना

जिह्वा अधिकतर मांस से बनी है। मांस के ऊपर मोटी श्लैष्मिक कला (Mucous Membrane) चढ़ी रहती है। जिस मांस से वह बनी है उसके संकोच और विस्तार से वह छोटी, बड़ी, चौड़ी और पतली हो जाती है।

जिह्वा के ऊपर की श्लैष्मिक कला में अनेक छोटे और बड़े दान

होते हैं। यह दाने अथवा उभार सौत्रिक ततु, नाड़ीसूत्र और रक्तकेशिकाओं के एकत्रित होने से बनते हैं। इन सब के ऊपर सेलों की कई तहे चढ़ी होती हैं। (देखो चित्र पृष्ठ २०५)

दाने अथवा अंकुर तीन प्रकार के होते हैं।

१ जिह्वा मूल पर नौ दस बड़े-बड़े दाने होते हैं। यह दाने दो पंक्तियों में होते हैं, जो पीछे जाकर एक दूसरे से मिल कर एक वृहत कोण बनाती हैं। प्रत्येक दाने के चारों ओर एक खाई होती है। इस खाई के कारण यह दाने खातवेष्टिताकुर कहलाते है।

खाई की दीवारों में दबे हुए बहुत से छोटे २ विशेष सेल समूह होते हैं। इनको स्वादकोष (Taste bud) कहते है। प्रत्येक दाने में लगभग सौ डेढ़ सौ स्वाद-कोष होते है।

२ दूसरे प्रकार के दाने जिह्वा के किनारों और फूंग पर पाये जाते है। इनमें भी स्वाद कोष होते है। इनका आकार छत्रिका या छतौने नामक वनस्पति जैसा होने से यह छत्रिकांकुर कहलाते हैं।

३. तीसरी प्रकार के दाने पतले और नोकीले होते है। यह जिह्वा में प्रत्येक स्थान पर पाये जाते हैं। यह प्राय: समान्तर पंक्तियों में होते हैं। इनको सूत्रांकुर कहते हैं। इनमें स्वाद पहिचानने की शक्ति कम होती है, इनका विशेष सम्बन्ध स्पर्श-ज्ञान से है।

जिह्वा की फूंग, मूल तथा किनारों में स्वाद पहिचानने की अधिक शक्ति होती है। उसका शेष भाग स्पर्श, उष्णता इत्यादि का ज्ञान कराता है।

स्वाद-कोष

स्वादकोष विशेषकर खातवेष्टित और छत्रिकांकुरों मे पाये जाते है। इनके अतिरिक्त वह कोमल तालु के नीचे के पृष्ठ और स्वरयन्त्रच्छद के पिछले पृष्ठ पर भी होत है। स्वादकोष में एक छिद्र होता है, जिसको स्वादरन्ध्र (Gustatory pore) कहते हैं। स्वादकोष में दो प्रकार के सेल होते है।

१ रसज्ञ सल—यह बीच मे मोटे होते है और सिरों पर पतले। इनके ऊपर के सिरे से एक बाल जैसा तार निकलता है। यह बाल स्वादरन्ध्र में होता है। सेल के दूसरे सिरे से निकलने वाला तार स्वादसम्बन्धी नाड़ी के तार से मिला रहता है। यह सेल अधिकतर कोष के केन्द्रीय भाग में होते है।

२. रसज्ञ सेलो के चारो ओर और कुछ उनके बीच में भी अन्य सेल होते है। वह रसज्ञ सेलो को सहायता देत है।

स्वाद

स्वाद तभी जाना जा सकता है जब खाई जाने वाली वस्तु घुली हुई दशा में हो। घुले हुए पदार्थ के अणु रसज्ञ बालों के सेलों से टकराते है। इस स्पर्श से सेलो पर पड़ने वाले प्रभाव की सूचना नाड़ी-सूत्रो द्वारा मस्तिष्क के स्वादकेन्द्रों मे पहुचती है।

यह तार जिह्वा के पिछले $\frac{1}{3}$ भाग से जिह्वा-कंठ-नाड़ी द्वारा मस्तिष्क में पहुचते है। अगले $\frac{2}{3}$ भाग के तार रासनिकी-नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को जाते हैं। दोनों नाड़ियों के तार स्वादकेन्द्र मे पहुंचते हैं।

रसों के भेद

हिन्दू दर्शनों में रस के निम्न लिखित छै भेद माने गये है—

अम्ल (खट्टा), मीठा, कड़वा, कषायला, चरपरा और नमकीन। किन्तु जैन शास्त्रों में नमकीन और चरपरे को एक रस ही मान कर मुख्य रस पांच ही माने गये हैं। वैज्ञानिकों ने मुख्य रस अम्ल, कड़वा, मीठा और नमकीन ही को माना है। कषायला तथा चरपरा रस वैज्ञानिकों की दृष्टि मे रस न होकर उपरस हैं।

इनमें से मधुर फूंग से, अम्ल किनारों से और कटु जिह्वामूल से अच्छी तरह जाने जाते हैं। शेष रस कुछ-कुछ प्रत्येक भाग से जाने जा सकते हैं।

उन्तीसवां अध्याय

अन्तःकरण

मन सारे शरीर का स्वामी है। उसकी आज्ञा से ही शरीर के सब कार्य होते है। मस्तिष्क शरीर का भाग नहीं है। शरीर के प्रत्येक भाग—यहां तक कि मस्तिष्क की सब से उच्च कोटि की नाड़ियों को भी देखा, छुवा और काटा जा सकता है। शरीर भौतिक है। वह पत्थर के समान ही भौतिक है।

किन्तु संसार मे ऐसी वस्तुएं भी हैं जो न देखी और न छुई ही जा सकती है। दृष्टि भी ऐसी ही वस्तु है। नेत्र और मस्तिष्क दृष्टि नहीं हैं।

मन की रचना मे इन्द्रियों का बड़ा भारी भाग है। भूख, प्यास, सुख, दु:ख, उद्वेग, चिन्ता, वासना आदि सब भाव मन में ही उत्पन्न होते हैं।

कल्पना करो कि किसी व्यक्ति में कभी कोई भाव उत्पन्न ही नहीं हुआ। वह बराबर वैसे ही बढ़ता जाता है। ऐसा व्यक्ति किस प्रकार का होगा? उसका मन किस प्रकार का होगा? वह किस

के विषय मे विचार करेगा ? वह क्या जानेगा ? इन प्रश्नों को करते ही इनका उत्तर सूझ जाता है कि ऐसे व्यक्ति के मन नहीं होगा। उसका शरीर केवल पिंजरे के समान ही होगा। इस प्रकार का व्यक्ति न कुछ जान सकता है और न कुछ सोच ही सकता है। सरांश यह है कि मन की रचना भावनाओं पर निर्भर है।

मन में ऐसी कोई बात नहीं आती, जो इन्द्रिय-गम्य न हो। हमारा सम्पूर्ण ज्ञान, विचार और विश्वास पर भावनाओ और और इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किए हुए अनुभव पर ही निर्भर है।

मन के विषय में बात करते समय हमारा मन के उसी भाग से अभिप्राय होता है, जो सोचता और जानता है। दूसरे शब्दों में मन बुद्धि से ही बनता है।

बुद्धि भी मन का ही विकसित रूप है

यह सोचना सरासर ग़लत है कि केवल जानना और तर्क करना ही मन है। यह सोचना भी ठीक नहीं है कि सोचने से विचार करना कम महत्त्वपूर्ण है।

हमको एक क्षण के लिये यह सोचना है कि हमारी भावनाओं का क्या होता है और उनसे बुद्धि किस प्रकार बनती है।

प्रकाश की एक चमक अथवा यकायक किये हुए शब्द से हमारे अन्दर कुछ निश्चित परिणाम ही उत्पन्न होगा। किन्तु उसको सोचना नहीं कह सकते। हम केवल अनुभव करते हैं। कल्पना करो कि हमको थोड़ा और समय दे दिया गया और प्रकाश की एक चमक के स्थान में किसी साकार वस्तु—उदाहरणार्थ एक वृक्ष

से—प्रकाश आरहा है। यह भी कल्पना करो कि अधिक दूरी अथवा कुछ अन्धकार होने के कारण हमको स्पष्ट रूप से दिखलाई नहीं देता और हमको उस स्थान मे वृक्ष देखने की कोई आशा भी नहीं है तो पहिले हम यह सोचते है कि 'हमने कुछ देखा'; किन्तु 'वह क्या है ?' यह हम नहीं देखते। ऐसी घटनाए दैनिक जीवन मे नित्य ही होती रहती हैं। चित्र और छायाचित्रों मे भी यही होता है। इसको दार्शनिक परिभाषा में 'दर्शन' कहते हैं। दर्शन के पश्चात् विशेष ज्ञान से प्रत्यक्षीकरण होता है।

स्मृति

दर्शन और प्रत्यक्षीकरण मे बड़ा भारी अन्तर है। अब हमको स्मृति पर विचार करना है, क्यों कि प्रत्यक्षीकरण स्मृति के बिना नहीं हो सकता। यदि हममें स्मृति न हो तो हमारा अस्तित्व कुछ भी न रहे।

बिना स्मृति के पहिचानना, शिक्षा अथवा ज्ञान कुछ भी नही हो सकता। स्मृति से हम प्रति क्षण काम लेते रहते हैं। सड़क पर किसी को आते देख कर हम पहिचानते है कि वह मनुष्य है। इसके पश्चात् हम यह भी कह सकते हैं कि वह मनुष्य ही है, स्त्री नहीं। अन्त मे हमको पता लगता हैं कि वह हमारा पूर्व परिचित अमुक व्यक्ति है। यहां हम देखते हैं कि सुगम से सुगम प्रत्यक्षीकरण में भी स्मृति काम करती है।

स्मृति प्रत्येक जीव में होती है।

प्रत्येक जीवित पुद्गल को जीवनमूल (Protoplasm) कहते

हैं। प्रत्येक जीवनमूल में स्मृति सब कहीं होती है। साधारण से साधारण प्राणियों के स्वभाव को भी उनके चारों ओर की वस्तुओं को बदल देने से बदला जा सकता है। इस का यही अभिप्राय है कि उनमें कुछ अंशों मे स्मृति अवश्य है। पहिले तीन या चार बार ही एक कार्य को करने से वह भिन्न प्रकार से कार्य करने लगते हैं। चौथी बार तो वह पहली बार की अपेक्षा बिल्कुल ही भिन्न प्रकार से आचरण करते हैं।

किसी २ समय मनुष्य भूल भी जाता है। किन्तु साधन मिलते ही उसको फिर स्मरण हो आता है।

किसी किसी व्यक्ति को किसी भारी आघात-वश सब कुछ भूल जाते हुए देखा गया है। बरेली के एक सज्जन सबजज थे। उनको अदालत मे बैठे ही बैठे पक्षाघात (फालिज) हो गया। उनकी पेनशन तो हो गई, किन्तु वह एम० ए० एल०एल० बी० होते हुए भी सारी विद्या भूल गये। इंगलिश की तो उनमे समझने या बोलने की कुछ भी क्षमता न रही। चिकित्सा करने पर भी उनको कुछ लाभ न हुआ। किन्तु अन्त मे प्रकृति ने उनको स्वयं ही सहायता दी। उनका फालिज जो—अनेक चिकित्सा करने पर भी ठीक न हुआ था—स्वयं ही कम होने लगा और फालिज के कम होने के साथ ही साथ उनको अपनी विद्या भी फिर याद आने लगी।

प्राथमिक विचार के समय मस्तिष्क क्या करता है?

इस प्रकार की घटनाओं से अनुमान किया जा सकता है कि

जीवित प्राणि कभी नहीं भूलता। सामान्य स्मृति में तीन बाते होती है—एक तो स्पष्टतया याद करना, दूसरा याद किये हुए को पहिचानना और तीसरा पहिचाने हुए को फिर स्मरण कर लेना और पहिचान लेना।

प्राथमिक विचार (Sensation) का क्या रूप होता है, इस बात को जानना असंभव है। क्योंकि बाल्यावस्था के पश्चात् प्राप्त किये हुए प्रत्येक ज्ञान में स्मृति की पुट लगी होती है।

नये ज्ञान का प्रभाव मन के साथ शरीर पर भी पड़ता है। उत्तम गायन सुनते ही चुटकी बजने लगती है। कभी २ हमारे बिना जाने ही मन तर्क वितर्क करता रहता है। वह अनुभव और स्मृति के आधार पर एक बात को सत्य और दूसरी को असत्य बतलाता रहता है। जितना ही उच्चकोटि का मस्तिष्क होगा, उतना ही वह पढ़ने अथवा सुनने मे निश्चित रूप से काम कर सकेगा।

प्राथमिक विचार (Sensation) को विचारों का एकत्रीकरण कह सकते हैं।

प्राथमिक ज्ञान को सम्बंधित करने वाले मस्तिष्क के भाग

मस्तिष्क मे दृष्टि, शब्द, स्वाद, अनुभव, विचार और प्रत्येक बात एकत्रित होती रहती है। हम कहते हैं कि हम को एक बात से दूसरी बात का स्मरण हो आता है। इसका यह अभिप्राय है कि स्मृति के द्वारा एक बात दूसरी बात मे लगा दी जाती है। छोटी और बडी सभी वस्तुओं मे प्रतिक्षण इसी प्रकार का एकत्रीकरण होता रहता है।

विचार करने की क्रिया सभी प्रकार की वस्तुओं और विचारों को एकत्र करना मात्र ही है। हम इस बात को समझ सकते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क के बड़े भाग मे एकत्रीकरण सेल और एकत्रीकरण सूत्र होते हैं। उनका सम्बन्ध किसी प्रकार के प्राथमिक ज्ञान से सीधा नहीं होता, वरन उन ज्ञानों की श्रृंखला से होता है। अतएव क्रमिक और नियमित ढंग से यह संभव है कि हमारा मन बच्चेके प्रकाश और अंधकार के हल्के ज्ञान से उन्नति करता हुआ इतनी उच्चकोटि का हो जावे कि उसको प्रकाश का पूर्ण वैज्ञानिक अनुभव हो जावे।

यद्यपि एकत्रीकरण इतना आश्चर्यजनक है और वह सभी प्रकार के सोच विचार की तहों मे काम करता रहता है, किन्तु उसके कार्य करने के नियमों को समझना कठिन नहा है। वह स्मृति पर निर्भर है। हम वस्तुओ को देखते हा स्मृति मे एकत्रित कर लेते हैं। अर्थात् वस्तु के साथ हम उसके स्थान और समय को भी स्मरण रखते है। समानता के कारण भी वस्तुओं को स्मृति-पटल पर सुरक्षित रखा जाता है। कभी अपनी विशेष प्रकार की विचित्रता के कारण कोई वस्तु याद रह जाती है। अन्त के दो उदाहरणों को सादृश्य स्मृति और वैदृश्य स्मृति कह सकते है।

स्मृति के अवान्तर भेद

एकत्रीकरण के इन भेदों के अतिरिक्त कारण और प्रभाव भी स्मृति को बढ़ाते हैं; क्यों कि कई वस्तुओं का स्मरण उनके कारण से ही हो आता है। यह सबसे उच्च कोटि की स्मृति होती है।

मनुष्य में एकत्रीकरण शक्ति के अनेक भेद होते हैं। यह कहा जा सकता है कि अमुक व्यक्ति की एकत्रीकरण शक्ति अमुक की अपेक्षा अधिक गहरी, बड़ी, विस्तृत, अधिक विषय वाली और अधिक भेदों वाली है। किसी व्यक्ति को वस्तु का एक अंश देखते ही स्मरण हो आता है और किसी को उसके पूरे दृश्य को देख कर स्मरण होता है।

मन मनुष्य का प्रतापी राज्य है

अतएव मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने मन में उपयोगी बातों को एकत्रित करता रहे। व्यर्थ तथा मूर्खता की बातों को भूल जाना चाहिये। उत्तम से उत्तम वस्तुओं, उत्तम शब्दों, उत्तम विचारों, उत्तम कविताओं और मित्रों को पहिचानने आदि की स्मृति का कोष मन से बडा कोई नहीं है। इस प्रकार के मन वाला व्यक्ति वास्तव मे ही अपने मन का राजा है। वह अपने मन मे कालीदास, भवभूति अथवा वर्डस्वर्थ से बातचीत करता है। वह एक स्थान मे ही बैठे बैठे बम्बई, कलकत्ता अथवा लंदन तक की सैर कर सकता है। अतएव अपने मन को सदा ही अच्छी स अच्छी बातों से भरते रहना चाहिये।

अन्तःकरण के भेद

प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क मे एक दूसरे से विभिन्नता होती है। किसी के मन मे संख्या विषयक एकत्रीकरण शक्ति तेज और प्रबल होती है। इस बात को कोई नहीं बतला सकता कि मस्तिष्क की रचना में इस प्रवृत्ति का क्या कारण है। गिनना, हिसाब

लगाना, नापना, लम्बाई संख्या और परिमाण की तुलना करना आदि सब बातें किसी व्यक्ति में स्वाभाविक ही होती हैं।

दूसरे प्रकार के व्यक्तियों को वस्तुओं को एकत्रित करके उनके टुकड़े-टुकड़े करने की आदत होती है। वह उनसे खेलने के छोटे २ खिलौने बनाया करते हैं। वह प्रत्येक यंत्र की कार्य-पद्धति को जानना चाहते हैं। वह खिलौनों की गति को भली प्रकार जानते है।

इस प्रकार के व्यक्ति व्यवहारिक होते हैं। उनको इंजिनियरी के कार्य मे अच्छी सफलता मिल सकती है। इस प्रकार के उच्चकोटि के अन्तःकरणों में केवल एकत्रीकरण शक्ति ही नहीं होती, वरन नई २ वस्तुओं का आविष्कार करने की शक्ति भी होती है। अतएव इस प्रकार का व्यक्ति केवल पुरानी मशीनों को ही नहीं समझ सकता, वरन् वह पहिले से कहीं अच्छी मशीनों का आविष्कार भी कर सकता है।

संभवत. इस प्रकार के मन का सब से अच्छा उदाहरण मिस्टर एडीसन है। वैज्ञानिक प्रयोगों के करने वाले मन के लिये कैम्ब्रिज के भौतिक-विज्ञानवादी सर जोसेफ टामसन का नाम लिया जाता है। इस प्रकार के मन का उन्नीसवीं शताब्दी का सब से अच्छा उदाहरण लार्ड केल्विन है। उसने अपने समय को व्यवहारिक आविष्कारों और वैज्ञानिक प्रयोगों मे बांट रक्खा था। वह प्रत्येक कार्य में सदा पूर्ण सफल हुआ।

इंजिनीयरी तथा रेखागणित सम्बन्धी आविष्कारों और अभ्यासों मे मानसिक नेत्र से देखने की बड़ी भारी आवश्यकता

पड़ती है। उस समय मन मे यह नक्शा बनाना पड़ता है कि यह वस्तु किस प्रकार काम करेगी, आदि।

इस प्रकार के मन वाले किसी मशीन को एक बार देखकर ही उसके नक्शे को मन में खैंच लेते है। वह इस बात को सदा स्मरण कर सकते है कि उक्त मशीन किस प्रकार चलती है। उसी के आधार पर वह अपने मन मे नये २ नमूने बनाकर नये २ आविष्कार करते हैं।

एक प्रकार के व्यक्ति ऐसे होते हैं जो मनुष्य की भाव भंगी और उसके प्राकृतिक परिवर्तनों को देखकर अपने मन मे एकत्रित किया करते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर बोले हुए शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह अपने मित्रों के शब्दों की भी चिन्ता नहीं करते। वह ऐसी बातों को देखते, तुलना करते और स्मरण करते रहते हैं जिन की ओर दूसरे व्यक्ति कभी ध्यान नही देते। उनको मनुष्यों के चेहरों मे पलक का झपकना, ओठ की छोटी सी वक्र गति, सिर का एक अन्दाज से घूमना आदि सभी अच्छा लगता है। इस प्रकार के व्यक्ति संसार के कलाकार, ड्राफ्टमैन, चित्रकार, नक्काश, और वास्तुविद्या विशारद होते हैं।

एक दूसरे प्रकार के व्यक्ति ऐसे होते हैं जो देखने की अपेक्षा सुनकर ही विचारों को एकत्रित किया करते हैं। कुत्ते जैसे प्राणि मे एकत्रीकरण गध के सूघने से होता है। किन्तु मनुष्यों मे सूंघने का महत्व कम होगया है। उनमे केवल देखने और सुनने का ही गुण विशेष है।

संगीत विद्या वाले तो शब्द के विशेषज्ञ होने हैं। वह स्वरा

श्रौर लय को स्मरण रख कर उनको स्वयं बोल अथवा बाजे में निकाल सकते हैं। वह नयी २ लयों को भी बना सकते हैं। वह अपने मन मे यह कल्पना कर सकते हैं कि एक प्रकार के बाजे का स्वर दूसरे बाजे से किस प्रकार मिलता है। अतएव जिस प्रकार कलाकार चित्र बनाता है, यह लोग संगीत बनाते हैं।

एक श्रौर प्रकार के व्यक्तियों की रुचि शब्दों मे ही होती है। उनका मन मनुष्यों में सबसे अधिक विकसित होता है। यह लोग किसी मनुष्य के बोलते समय कलाकार के समान उसके श्रोठों श्रौर नेत्रों में रुचि नहो रखते; न वह सगीतज्ञ के समान उसकी लय पर दृष्टि रखते हैं। वह तो उसके शब्दों के अर्थ पर दृष्टि रखते हैं। जिस प्रकार संगीतज्ञ स्वरों श्रौर लयों को स्मरण रखता है श्रौर कलाकार रंगों तथा आकृतियों को स्मरण रखता है उसी प्रकार यह लोग शब्दों श्रौर छोटे २ वाक्यों तथा उन विचारों को स्मरण रखते हैं, जिनके सम्बन्ध मे उन शब्दों को कहा गया था।

मौलिक श्रौर महान् व्यक्ति

एक प्रकार का व्यक्ति चित्र बनाने की रेखाओं को स्मरण रखता है। एक दूसरे प्रकार का लय बनाने के लिये स्वरों को स्मरण रखता है श्रौर एक तीसरा व्यक्ति विचारों को बनाने के लिए शब्दों को स्मरण रखता है।

इस प्रकार के व्यक्तियो के चित्र, गायन श्रौर विचार पहिले जैसे ही हो सकते हैं, किन्तु इनमें मौलिक कहलाने वाले महान् व्यक्ति बहुत थोड़े होते हैं। यह संसार की उन्नति करते हैं।

वह केवल पुरानी बातों को स्मरण ही नहीं रख सकते, वरन् नयी २ बातों को बना भी सकते है। इस प्रकार के व्यक्ति बड़े २ चित्रों, बड़ी २ मूर्तियों, बड़े २ प्रासादों अथवा बड़े २ संगीतों के समान और उनसे भी उत्तम नये२ तथा बड़े२ विचार उत्पन्न किया करते हैं।

संसार मे कभी २ ऐसे व्यक्ति भी उत्पन्न होते हैं जिनमे श्रवण-शक्ति के संगीत और शब्द--दोनों गुणों की ही विशेषता होती है। वह केवल शब्दों को मिलाकर नये विचार ही नहीं देता, वरन् उनको संगीत के ढंग पर भी उपस्थित करता है। वह उनको मिलाकर इस प्रकार प्रगट करता है कि वह हृदय पर जाते ही प्रभाव दिखलाते हैं।

ऐसे व्यक्ति को कवि कहते हैं। सब से बड़े कवि की देखने की शक्ति भी होती है। वह अपने मन मे ही बड़े २ चित्रों को देख सकते हैं। वह प्रकृति के रूपों को स्मरण कराते हैं। उनके मन मे विचारों का स्रोत होता है, जिसमे वह अपने मन की कल्पित बातों का वर्णन किया करते हैं।

मन का स्वामी

कोई शक्ति इन सब गुणों को एक साथ मिला कर इन पर शासन करती है। वह सभी एकत्रीकरण-शक्तियों से अधिक गहरी होती है। दर्शन शास्त्रों में इसी शक्ति को जीव अथवा आत्मा कहा है। उसको मन का भी स्वामी कहते हैं। उच्च-आत्मा वाले ही बड़े से बड़े कवि अथवा राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा और महात्मा गाधी जैसे प्रचारक होते हैं।

तीसवां अध्याय

अन्तःकरण की वृत्तियां

अभी तक प्रायः यही समझा जाता रहा है कि विद्या से बुद्धि और आचरण दोनों की ही प्राप्ति होती है। किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि विद्या से बुद्धि और आचरण मिलना अनिवार्य नहीं है। यद्यपि प्रसिद्ध यूनानी दर्शनिक सुकरात ने यह कहा है "विद्या के अनुसार आचरण करने वाले ही विद्वान् होते हैं;" इधर उपनिषदें भी गला फाड़ २ कर यही कह रही हैं कि 'विद्या ददाति विनयं' तथा 'विद्ययाऽमृतमश्नुते'; किन्तु आज सब यह भूतकाल के सिद्धांत हो गये हैं। आज तो विद्या भी एक प्रकार की शक्ति ही है। उस शक्ति को पाकर मनुष्य अच्छे या बुरे सभी प्रकार के कार्य कर सकता है।

बुद्धि के अतिरिक्त अन्तःकरण का एक रूप और भी है। भारतीय भाषाओं मे उसको चित्त कहा गया है। उसका कार्य अनुभव और इच्छा करना है। दूसरे शब्दों मे चित्त के कार्यों को भाव

कहना चाहिये। मनुष्य के कार्य उसके भावों के ही परिणाम होते हैं। वह इसी लिए मनुष्य के अन्त:करण का महत्वपूर्ण भाग होते हैं। संसार मे कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण कुछ नहीं है। मनुष्य, राष्ट्र और इतिहास के निर्माता कार्य ही हैं।

भाव चित्त वृत्ति (Instinct) के अनुकूल होते हैं। इस बात को सब कोई जानते है कि भागने का सम्बन्ध भय से है।

भय ऐसा भारी भाव है जो सभी स्थानों और युगों में स्त्री, पुरुष और बच्चो के कार्य को निर्धारित करता है। भय अपने लिये अथवा दूसरे के लिये हो सकता है। इस जीवन अथवा अगले जीवन की बातो से भी भय हो सकता है। भय की कार्य-शैली कार्यों का रोकना है। भय मनुष्य को अनेक कार्यों से रोक कर वश मे रखता है। संसार मे अध्यापक और शासक दोनों ही इसके द्वारा कुछ कार्यों को रोकने का बहुत कुछ कार्य लेते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण भाव घृणा है। यह भय से बिल्कुल ही भिन्न है। किसी वस्तु को हटाने की चित्तवृत्ति का परिणाम घृणा है।

इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण उत्सुकता (Curiosity) है। यह आश्चर्य के भाव से उत्पन्न होती है। उच्चकोटि के प्राणियों में उत्सुकता बहुत होती है। यह मनुष्य के अतिरिक्त बन्दरो और लंगूरों में सब से अधिक होती है। मनुष्यों में आश्चर्य का भाव बहुत अधिक पाया जाता है, किन्तु अवस्था-प्राप्त व्यक्तियों में यह अधिक नहीं पाया जाता। बच्चों में यह

भाव अत्यधिक मात्रा में होता है। इसी के कारण वह बहुत सी शरारतें कर बैठते हैं। किन्तु यदि बच्चों में यह भाव न हो तो वह अधिक नहीं सीख सकते।

अवस्था-प्राप्त व्यक्तियो मे आश्चर्य का भाव प्राय: मर जाता है। तो भी उत्सुकता और आश्चर्य दोनो ही अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मनुष्यों मे यह उनके बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों के प्रधान साधन होते हैं। विज्ञान और धर्म के आधार भी यही होते है। मनुष्य को आविष्कार और अनुसन्धानों मे जुटा कर संसार और मनुष्य जाति के सिद्धान्तो का पता यही लगाते हैं।

जाति के भविष्य को निश्चित करने वाली मनोवृत्ति

युद्ध की मनोवृत्ति और उसका सहचारी भाव क्रोध भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते है। भय के समान इसका अस्तित्व प्रत्येक प्राणि मे नहीं होता।

निम्न श्रेणि के प्राणियों मे यह भाव स्त्री जाति में अधिक होता है और वह भी अपने बच्चे की रक्षा करने के समय। मनुष्य को अनेक युगो से इस बात का अनुभव है कि ऐसी अवस्था मे वह अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। इस भाव का अभिप्राय बच्चों और जाति के भविष्य की रक्षा है। माता अपने बच्चे की रक्षा के समय इतना भयंकर क्रोध प्रदर्शित करती है कि उस से उस बच्चे की शत्रु से रक्षा हो जाती है। चीते को अत्यन्त साहसी और भयंकर समझा जाता है, किन्तु डारविन बतलाता है कि भारतवर्ष में चीता भी उस बच्चे पर आक्रमण करने का

बहुत कम साहस करता है, जो अपनी माता की रक्षा में होता है। यद्यपि माता पर आक्रमण करने मे उसको किसी भी समय हिचकिचाहट नहीं होती।

युद्ध की मनोवृत्ति मे क्रोधित होकर मनुष्य प्रायः पशुभाव प्रदर्शित करता है। मनुष्य ऊपर के ओष्ठ को उठा कर घृणा प्रदर्शित करता हुआ गुर्राता है। वास्तव मे यह उसी प्रकार का भाव है कि यदि दांत होते तो काट खाते। अधिक अवस्था होने पर यह भाव लोप न होकर एक दूसरा ही रूप धारण कर लेता है। वह रूप केवल भिन्न ही नहीं, वरन् उच्च भी होता है। मनुष्य जाति की यह विशेषता है कि अवस्थाप्राप्त होने के साथ २ उसकी मनोवृत्तियां भी उच्च रूप धारण करती जाती हैं। भली प्रकार विकसित मनुष्य मे क्रोध और युद्ध की मनोवृत्ति साहस, स्फूर्ति और कार्यक्षमता उत्पन्न करती है। यदि मार्ग मे कठिनाइया आती हैं तो निश्चय और भी अटल हो जाता है। अतएव इस भाव के उच्च और नीच दोनों रूप होते हैं।

सब से उच्च और प्रतापी भाव

अब मानव भावो मे उस सब से अधिक महत्वपूर्ण भाव पर आते हैं, जिसके बिना मनुष्य कुछ घन्टों से अधिक जीवित नहीं रह सकता। इसको वात्सल्य भाव (Parental Instinct) कहते हैं। पिताओं की अपेक्षा यह माताओं मे अधिक पाया जाता है। अब तक हम अपने अन्दर के उस ससार को ही जानते हैं, जिसमें मह नहीं हैं। किन्तु यह भाव सब भावों से अधिक शानदार और

उच्च कोटि का है। यहां तक कि इसी के वशवर्ती होकर हम परमात्मा को परम पिता और प्रेम को ही परमात्मा कहते हैं।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा इस भाव का मनुष्य जाति में इस कारण भी महत्व अधिक है कि मनुष्य के बच्चे अन्य प्राणियों के बच्चों की अपेक्षा अधिक नि:सहाय होते हैं और उनको अन्य प्राणियों के बच्चों की अपेक्षा अधिक संरक्षण और वात्सल्य भाव की आवश्यकता होती है। सब से अधिक निम्न श्रेणि के प्राणियों में वात्सल्य भाव नहीं होता। प्राणियों की श्रेणियों के उच्चतर होते हुए यह भाव भी उच्चतर हो जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि इस भाव का इतिहास मछलियों से आरम्भ होता है। कुछ मछलियां अपने अंडों की रखवाली करती हुई उनके नष्ट करने वालों को भगा देती है। इस श्रेणि से आगे की श्रेणियों मे बच्चो की रक्षा अधिकाधिक उच्च रूप धारण करती जाती है। यहा तक कि मनुष्यों मे उसका उच्चतम रूप देखने में आता है।

वास्तव मे वात्सल्य भाव भी प्रेम का ही एक अंग है। बिल्लियो और पक्षियों मे इसका उत्तम रूप देखा जाता है। पक्षि तो दिन का अधिकांश भाग अपने बच्चो की रक्षा करने और उनको चुग्गा देने मे ही व्यतीत करते हैं।

वात्सल्य भाव में स्वार्थ की भावना नहीं होती; क्योंकि बच्चे अपने माता-पिता से उस परिमाण मे कभी प्रेम नहीं करते, जिस परिमाण मे उनके माता-पिता उनसे करते हैं।

इस भाव से मानव-प्रकृति में सब उत्तम गुण उत्पन्न होते

हैं। उदारता, कृतज्ञता, दया, निःस्वार्थता अपने पड़ौसियों के प्रति सत्य-प्रेम सब इसी से होते हैं। हमारे प्राय: कार्य या तो किसी पारितोषिक को प्राप्त करने अथवा किसी दण्ड से बचने के लिये होते हैं। क्रोध पूर्वक लड़ने की मनोवृत्ति तभी होती है, जब हमारे किसी और भाव में बाधा पहुंचाई जाती है। यह पहिले बतलाया जा चुका है कि वात्सल्य भाव मे बाधा आने पर किस प्रकार नम्र से नम्र माता भी अत्यन्त भयकर और उग्रतम रूप धारण कर लेती है।

जब हम किसी को दासों, बच्चों अथवा स्त्रियों पर निर्दयता अथवा अत्याचार करते हुए देखते हैं तो हमारे हृदय के असहायों के लिये कोमलता के भाव पर ठेस पहुंचती है और हम में क्रोध-पूर्वक युद्ध की मनोवृत्ति जाग्रत होती है, जो मानव-जीवन का सब से उत्तम गुण है।

संगति के प्रभाव में अन्तर

इन भावों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक भाव होते हैं, जिनका मनुष्य के जीवन और आचरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वह हैं—सहानुभूति, आदेश (Suggestion) और नकल करना।

सहानुभूति मनुष्य को दूसरे के दुःखद भावों का अनुभव कराती है। बच्चा किसी हंसते हुए मुख को देख कर मुस्करा देता है, किन्तु वह दूसरे बच्चों को रोता हुआ देख कर रो देता है। प्रसन्न मुख को देख कर मनुष्य प्रसन्न हो जाता है और भय से

चिल्लाते हुए को देख कर भयभीत हो जाता है। क्रोध तो किसी दूसरे के क्रोध को देखकर तुरन्त भड़क उठता है। अतएव संगति का प्रभाव मनोवृत्ति पर पूरा पड़ता है।

आदेश (Suggestion) एक ऐसी असाधारण शक्ति है जो दूसरों को अपने प्रभाव मे ले आती है। इसके द्वारा दूसरों से अनेक कार्य उनको बिना कारण बतलाये कराये जा सकते हैं। आदेश के ऊपर पुस्तक लिखना सुगम है। हिपनाटिज्म के द्वारा प्रभावित होने की दशा मे मिलने वाले आदेश के ऊपर तो अनेक पुस्तकें लिखी भी गई हैं।

हिपनाटिज्म का नाम सभी ने सुना होगा, यद्यपि इस बात को बहुत कम लोग जानते है कि उसके सम्बन्ध मे कही हुई कहानियां सत्य है अथवा असत्य।

हिपनाटिज्म की शक्ति के विषय में भ्रांत धारणाएं

हिपनाटिज्म के विषय मे अनेक गलतफ़हमिया फैली हुई है। लोग समझते है कि हिपनाटिज्म एक प्रकार की वशीकरण विद्या है और उसके प्रभाव मे लाकर किसी व्यक्ति से चाहे जो कार्य कराया जा सकता है। वास्तव में सभी प्रकार का हिपनाटिज्म आदेश का ही एक रूप होता है। अनेक वैज्ञानिक चिकित्सक रोगी के मस्तिष्क कोआदेश प्राप्त करने के लिए तयार रखना चाहते हैं।

आदेश के अतिरिक्त चित्त में नकल करने की वृत्ति भी होती है। यद्यपि मनुष्य जन्म भर नकल किया करता है, किन्तु लड़कपन मे यह वृत्ति अधिक हुआ करती है।

पारिभाषिक शब्दों का कोष

अङ्ग Organ
अण्ड Testicle
अण्डकोष Scrotum
अति सूक्ष्म शिरा Venule
अनुजंघास्थि Fibula
अन्त:प्रकोष्ठास्थि Ulna
अन्त: श्वसन (पूरक) Inspiration
अन्दर की त्वचा Dermis
अन्न प्रणाली Oesophoegus, Gullet
अन्न मार्ग Digestive Canal, Alimentary canal
अभिद्रव हरिक Hydrocloric Acid
अमीबा (कीटविशेष) Amoeba
अम्ल Acid
अम्लीय रस Acidic Juice
अस्थि Bone
अस्थिपंजर Skeleton
अक्षकास्थि (हंसली) Collar bone
अक्षि Eye
अक्षिखात Orbital fossa
अक्षिगोलक Eyeball
अक्षिपक्ष्म Eye-lashes
आक्सीजेन Oxygen
आक्सीहेमोग्लोबिन Oxyhaemoglolin (H B O 2)
आदेश Suggestion
आमाशय Stomach
आमाशयिक रस Gastric juice
आरटेरीज Arteries
आरंभक सूक्ष्मजीव Starter
आवर्त Circulation
आंख Eye
इन्फ्लुएंजा Influenza
इन्स्युलीन Insulin
इन्द्रिय Organ
उच्छ्वास (रेचक) Expiration

उज्जहरिकाम्ल Hydrocloric Acid
उदजन Hydrogen
उदर Abdomen
उन्नतोदर Convex
उपचर्म Epidermis
उपचुल्लिका Parothyroid
उपतारा (आंख का) Iris
उपवृक्क ग्रन्थि Supra Renal gland; Adrenal.
उपवृक्क रस Adrenalin
उपास्थि Cartilage
उभार Projection,
उर्द्ध्व महा शिरा Vena Cava Superior.
ऊर्द्ध्व हनु Upper jaw
ऊर्वस्थि Femur
एक सत्व वाले प्राणि Unicellular animals
एड़ी Heel
एल्बुमेन Albumen
ओषजन Oxygen
ओषित कणरञ्जक Oxyhaemoglobin
कड़वा रस Bitter
कण Speck

कणरञ्जक Haemoglobin
कण्ठ Throat
कण्ठ की सूजन Bronchitis
कण्डरा Tendon, Sinew
कण्डराएं Sinews, Tendons
कनीनिका Cornea
कपाट Valve
करभ Metacarpal
कर्ण Ear
कर्ण पटह Tympanum; Tympanic membrane
कर्णपाली Lobule of ear
कर्णशष्कुली Pinna
कर्णाञ्जलि External acoustic Meatus
कर्तनक दन्त Cutter teeth; Incisors
कर्बन Carbon
कर्बन द्विओषित (द) Carbone Dioxide
क. ओ २ C. O Z.
कर्बोज (स्टार्च और शक्कर का मिश्रण) Carbohydrats.
कशेरुका Vertebra
कशेरुकाएं Vertebrae

कान की अर्द्ध चन्द्राकार नालियां या मण्डल प्रणालियां Semi-Circular Canals
कारटिलेज (तरुणास्थि) Cartilage
कशेरुकी नली या सुषुम्ना प्रणाली Vertebral Canal
कीटाणु या सूक्ष्मजीव Microbes; Germs
कीला या भेदक दन्त Canines
कूर्च या दाढी के बाल Beard
केन्द्रीय नाड़ी संस्थान Central nervous system
केशिका Capillary
कैल्सियम या खटिका Calcium
कोक्ला या अन्त: कर्णगह्वर Cochlea,
कोष, स्रोत या प्रणाली Vessels
कंकाल Skeleton
क्रीम Cream
क्लोम Pancrea; Pancreas
क्लोम रस Pancreatic juice
क्लोरीन Chlorine
क्लोरोफार्म Chloroform
क्लोरोफील Clorophyll
क्षार या लवण Salt
क्षेपक कोष्ठ (हृदय का) Ventricle
खटिका Calcium
कपाल Skull
खमीर Ferment; Yeast Plant
गर्त या गह्वर Cavity
गलकोष Pharynx
गलफड़े या मत्स्य फुप्फुस Gills
गुदास्थि Coccyx
गुरदे या वृक्क Kedneys
गुल्फास्थि Talus (astragalus)
गंधक Sulphur
ग्रन्थियां Glands
ग्राहक कोष्ठ (हृदय का) Auricle
ग्रीवा Neck
घनास्थि Cuboid bone
घर्म ग्रन्थि या स्वेद ग्रन्थिया Sweat glands
घेघा या उपचुल्लिका प्रदाह-Goitre
घ्राणांकुर या नासिका-बाल Olfactory hairs
चक्री Disc

चर्म Dermis
चालक केन्द्र (मस्तिष्क का) Motor centre
चालक नाड़ियां Motor Nerves
चिकनाई या स्नेह Fats
चित्तवृत्ति Instinct
चुल्लिका ग्रन्थि Thyroid gland
चैतन्यकेन्द्र या बिन्दु (मींगी) Nucleus
छाती या वक्ष Breast
छेदक दांत Incisors
जबड़े Jaws
जर्म या रोगाणु Germs
जलवाष्प Water vapour
जल-स्थल-चर या मण्डूक श्रेणि Amphibia
जिगर या यकृत Liver
जीवन बिन्दु Vital point
जीवनमूल Protoplasm
जीवनशक्ति Vitality
जीवाणु या सूक्ष्माणु Microbes
जंघासे या वंक्षण Groin
जंघास्थि Tibia
झाग नामक पौदा Yeast plant
झिल्ली Membrane
झींगा मछली Lobster
टेंटवा Trachea
डिम्ब Ovum
डिम्ब ग्रन्थियां Ovaries
तन्तु Tissues
तारा या आंख की पुतली Pupil
ताल Lens
तालु Palate
तिल्ली या प्लीहा Spleen
त्रस जीव Animal
त्रसरेणु Molecule
त्रिकास्थि Sacrum bone
त्रिपार्श्विक अस्थियां या उपलक Cuneiform
त्वचा या चर्म Dermis; Skin
थाइमस Thymus gland
थूक या लाला Saliva
दन्तकोष्ठ Pulp cavity
दन्तवेष्ट या रुचक Enamel; Gums
दर्शन या चेतना Sensation
दाढें या चर्वणक दन्त Molars
दांत या दन्त Tooth

दुग्ध शर्करा Suger of Milk
दृष्टि Vision
दृष्टि नाड़ी Optic Nerve
दृष्टि पटल Retina
दंडे या शलाका दण्ड Rods
धड़ Trunk
धमनिका Arteriole; Arterioles
धमनी Artery
धूसर वल्क Grey mantle
मक्खन (कृत्रिम) Margarine
नत्रजन Nitrogen
नमकीन या लवण Salt
नाइट्रोजेन Nitrogen
नाड़ी या वात नाड़ी Nerve
नाड़ी तरंग Nerve current
नाड़ी प्रवाह Nerve current
नाडी सूत्र या वात सूत्र Nerve Fibre
नाड़ी-सेल या वात-कोष Nerve cell
नाड़ी, संस्थान या वात संस्थान Nervous system.
नितम्बास्थि Os innominatum; Hip bone
निम्न महाशिरा Vena Cava Inferior
नेहानी अस्थि (कान की) Anvil
नोकर्म पुद्गल Protoplasm
नौकाकृति या नौनिभ अस्थि- Navicular
पटह नाभि Umbo
पट्टे या तन्तु Tissue
पत्र Leaf
पर Flippers
परमाणु Atom
पर्शुका Rib
पसीना या स्वेद Sweat
पाचक रस Digestive-juice
पार्शिवक बन्धन Ligaments
पार्शिवकास्थि Parietal bone
पार्ष्णि Heel
पिट्युट्री Pituitary
पित्त Bile
पीत बिन्दु Macula Lutea
पीनियल Pineal
पुच्छास्थि Coccyx
पुतली Pupil
पुद्गल Matter
पृष्ठवंश Vertebral column
पेप्सिन Pepsin
पेशी Muscle

पेशी सूत्र या मांस तन्तु Muscular fibres
पैंक्रिया या क्लोम Pancrea
पोटैशियम Potassium
प्रकम्प Vibration
प्रकाश शंकु Cone of light
प्रकोष्ठ Fore-arm
प्रगण्डास्थि Humerus
प्रणाली Duct
प्रणाली विहीन ग्रन्थि Ductless gland
प्रवर्द्धन Projection
प्रश्वास Expiration
प्राचीन मस्तिष्क या सेतु- Bulb
प्राणि (जन्तु) Animal
प्राथमिक विचार Sensation
प्रुसिक ऐसिड Prussic Acid
प्रोटीन या प्रतनक Protein
प्रोस्टेट या पौरुष ग्रन्थि Prostate-
प्लीहा Spleen
फन वृक्ष Fern
फास्फोरस Phosphorus
फुप्फुस Lungs
फुप्फुसीया धमनी Pulmonary artery
फुप्फुसीया शिराएं Pulmonary Veins
फेफड़ों की सूजन Bronchitis
बगल या कक्ष Armpit; axilla
बहि: श्वाशन या उच्छ्वास Expiration
बहुछिद्रा Ethmoid bone
बहुसेल युत प्राणि या अनेक कोषी Multicellular animals
बाईकारबोनेट या द्विकर्बनित Bicarbonate
बालाई Cream
बिना मेरुदण्ड वाले प्राणि Invertebrates
बिम्ब नाभि Physiological cup
बैंगनी Violet
ब्रह्मरन्ध्र Anterior fontanelb
भेदक दन्त Canines
मग्नेशियम या मग्न Magnesium
मज्जा Bone marrow
मद्यसार Alcohol

मधुमेह Diabetes
मलद्वार या गुद Anus
मलोत्सर्जन Excretion
मसूड़े Gums
मस्तिष्क Brain
महाधमनी Aorta
मास पेशी Muscle
मींगी Nucleus
मुद्गरास्थि Hammer
मूत्र प्रणाली Ureter
मूत्रमार्ग Urethra
मूत्राशय Urinary Bladder
मेरुदंड Backbone, Spinal column
मेरुदंड वाले प्राणि Vertebrates; Backboned animals
मोतियाबिन्द Cataract
मोहरे या कशेरुका Vertebrae
मंडूक श्रेणि या उभयचर- Amphibia
यकृत् Liver
यूरिया (लवण विशेष) Urea
योनि या भग Vulva
योनिद्वार Vaginal opening
रक्त Blood
रक्त-चाप Blood pressure
रक्त के लाल सेल या रक्ताणु Red blood cells
रक्त के श्वेत सेल या श्वेताणु White blood cells
रक्त कोष या रक्त वाहिनी Blood vessels
रक्त भार Blood, pressure
रक्तावर्त या रक्त संचार Circulation of blood, blood circulation.
रदिन Dentine
रस Taste
रस शाला Chemical Laboratory.
रायता या सलाड Salad
रासायनिक Chemical
रिफैक्शन या वक्र किरण Refraction
रुचक Enamel
रेशे या सूत्र (तन्तु) Fibre
रोगन या रजन Pigment
रोम कूप Hair bulb
लघु मस्तिष्क Cerebellum

ललाट Forehead
ललाटास्थि Frontal bone
लवण Salt
लसीका Lymph
लसीका वाहनियां Lymphatic vessels
लाला या लार Saliva
लैक्टील या दुग्ध वाहिनी Lacteal
लोहा Iron
लौर या कर्णपाली Lobule of ear
वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी Diaphragm
वल्क Mantle
वसामय कला Fatty membrane
वस्तिगह्वर Pelvis
वात नाड़ी Nerve
वात कोष Nerve cell
वात सूत्र Nerve fibre
वात्सल्य भाव Parental instinct
वायुकोष Air cell
वायु प्रणालियां Windpipes, Bronchi
वाहिनियां Vessels
विश्लेषण Analysis
वीर्य Semen
वृक्क Kidney
वृक्षों की हरी रचनासामग्री या हरितक Clorophyll
वृत्त Circle
वृषण Scrotum
वृहत धमनी Aorta
वृहत मस्तिष्क Cerebrum
वंक्षण प्रदेश Groin
शक्कर के मिश्रण Sugar compounds
शङ्खास्थि Temporal bone
शब्द श्रावण केन्द्र Word hearing centre
शरीर विज्ञान Physiology
शर्करा Sugar
शिराएं Veins
शिराक Venule
शिश्न Penis
शिश्न मुण्ड Glans Penis
शुक्र Semen
शुक्र कीट Spermatozoon
शुक्राशय Vesiculae seminals

श्रवणकोष Hearing cell
श्रावण नाडी Nerve of hearing
श्लेष्म Mucus
श्लैष्मिक कला Mucous membrane
श्वास केन्द्र Breathing centre
श्वास प्रणालिका Bronchi
श्वास प्रणाली Bronchial tubes
श्वास मार्ग Respiratory passage
श्वेत सार Starch
सज्जी खार Alkali
सन्धिप्रवर्द्धन Joint projections
सन्धियां Joints
समुद्री सिरवाल Seaweed
सरीसृप Reptiles
सहायक तन्तु Suppoting tsisue
साम्यस्थिति या संतुलन Balance
सार Extract
सांप की छतरी Mushroom
सांवेदनिक वात नाड़ियां Sensory nerves
सांवेदिनिक पटल Retina
सीप का कीड़ा Oysters
सील मछली Seal
सुषुम्ना नाड़ी Spinal cord
सुषुम्ना वात नाड़ी Spinal nerve
सूक्ष्म जीव Microbes,
सूक्ष्म दर्शक यंत्र Microscope
सूचियां (नेत्र की) cones
सूत्र Fibre
सेतु Bulb
सेल या कोष cell
सेल की मींगी Nucleus
सोडियम Sodium
सोडियम कारबोनेट (कपड़े धोने का सोडा) Sodium carbonate
सोडियम क्लोराइड Sodium chloride
सोडियम बाईकारबोनेट Sodium Bicarbonate
सौत्रिक तन्तु Fibrous tissue
संकोच contraction
संतुलन Balance

संयोजक तन्तुओं के सेल connective-tissue-cell
संयोजक सूत्र (मस्तिष्क के)— Association fibres
संस्थान System
स्कन्धास्थि Scapula
स्तन Breasts
स्तन पोषित प्राणि Mammals
स्थितिस्थापक Elastic
स्पंदन Vibration
स्फुर या प्रस्फुरक Phosphorus
स्वर Voice
स्वर यंत्र Larynx, Vice-box.
स्वर रज्जु Vocal cord
स्वाद Taste
स्वादरन्ध्र Gustatory pore
हाइड्रोक्लोरिक एसिड Hydroclorie Acid
हृदय Heart
हृदावरण Pericardium
हेमाग्लोबिन या रक्तारञ्जन Haemoglobin

कला पुस्तक माला के नियम

१—इस पुस्तक माला में कुल १२ ग्रन्थों का प्रकाशन होगा और प्रत्येक ग्रन्थ मे लगभग ३५० पृष्ठ तथा १२ हाफ़टोन।ब्लाक कपड़े की पक्की जिल्द मे होंगे।

२—इसके प्रत्येक ग्रन्थ का मूल्य ३) रु० होगा।

३—॥) प्रवेश शुल्क जमा करके स्थायी ग्राहक बनने वाले महानुभावों को इस पुस्तक माला की प्रत्येक पुस्तक पौने मूल्य में दी जावेगी।

४—जो स्थायी ग्राहक हमारी प्रत्येक ग्रन्थ के प्रकाशन पर भेजी जाने वाली सूचना के साथ प्रत्येक पुस्तक के लिये २।) मनीआर्डर या डाक टिकटों द्वारा अग्रिम भेज देंगे, उन्हे डाक व्यय कुछ नहीं देना होगा।

५—जो ग्राहक २४॥) मनीआर्डर या चेक द्वारा एक मुश्त भेज देंगे उन्हें बारहों ग्रन्थ बिना डाक व्यय के घर बैठे मिलते रहेंगे। किन्तु यह रियायत केवल १ मार्च १९३८ ई० तक ग्राहक बनने वाले सज्जनों को ही दी जावेगी।

६—प्रकाशक को ग्रन्थों के क्रम तथा नामों आदि में लेखक की सम्मति से परिवर्तन करने का अधिकार होगा।

मैनेजर—भारती साहित्य मन्दिर, चांदनी चौक, देहली।

कला पुस्तकमाला का प्रथम ग्रन्थ

हिटलर महान्

अथवा

जर्मनी का पुनर्निर्माण

लेखक—आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री।

इसमे हिटलर के जीवन चरित्र के अतिरिक्त जर्मनी का सक्षिप्त इतिहास, हिटलर का बाल्यकाल, यूरोपीय महायुद्ध और उनके बाद के परिणाम, जर्मनी का राष्ट्रसघ (लीग आफ़ नेशन्ज़) मे सम्मिलित होना, सार प्रदेश तथा राइनलैंड का लेना, लोकार्नो पैक्ट इत्यादि सब राजनीतिक समस्याओं का विवेचनात्मक इतिहास दिया गया है। हर एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहियें। लगभग ४०० पृष्ठ, १२ हाफ़टोन ब्लाक, बढिया कागज़ और छपाई, पक्की कपड़े की जिल्द और तिरंगा टाइटिल होने पर भी मूल्य केवल ३) मात्र।

कुछ अमूल्य सम्मतियां

भारतीय सोशिएलिस्ट पार्टी के सर्व-प्रधान नेता, अखिल भारतीय कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य, काशी विद्यापीठ के आचार्य नरेन्द्रदेव जी—

"आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री का ग्रन्थ 'हिटलर महान्' देखने मे आया। यदि पुस्तक का नाम 'हिटलर महान्' न होकर कुछ और होता तो अच्छा होता। हिटलर अन्तर्राष्ट्रीय जगत की

प्रतिक्रियागामी शक्तियों का एक विशेष प्रतिनिधि है। इस लिये उसको 'महान्' कहना अनुचित है। वह हमारे लिये आदर्श नहीं हो सकता।

"यह जान कर मुझको कुछ संतोष हुआ कि शास्त्री जी ने हिटलर को एक महान् पुरुष के रूप मे पेश करते हुए भी उसके दोषों को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। पुस्तक के लिखने में अच्छा परिश्रम किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थियों के लिये पुस्तक उपयोगी है। विशेष कर जर्मनी की राजनीति को समझने मे उससे अच्छी सहायता मिलेगी।

नरेन्द्रदेव"

"मदरास का प्रसिद्ध कांग्रेसी पत्र 'हिन्दू' लिखता है.—

"...To Indians today the struggle of a brave and virile nation to redeem itself will surely be an interesting study. The present book, giving ample information about Hitler and his contribution to the struggle is bound to be of interest,"

लाहौर का प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'ट्रिब्यून'—

"Mr Shastri's book is a welcome publication for all Hindi-knowing persons It is one of the best and most thorough books in Hindi on the subject........... . ...

While, taking nothing for granted, the au-

thor takes his start from the earliest period of German history He does not leave out a single notable event. Thus the book has acquired the rare merit of satisfying the beginner, as well as, the most well read student of international politics.

The language of the book is chaste Hindi, untouched by pedantic expressions or difficult Sanskrit words"

काशी का प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'आज'—

"..-हिटलर के इन गुणावगुणों का और जर्मनी की समस्या के साथ यूरोप की समस्या को समझाने का प्रशंसनीय प्रयत्न पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री ने किया है। आज जर्मनी और इटली मे संसार का 'इतिहास' बनाया जा रहा है। इसे जो देखना और समझना चाहते हैं, उन्हे यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।"

विश्वमित्र कलकत्ता—

'...लेखक ने जर्मनी-सम्बन्धी प्राय: सभी प्रश्नों पर अच्छे ढंग से विचार किया है। हिन्दी मे इस प्रकार की राजनीतिक पुस्तको का सर्वथा अभाव है। अत. लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है।'

इस विषय की हिन्दी में इतनी अच्छी यह पहली ही पुस्तक है।"

'लोकमान्य' कलकत्ता—

"अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का ज्ञान रखने वाले छात्रों के

लिये पुस्तक बड़े काम की होगी। शास्त्री जी ने हिन्दी मे अन्तर्राष्ट्रीय विषय की यह किताब देकर भाषा के एक अंग की पूर्ति में अच्छी सहायता की है। एतदर्थ उनको धन्यवाद है।"

'नवयुग' देहली—

" .जो लोग हिटलर को समझना चाहते हैं उनको इस पुस्तक... से सहायता अवश्य मिलेगी। ......नाजीवाद के प्रवर्तकों के मुंह से उसकी प्रशंसा सुनना इधर उधर के परिचय प्राप्त करने की अपेक्षा कहीं अच्छा है। इसलिये हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वह इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।"

'अभ्युदय' प्रयाग—

"पुस्तक मे हिटलर की जीवनी के अतिरिक्त जर्मनी के अतीत के इतिहास, उसकी उन्नति और वर्तमान शासनव्यवस्था पर भी दृष्टि डाली गई है और उसके अब तक के कार्य दिये गए हैं। पुस्तक को उपयोगी बनाने मे लेखक ने काफी परिश्रम किया है और इसमे उन्हे सफलता भी मिली है। पुस्तक उपादेय है।"

ब्रह्मा देश की राजधानी रङ्गून का हिन्दी दैनिक बरमा समाचार—

"जब भारत का राष्ट्रीय संग्राम अखिल विश्व से सम्बन्ध स्थापित करने जा रहा हो और हिन्दी राष्ट्र भाषा हो रही हो, उस समय विदेश विषयक-साहित्य की कमी हमारे लिये लज्जा और हानि का विषय हो सकती है। इस पन्थ में आचार्य जी का कलम उठाना स्तुत्य और युवकों को उत्साहित करने वाला होगा।"

संसार प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रोफेसर विनयकुमार सरकार--

'As a study in contemporary history Pandit Chandra Shekhar Shastri's **"Hitler the Great"** has appeared to me to be a very fine contribution to Hindi Literature The author has analysed the special economic and constitutional features of the present regime and has placed them all in the perspective of the post war developments in Germany and the world The presentation is lucid and the author's historical view-point is noteworthy'.

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासलेखक **मिश्र बन्धुओं मे से रायबहादुर पं० शुकदेव बिहारी मिश्र--**

"हिन्दी मे इस ऊंचे दर्जे के ग्रन्थ कम देखने में आते हैं। बहुत ही उपादेय है। हम शास्त्री जी को ऐसा उच्च ग्रन्थ लिखने पर बधाई देते हैं। ऐसे ग्रन्थों से हिन्दी का शिर ऊंचा होता है।"

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बैरिस्टर स्वर्गीय **श्री काशीप्रशाद जायसवाल–**

"पडित चन्द्रशेखर शास्त्री जी की कला पुस्तक माला उपयोगी है। इस लिये कि दुनिया में इस समय क्या हो रहा है, जिससे बड़े २ देशों में ऐसे उलट फेर हो रहे हैं कि जैसे रेडियो का निकलना और आधुनिक आकाशयान का चलाना। ऐसी तेजी से संसार बदल रहा है कि पलट कर हमको प्रगति की लीक

नहीं दीख पड़ती। ऐसी दशा मे हमारे देशवासियों को उनका बराबर पता रहना वेद और उपनिषद् के ज्ञान की तरह ऐहिक उपनिषद् द्वारा बाध्य है।

"इस कारण मैं शास्त्री जी की योजना से प्रसन्न हूं। ऐसे ग्रंथ जितने निकलें और हिन्दी जनता इनको जितने चाव से पढ़े, मैं उतना ही देश का अच्छा भाग्य मानूंगा। लाला हरदयाल का ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। नए विचार भरे हुए हैं। इसी तरह योरुप के खास २ देशभक्त, जैसे हिटलर और मुसोलिनी, जो अपने देश के भाग्य विधाता हैं—उनका हाल जानना बहुत आवश्यक है। शास्त्री जी उन सब का चरित्र देश के सामने उपस्थित कर रहे हैं, यह बडी बात है।"

संसार के प्रसिद्ध विद्वान **महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज** M A भू पू प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस—

"Pandit Chandra Shekhar's presentation is lucid and interesting and is calculated to be highly useful to those, for whom it is intended"

देहली रेडियो स्टेशन का ब्राडकास्ट—

"...लेखक ने काफी अध्ययन और सकलन के बाद पुस्तक लिखी है। सुधार और शिक्षा की दृष्टि से ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है, जिनके द्वारा केवल हिन्दी जानने वाले नर नारियों को संसार के महान् राष्ट्रों के आपस में सम्बन्ध और

उन्नति की दौड का पता रहे । जर्मनी पन्द्रह वर्ष तक क्यों दासता के बन्धन मे जकडा हुआ पडा रहा और किस प्रकार उसने अपनी खोई शक्ति पाई, ये सब बातें भारत जैसे उठते राष्ट्र की उन्नति के लिये बहुत हितकारी है . . . "

बा० सुमत प्रसाद जैन M A L.L B ऐडवोकेट नगीना—

"आपका ग्रन्थ . . . .बहुत अच्छा और शिक्षाप्रद है। एम० ए० मे राजनीति मेरा विषय था और जर्मनी के विकास का अध्ययन मैंने विशेषतया किया था। आपके ग्रन्थ ने मेरी जानकारी बहुत बढ़ाई है।"

पडित रामनारायण मिश्र, हेडमास्टर सेंट्रल हिन्दू स्कूल बनारस—

"भारतवर्ष के नवयुवक, जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से जर्मनी का इतिहास समझना चाहते है, उनको इस पुस्तक के पढने से बहुत लाभ होगा। हिटलर के प्रभाव का रहस्य इससे अच्छी तरह मालूम हो जावेगा।"

प्रयाग का साहित्यिक पत्र "चांद" लिखता है —

"संसार की वर्तमान राजनैतिक हलचल को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिये।"

आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी—

"पुस्तक वास्तव मे मूल्यवान है। यह किसी भी देशवासी में उत्साह का संचार करने वाली और पुरुषार्थ की मात्रा बढ़ाने वाली है। इस पुस्तक से हिन्दी साहित्य मे एक अच्छे ग्रन्थ का समावेश हुआ है। छपाई और गेट अप बहुत अच्छा है।"

कला पुस्तक माला का दूसरा ग्रंथ

आत्म निर्माण

अथवा

विश्वबन्धुत्व और बुद्धिवाद

(देशभक्त ला० हरदयाल के ग्रंथ Hints for Self-culture के पूर्वार्द्ध के आधार पर)

इस पुस्तक मे राष्ट्रीयता को उलंघ कर विश्वबन्धुत्व और बुद्धिवाद (Rationalism) की शिक्षा दी गई है। इसके तीन खण्ड हैं—

बुद्धि निर्माण, शरीर निर्माण और ललित-रुचि निर्माण।

बुद्धि निर्माण मे अनेक प्रकार के विज्ञानों तथा अन्य विद्याओं—गणित, तर्कशास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, अकाशज विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, विज्ञान के इतिहास, विज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धांत, इतिहास, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाज विज्ञान, भाषाओं, अन्तराष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वभाषा और तुलनात्मक धर्म का वर्णन करते हुए उनके अध्ययन की विधि और बुद्धिवाद मे उनके उपयोग का वर्णन किया गया है।

शरीर निर्माण मे उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करने की विधि और ललित-रुचि निर्माण में भिन्न २ ललित कलाओं—वास्तु-कला (Architecture), आलेख्यकला (Sculpture), चित्रकला, संगीतकला, वक्तृत्व कला, कवित्व कला और उनके बुद्धिवाद मे उपयोग का वर्णन किया गया है।

वास्तव मे इस पुस्तक को पढ़ कर आप सब प्रकार के

अन्धविश्वास तथा रूढ़िपन्थों को छोड़ कर प्रत्येक बात पर विशुद्ध वैज्ञानिक ढंग से विचार करना सीख जावेंगे।

४१६ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य भी ३) रुपये ही है। साथ में कपड़े की पक्की जिल्द ऐंटिक कागज और सुन्दर टाईटिल है।

कुछ बहुमूल्य सम्मतियां

सैनिक आगरा—

"प्राय: सभी पढ़े लिखे लोग चिरप्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल जी के नाम से परिचित होंगे। पर ऐसे अपेक्षाकृत कम ही होंगे जो उनकी विद्वत्ता और विचार-धारा की पर्याप्त जानकारी रखते हों। ऐसे दोनों ही तरह के लोगों के लिए 'आत्म-निर्माण' एक अभिनन्दनीय ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री ने लाला हरदयाल की अंग्रेजी पुस्तक Hints for Self Culture के पूर्वार्द्ध के आधार पर लिखा है। एक तरह से इसे उक्त पुस्तक का भाषान्तर ही समझना चाहिये। ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें मानव जीवन के सभी पहलुओं पर बुद्धिवाद (रेशनैलिज्म) के एक निश्चित दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। ··· ········ बौद्धिक भूख रखने वाले सभी जिज्ञासु नवयुवकों और प्रौढ़ स्त्री पुरुषों के लिये उक्त पुस्तक एक बढ़िया दावत प्रमाणित होगी।"

स्वराज्य खंडवा—

"इस पुस्तक में आत्म निर्माण की सामग्री का अच्छा चयन है। ··· ··· ··· हिन्दी में अध्ययन का साहित्य बहुत कम है।

आशा है शास्त्री जी अपनी ग्रन्थ माला से इस कमी को पूरी करने की चेष्टा करेंगे।"

विश्वमित्र कलकत्ता--

"इस पुस्तक मे लेखक ने ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, गणित, तर्क शास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, भाषा विज्ञान, धर्म, वायु, जल, भोजन व्यायाम आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है। इस तरह लेखक ने एक ही पुस्तक मे कितने ही विषयों का विवेचन किया है। ... पुस्तक की उपयोगिता में सन्देह नहीं किया जा सकता।"

देहली रेडियो स्टेशन का ब्राडकास्ट--

"ला० हरदयाल ने अन्धविश्वास के स्थान मे जो तर्क और बुद्धि का प्रतिपादन किया है उसका सभी तरक्की पसन्द हलकों में स्वागत होना चाहिये। आज जब कि एक कौम दूसरी कौम को और एक फिरका दूसरे फिरके को शक्रो शुबह की ही नहीं, बैर की नजर देखता है, तब ऐसे साहित्य की बहुत जरूरत है, जो हमारी आंखों पर पड़े पर्दे को हटाने मे इमदाद दे सके। ला० हरदयाल के विचारों को अक्षरश ठीक न मानते हुये भी मैं उनकी इस किताब को तारीफ किये बिना नहीं रह सकता।"

हिंदू मदरास--

" Dr Shastri's call to espouse the rationalistic attitude to life has about it an unmistakable ring of sincerity "

ट्रिब्यून लाहौर--

" Acharya Chandra Shekhar Shastri is a Hindi writer of repute his first book "*Hilter Mahan*" was well received throughout the length and breadth of India The author does not believe in beating the old

track He has, therefor, explored those avenues which have hitherto bean neglected by Hindi writers .. .. The present book, though, it is in a sense technical, is essentlally a book of popular nature . . . .. . The language of the book is chaste and dignified Hindi"

कला पुस्तक माला का तृतीय ग्रन्थ

चरित्र निर्माण

अथवा

भावी विश्वराज्य और उसकी नागरिकता

(देशभक्त ला० हरदयाल के ग्रंथ Hints for self Culture के उत्तरार्द्ध के आधार पर)

इस ग्रंथ मे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के आधार पर मानव चरित्र के निर्माण करने के उपाय बतलाए गए हैं।

इसमे नागरिकों के व्यक्तिगत आचरणों के सिद्धान्तों और नैतिक उन्नति करने के उपायों को बतलाने के पश्चात् दूसरों के प्रति कर्तव्य पूर्ण नैतिक आचरण का वर्णन किया गया है।

इसमे व्यक्तिगत नीति शास्त्र का वर्णन करके देशीयनीति शास्त्र के वर्णन मे एक केन्द्र वाले पाच वृत्तों (Five Concentric Circles)—कुटुम्ब, सम्बन्धियों, अपनी म्यूनीसीपैलिटी, अपने राष्ट्र और विश्वराज्य का वर्णन किया गया है। राष्ट्रीयता को

सामाजिक और असामाजिक दो भागों में विभक्त करके उसीके प्रकाश में विश्वराज्य के आदर्श को उपस्थित किया गया है। इसके पीछे का लगभग आधा ग्रन्थ भावी विश्वराज्य के वर्णन से भरा हुआ है।

विश्वराज्य के वर्णन मे विश्व इतिहास, विश्व राजधानी, विश्व साहित्य, विश्व भाषा, विश्व यात्रा, विश्व समाज और विश्व दर्शनशास्त्र का पृथक् २ वर्णन किया गया है।

इस प्रकार भावी विश्वराज्य की रूपरेखा का वर्णन करने के पश्चात उसके अर्थशास्त्र का वर्णन करते हुए भविष्य की उत्पत्ति, खपत और बटवारे के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

इसके अन्तिम अध्याय का नाम राजनीति है। उसमे नियमित राजतन्त्र प्रणाली (Limited Monarchy),अनियमित राजतन्त्र प्रणाली (Absolute Monarchy), अल्पसत्तात्मक शासन प्रणाली (Oligarchy), पार्लमेंट प्रणाली, बहुमत प्रणाली आदि सभी शासनप्रणालियो के गुण दोषो की आलोचना करके जनतन्त्र शासनप्रणाली (Democracy) पर विशेष बल दिया गया है।

स्वतन्त्रता का आदर्श बतला कर समानता के वर्णन में शारीरिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक और आचरण की समानता का वर्णन किया गया है।

फिर संसार भर के मनुष्यों के लिये भाईचारे के कर्तव्य तथा विश्वराज्य के लिए आपके कर्तव्य को बतला कर ग्रंथ को समाप्त किया गया है।

ऐंटिग कागज, लगभग ४२५ पृष्ठ, कपड़े की पक्की जिल्द और सुन्दर तिरंगा टाइटिल होने पर भी मूल्य केवल तीन रुपये मात्र।

कला पुस्तक माला का तृतीय ग्रंथ

शरीर विज्ञान

लेखक—आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

इस ग्रन्थ में विकासवाद के अनुसार जीव की शरीर रचना के इतिहास को देते हुए जीवन की वैज्ञानिक परिभाषा और पृथ्वी के प्रारम्भिक प्राणि-वृक्षों का वर्णन किया गया है। क्यो कि पृथ्वी के आरम्भिक प्राणि वृक्ष ही थे और वह भी पहिले जल में उत्पन्न हुए थे। फिर प्राणियो के जल से स्थल पर आने का वर्णन करके जीवों द्वारा शरीर की रचना का वर्णन किया गया है। भिन्न-भिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवो अथवा कीटाणुओं (Microbes) का वर्णन करके शरीर मे जीव के प्रधान स्थान—सेल (Cell) के केन्द्र का वर्णन किया गया है। फिर रक्त के लाल सेल, श्वेत सेल, हृदय और उसके कार्य के साथ २ शरीर की रक्तावर्त (Blood circulation) प्रणाली का पूर्ण वर्णन कर दिया गया है। इसके पश्चात शरीर के श्वास संस्थान के वर्णन मे जीवन क्रिया और फुफ्फुसों (Lungs) का वर्णन करके मनुष्य शरीर की त्वचा का वर्णन किया गया है।

फिर शरीर की रचना होने की विधि का वर्णन करके उसके प्रथक् २ अङ्गों की रचना और कार्य-विधि का वर्णन किया गया है।

इस विषय मे शिर और हाथ पैर, मांसपेशियों और उनकी संचालक नाड़ियो का वर्णन करके पाचन-संस्थान के वर्णन में मुख और दातों का वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ मे भोजन का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया गया है। भोजन पचाने की विधि, भोजन और उसके उपयोग, प्रकृति

के आश्चर्य जनक भोजन, रोटी और शराब का प्रथक् २ विस्तृत वर्णन किया गया है।

इसके पश्चात् शरीर के नाड़ी-संस्थान के वर्णन मे शरीर के नाड़ीचक्र और मस्तिष्क के रहस्य को बतलाया गया है। मस्तिष्क के बाए और दाहिने भाग की रचना का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है।

फिर शरीर की चुल्लिका, उपचुल्लिका आदि आश्चर्य जनक ग्रन्थियों (Glands) का वर्णन करके कर्ण, स्वरयन्त्र, आंख,नाक और जिव्हा की रचना का प्रथक् २ विस्तार से वर्णन किया गया है।

अन्त मे अन्त:करण का वर्णन करके अन्त:करण की मुख्य २ वृत्तियों का भी सक्षिप्त वर्णन कर दिया गया है।

इस प्रकार यह ग्रंथ शरीर, मन और मस्तिष्क की रचना का आदि से लेकर इति तक का इतिहास भी है।

इस ग्रंथ को पढ कर आप निश्चय से अपने स्वास्थ्य के विषय मे अधिक सतर्क रह कर उसकी अच्छी उन्नति कर सकेंगे। स्थान २ पर इस ग्रंथ मे भोजन आदि के परिवर्तन से निरोग रहने के प्राकृतिक नियम भी बतलाए गए है। प्राय: सभी विषयों को चित्रो से समझाया गया है।

'कला पुस्तकमाला' की प्रत्यक पुस्तक के समान लगभग ४२५ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य भी ३) ही है। इसमें अनेक चित्र भी हैं। साथ मे कपड़े की पक्की जिल्द और तिरंगा टाइटिल भी है।

कला पुस्तक माला का पञ्चम ग्रंथ

राष्ट्रनिर्माता मुसोलिनी

यह ग्रंथ हमारे पूर्व ग्रंथ 'हिटलर महान्' से भी अधिक उपयोगी है। इसमे न केवल इटली की, वरन् सन् १९३७ के अन्त तक की संसार भर की राजनीतिक घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन किया गया है।

इसमें पहिले इटली के प्राचीन इतिहास के सिलसिले में यूरोप का रोमन काल का इतिहास देकर इटली की परतन्त्रता आदि प्राचीन-कालीन सभी घटनाओ को दिया गया है। फिर इसमे मत्सीनी, कावूर और गारीबाल्डी के द्वारा इटली को स्वतन्त्र किये जाने आदि बाद की घटनाओ को देकर मुसोलिनी का विस्तृत जीवन चरित्र इस प्रकार दिया गया है कि वह भी इटली के इतिहास का एक अंग ही बन गया है। इसके पश्चात् गत महायुद्ध, वरसाई की संधि, महायुद्ध के बाद इटली की राजनीतिक दशा, फासिज्म के अभ्युदय काल, फासिस्टों की रोम पर चढ़ाई, मुसोलिनी की नई सरकार, फासिज्म के मौलिक सिद्धान्तों तथा मुसोलिनी के राष्ट्रनिर्माण कार्य का वर्णन करके इटली के पर-राष्ट्र सम्बन्ध के सिलसिले मे सन् १९२० से लेकर १९३६ तक की लोकार्नो पैक्ट आदि संसार भर की सभी राजनीतिक घटनाओं का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है।

इसके पश्चात् ऐबीसीनिया के वर्णन में उसका पूर्ण इतिहास इटली-ऐबीसीनिया युद्ध, इटली द्वारा राष्ट्रसंघ का मुकाबला किये जाने और परतन्त्र ऐबीसीनिया की तड़प का वर्णन विश्व राजनीति की दृष्टि में किया गया है।

फिर इटली के अन्य प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों का वर्णन करके उपसंहार मे सन १९३६ और १९३७ की विश्व राजनीति की घटनाओं का शृंखलाबद्ध वर्णन किया गया है। इस विषय में सितम्बर १९३७ मे हिटलर मुसोलिनी की भेंट, जर्मनी जापान और इटली के गुट, स्पेन युद्ध, चीन-जापान युद्ध और इटली द्वारा राष्ट्रसंघ के परित्याग आदि दिसम्बर १९३७ तक की सभी राजनीतिक घटनाओं को इस प्रकार दिया गया है कि यह पुस्तक राजनीति के सामान्य विद्यार्थियो और गम्भीर विद्वानों सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी बन गई है।

वास्तव मे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का इतना उत्तम ग्रंथ अभी तक हिन्दी तो क्या संसार की किसी भी भाषा मे नहीं लिखा गया। यह ग्रन्थ वास्तव मे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के महान् लेखक—

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी

की अनुपम लेखनी का चमत्कार है।
४३६ पृष्ठ, १२ हाफटोन ब्लाक, उत्तम छपाई और कपड़े की पक्की जिल्द होने पर भी मूल्य इसका भी केवल ३) मात्र ही है।

"कला पुस्तक माला" के स्थायी ग्राहकों को यह ग्रन्थ पौने मूल्य में दिया जावेगा।

भारती साहित्य मन्दिर,

चांदनी चौक, देहली।